# विषय-सूची

## मुगल कालीन भारत

# मुगलकालीन भारत
# THE MUGHAL INDIA
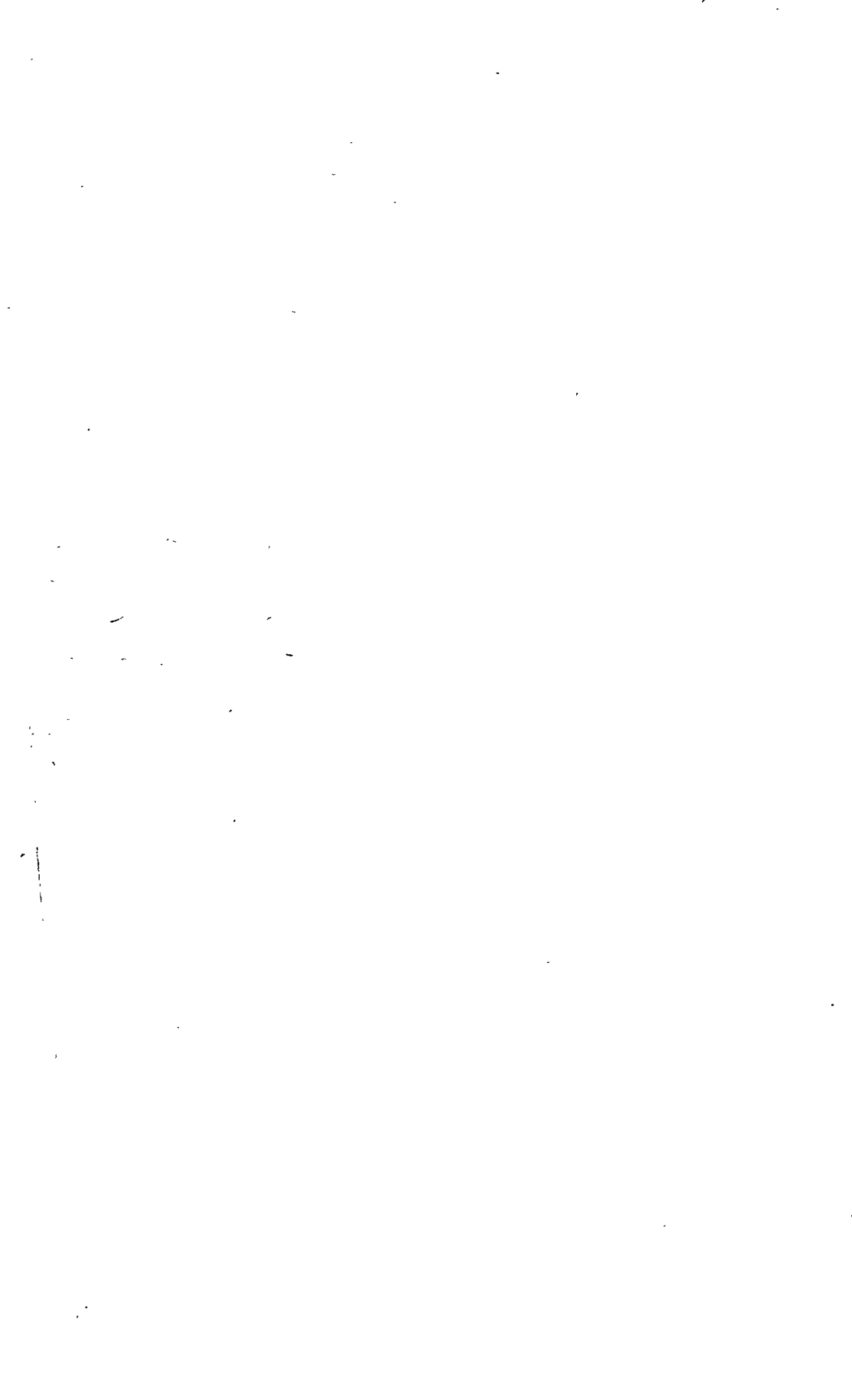
# बाबर (१५२६–१५३०)
## BABAR (1526 To 1530 A. D.)

प्रश्न १—बाबर का जीवन-चरित्र तथा भारत में उसके मुख्य कार्यों का वर्णन कीजिये।

Q. 1. Describe the career and achievements of Babar in India.

उत्तर—१—बाबर का प्रारम्भिक जीवन—जहीरुद्दीन बाबर का जन्म २४ फरवरी सन् १४८३ ई० में हुआ था। वह मुगल नहीं किन्तु तैमूर का वंशज चगताई तुर्क था। उसका पिता उमरशेख मिर्जा फरगना का अमीर था और उसकी माता का नाम कुतलुग निगार खातून था। उसका पिता तैमूर लंग का वंशज और माँ चंगेज खां के वंश से थी। इस प्रकार बाबर के शरीर में दो महान वीर जातियों का रक्त मौजूद था। बाल्यकाल से ही उसने तुर्की और फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बारह वर्ष की अवस्था में अपने पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह फरगना का शासक हो गया और यहीं से उसकी कठिनाइयों का प्रारम्भ हुआ। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने आप को चारों ओर से प्रबल शत्रुओं से घिरा हुआ पाया। ये शत्रु उसके भाई बन्धु और उजबेग सरदार शैबानी खाँ थे। बाबर को शुरू से ही समरकन्द को जीतने तथा तैमूर की गद्दी पर बैठने की तीव्र अभिलाषा थी। अतः उसने समरकन्द पर हमला किया और उजबेग सरदार शैबानी खाँ को हराकर समरकन्द की गद्दी पर अधिकार जमा लिया। परन्तु ज्योंही उसने समरकन्द से पीठ फेरी और फरगने से षड़यन्त्रकारियों को दबाने के लिये रवाना हुआ समरकन्द उसके हाथ से निकल गया। उसने दुबारा समरकन्द पर चढ़ाई की और उसे विजय कर लिया, परन्तु वह इस गद्दी पर शान्ति से नहीं रह सका। उजबेग सरदार ने अवसर पाकर उसको बुरी तरह हरा दिया। बाबर बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचा सका। वह करीब एक वर्ष तक आफतें झेलता हुआ बे-घर-बार मारा फिरा। फरगना भी उसके हाथ से निकल गया था। अतः तुर्किस्तान में अपना राज्य स्थिर करने की आशा न देख कर वह १५०४ ई० में काबुल चला आया और उस पर अधिकार जमा लिया। काबुल पर अधिकार जमा लेने के पश्चात् बाबर ने एक बार फिर समरकन्द जीतने का प्रयत्न किया। फारस के शाह की सहायता से वह उजबेगों के विरुद्ध बढ़ा और एक बार फिर उसने समरकन्द पर अधिकार जमा लिया। किन्तु तैमूर के सिंहासन पर बैठकर राज्य करना बाबर के भाग्य में नहीं था। केवल आठ महीने तक उसका समरकन्द पर अधिकार रहा और इसके पश्चात् उजबेगों का फिर

**समरकन्द** पर अधिकार हो गया। अब वेचारा बाबर निराश होकर काबुल लौट आया। इस प्रकार उत्तर में पूर्णतः निराश होकर बाबर ने दक्षिण-पूर्व में भारत की ओर ध्यान दिया क्योंकि तत्कालीन भारत की राजनैतिक अवस्था बड़ी खराब थी।

**२--हिन्दुस्तान पर बाबर के प्रारम्भिक हमले**—बाबर ने भारत पर अधिकार करने के लिये काबुल से अनेक आक्रमण किये। इससे उसे भारतीय मार्ग और परिस्थिति का पूरा ज्ञान हो गया। सन् १५२० ई० के आक्रमण में उसने स्यालकोट पर भी अधिकार स्थापित कर लिया। सन् १५२४ ई० में पंजाब के लोदी शासक **दौलत खाँ** के निमन्त्रण पर उसने **पंजाब** पर भी आक्रमण कर दिया और लाहौर तथा **दिपालपुर** पर उसका अधिकार हो गया। परन्तु दौलत खाँ के व्यवहार-परिवर्तन के कारण उसने पंजाब का प्रवन्ध करके काबुल का मार्ग लिया। लेकिन उसका ध्यान भारत पर ही लगा हुआ था। अतः काबुल और कन्धार का उचित प्रवन्ध करके वह एक सुसज्जित सेना ले १५२५ ई० में भारत की ओर चल पड़ा और शीघ्र ही उसने पंजाव पर अपना अधिकार पुनः कायम कर लिया। इसके बाद वह पानीपत की ओर बढ़ा।

**३—पानीपत का युद्ध**—इन्हीं दिनों राणा साँगा ने भी हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने के लिये बाबर को निमन्त्रण दिया। बाबर तो हिन्दुस्तान जीतने का उत्सुक था ही। अतः उसने अच्छा अवसर देखकर अफगान राज्य पर चढ़ाई कर दी।

**इब्राहीम** ने बाबर के आने की खबर सुनकर उसका मुकाबला करने के लिये सेनायें आगे भेजीं। अफगानों की सेना बाबर की सेना से बहुत बड़ी थी, फिर भी बाबर को अपनी घुड़सवार सेना तथा तोपखाने की सहायता से अपनी विजय का पूर्ण विश्वास था। उसने सबसे अधिक ध्यान तोपखाने के प्रवन्ध पर दिया। उसने ७०० तोपों की गाड़ियाँ इकट्ठी कीं जो बटे हुए चमड़े के रस्सों से जकड़ कर **मुस्तफा** और **उस्ताद अली** के बन्दूकचियों की रक्षा के लिए उनके आगे आड़ के लिये रखी जा सकें। बहुत सी लकड़ी की तिपाइयाँ भी बनवाई गई, जो हर दो गाड़ियों के बीच में उनके लिये आड़ का काम दे सकें।

**१२ अप्रैल सन् १५२६** को बाबर पानीपत पहुँचा। वहाँ उसने अपनी सेना के लिये एक सेना स्थान चुना जो युद्ध के लिये बहुत ही उपयुक्त था। इसका दाहिना भाग पानीपत के शहर द्वारा सुरक्षित था। इसके मध्य भाग के आगे बाबर ने तोपों को जमा किया। इनके पीछे तोपची और बन्दूकची रखे गये। वामपक्ष खाई काट कर गिराये हुए पेड़ों द्वारा सुरक्षित किया गया था। मध्य भाग में बीच बीच में फासले छोड़े गये थे जिनमें से होकर सिपाही सौ सौ की कतारों में शत्रु की सेना पर हमला कर सकें। समस्त सेना को मध्य, वाम और दक्षिण इन तीनों भागों में विभाजित किया गया। इस सेना के दोनों दूरस्थ पार्श्वों पर मंगोलों की एक एक

सेना रक्खी गई जिसका काम दोनों ओर से बढ़कर शत्रु की सेना को घेर लेना था। मंगोल व्यूह-रचना की यह प्रसिद्ध रीति विजय का एक प्रधान साधन मानी जाती थी।

अब युद्ध आरम्भ हुआ। बाबर की घेरने वाली दोनों सेनायें आगे बढ़ीं और उन्होंने दुश्मन की सेना को घेर लिया। अब अफगान चारों ओर से घिर गये। उन पर तीरों और गोलें-गोलियों की मार पड़ने लगी। उस्ताद अली और मुस्तफा के सिपाहियों के गोले, गोलियों की बौछार से अफगान बुरी तरह मरने लगे। कुछ घन्टों तक यही बध जारी रहा, अन्त में निराश हो जाने पर उनमें भगदड़ मच गई। इब्राहीम की पूर्ण पराजय हुई और उसकी सेना का भयंकर संहार हुआ। इब्राहीम लोदी स्वयं लड़ता हुआ मारा गया। इस प्रकार पानीपत की इस लड़ाई से दिल्ली का साम्राज्य बाबर के हाथ में आ गया। आगरे पर भी अधिकार जमा लिया गया और बाबर के हाथ बहुत बड़ी सम्पत्ति लगी।

**४—बाबर और राजपूत-कनवाहा का युद्ध**—पानीपात के युद्ध से ही भारत में बाबर का कार्य समाप्त नहीं हुआ, उसे भारत का वास्तविक सम्राट बनने के लिये महाराणा संग्रामसिंह (राणा साँगा) से भी युद्ध करना था जिसकी शक्ति उत्तरी भारत में सबसे अधिक थी और जो स्वयं लोदी वंश की समाप्ति के बाद अपने देश को मुसलमानों के अधिकार से मुक्त करना चाहता था। दूसरी तरफ अनेक अफगान सरदार थे जो अपने खोए साम्राज्य को पुनः प्राप्तः करने की कोशिश में थे। इस प्रकार भारत के हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बाबर को विदेशी समझकर उसके मुकाबिले के लिये तैयार थे। दूसरी ओर बाबर के सैनिक भारत की गर्मी से परेशान होकर वापिस जाने के लिये उद्यत थे। परन्तु मुसीबतों से जीवनपर्यन्त युद्ध करने वाला बाबर साहस छोड़ने के लिये प्रस्तुत नहीं था। उसे यह लड़ाई काफिरों से लड़नी थी, इसीलिये उसने इसे जिहाद का रूप दिया और ईश्वर की सहायता पाने के लिये उसने इसी समय प्रायश्चित-स्वरूप फिर शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और तमाम सोने-चाँदी के पात्र तुड़वाकर गरीबों में बंटवा दिये और अपनी सेना में उत्साह भरने के लिये निम्नलिखित भाषण दिया:—

"सिपाहियों और सरदारों! हरएक आदमी जो इस दुनियां में आया है जरूर मरेगा। हम सब मरेंगे, सिर्फ एक खुदा बाकी रहेगा। इसलिये बदनाम होकर जीते रहने से इज्जत के साथ मर जाना लाख गुना बेहतर है। हम लड़ाई में मरेंगे तो शहीद होंगे और जीतेंगे तो गाजी कहलायेंगे। आओ हम सब कुरान हाथ में लेकर कसम खायें कि बदन में जान रहते मैदाने जंग से पीठ न दिखायेंगे।"

इस भाषण ने बाबर की सेना में जान फूंक दी। अब बाबर लड़ाई की तैयारी बड़ी मुस्तैदी से करने लगा। उधर राणा साँगा के नेतृत्व में राजपूताने के सब प्रसिद्ध सरदार और बाहर के भी कुछ शक्तिशाली सरदार विदेशी आक्रमणकारी के विरुद्ध युद्ध करने के लिए इकट्ठा हुए। कहते हैं कि राणा की सेना में १,२०,०००

सैनिक थे। पानीपत की लड़ाई इस बार भी व्यूह रचना का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। पहले तो अपनी संख्या और वीरता के बल से राजपूत जीतते हुए मालूम हुए किन्तु शाम को लड़ाई का रुख पलट गया और राजपूतों की बुरी तरह हार हुई। उनका भयंकर संहार हुआ। राणा सांगा घायल होकर मूर्छित हो गया और कुछ सरदार उसे पालकी में डालकर युद्ध-भूमि से बाहर ले गये। विजयी बाबर ने विजय-चिन्ह स्वरूप राजपूतों के सिरों का एक स्तूप (ढेर) बनवाया और गाजी उपाधि धारण की।

इस युद्ध के फलस्वरूप राजपूतों का जो संघ बना था वह टूट गया और राजनैतिक क्षेत्र में राजपूतों का प्रभाव जाता रहा और बाबर स्थिर रूप से भारत का सम्राट हो गया। इसके बाद उसने चन्देरी का प्रसिद्ध किला भी जीत लिया और घाघरा के युद्ध में शेष अफगानों को पराजित करके लोदियों की बची-खुची शक्ति को भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार बंगाल तथा बिहार भी उसके अधिकार में आ गया। अब उत्तरी भारत के विस्तृत भू-भाग पर बाबर का अधिपत्य स्थापित हो गया और उसके जीवन की अभिलाषा पूरी हो गई।

**५—बाबर का शासन प्रबन्ध**—बाबर का सम्पूर्ण जीवन युद्धों में व्यतीत हुआ था। अतः अपने शासन प्रबन्ध को सुव्यवस्थित बनाने का उसे बहुत कम समय मिला। अपने राज्य में वह शान्ति की स्थापना तो कर सका परन्तु वह शासन को संगठित न कर सका और न इस क्षेत्र में किसी नई योजना को ही जन्म दे सका। कुछ इतिहासकार तो इस मत के हैं कि बाबर उच्चकोटि का सेनापति तो था परन्तु एक अच्छे शासक प्रबन्ध-कर्ता के गुणों का उसमें सर्वथा अभाव था। उसके राज्य के भिन्न-भिन्न भागों का शासन एकसा न था। साधारण मामलों में प्रत्येक प्रान्त, जिले तथा गांव का शासन स्थानीय रीति रिवाजों के अनुसार होता था। बड़े बड़े अफसरों को दीवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार के कार्य करने पड़ते थे और उनके अधिकारों पर बहुत कम नियन्त्रण रहता था। राज्य की आय के विभिन्न साधन थे जैसे—भूमिकर, वार्षिक भेंट, चुंगी, दुकानों पर कर तथा जजिया। बाबर अपने अफसरों को नकद वेतन देने के बजाय जागीरें दिया करता था। ये जागीरदार गड़बड़ एवं अशान्ति की दशा में अपनी जागीर से वंचित भी किये जा सकते थे।

यद्यपि बाबर ने शासन प्रबन्ध की कोई नई आयोजना नहीं की, परन्तु उसने चोरों तथा डाकुओं से प्रजा की रक्षा की पूरी व्यवस्था की थी और शान्ति भंग करने वालों को वह कड़ी सजायें दिया करता था। गमनागमन के साधनों को भी उसने सुधारा। उसने आगरा से काबुल तक ग्रान्ड ट्रंक रोड की व्यवस्था कराई और प्रत्येक १५ मील की दूरी पर उसने डाक चौकियां बनवाईं। दूरी नापने के लिये उसने बाबरी गज का प्रयोग किया। कला-प्रेमी होने के कारण उसने बहुत से उपवन लगवाये, भवन बनवाये तथा मस्जिदें और किलों का निर्माण कराया। अफगान सुलतानों की भांति बाबर ने भी अपने राज्य के भिन्न-भिन्न भागों का प्रबन्ध अपने

अमीरों तथा सरदारों को सौंप दिया था जिसके परिणाम हुमायूं के समय में वहुत वुरे निकले और उसे इस कुव्यवस्था का फल भोगना पड़ा।

६ **वावर का चरित्र तथा व्यक्तित्व**—बचपन की विपत्तियों और साहसी जीवन के कारण वावर का चरित्र सुदृढ़ हो गया था और उसमें धैर्य सहन-शक्ति, उत्साह और स्वावलम्वन के गुण आ गये थे। वह कड़े से कड़े जाड़े में घोड़े पर सवार होकर दूर दूर तक जंगली जानवरों का शिकार किया करता था। वह वर्फ जमी नदियों में नहाया करता था और रास्ते में आने वाली नदियों को तैर कर पार कर जाया करता था। उसके शरीर में इतना वल था कि दोनों ओर वगल में एक एक आदमी को दवाकर विना किसी असुविधा के वह किले की दीवार पर दौड़ सकता था। उसका शरीर अत्यन्त सुन्दर और स्वभाव से कोमल था। उसमें अपूर्व आत्म-विश्वास था और विकट परिस्थिति में भी निराश सैनिकों में उत्साह और आशा का संचार करने की उसमें अद्वितीय क्षमता थी। **डेसिसन रास** के शब्दों में 'वावर उन व्यक्तियों में से था जिनके शरीर तथा मस्तिष्क में ऐसी स्फूर्ति रहती है कि वे कभी अकर्मण्य नहीं होते और प्रत्येक कार्य करने के लिये इन्हें समय मिल जाता है।' वावर ने स्वयं लिखा है कि अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में किसी भी स्थान में उसे कभी दो वार रमजान का व्रत रखने का अवसर नहीं मिला। उसका समस्त जीवन संघर्षमय था, परन्तु वड़ी से वड़ी विपत्ति तथा संकट में भी वह घवराता नहीं था और हताश होना तो जानता ही नहीं था।

वावर का **स्वभाव भी वड़ा दयालुमय तथा स्नेहमय** था। वह अपने शत्रुओं के प्रति भी उदारता तथा दया का व्यवहार करता था। वह अपने सिपाहियों को जीते हुए प्रदेशों को उजाड़ने नहीं देता था और जो सिपाही उसकी आज्ञा का उल्लंघन करते थे, उन्हें वह कड़ा दण्ड देता था। वह सदा ही अपने वचन का पालन करता था और शत्रुओं के साथ भी विश्वासघात नहीं करता था। यद्यपि वह कभी-कभी क्रूर भी हो जाता था।

धार्मिक विचार की दृष्टि से वावर एक **कट्टर सुन्नी मुसलमान** था और न केवल हिन्दुओं को वरन् शिया मुसलमानों को भी काफिर समझता था। उसने अपने समस्त भारतीय युद्धों को जिहाद का स्वरूप दिया था। प्रत्येक जगह उसने हिन्दुओं का उल्लेख घृणा-पूर्ण भाषा में किया है और उनके साथ उसने कभी दया भी न दिखलाई, लेकिन केवल धार्मिक आधार पर उसने अपने राज्य में कभी किसी को दण्ड नहीं दिया। उसे ईश्वर में वड़ा विश्वास था और अपनी सव सफलताओं को वह उसी की कृपा का कारण मानता था। वह युद्धों में सदा अपनी विजय के लिए ईश्वर से प्रार्थना किया करता था। उसे प्रार्थना में वहुत विश्वास था जैसा कि उसके हुमायूं के वदले अपना प्राण देने के ढंग से भली-भांति प्रदर्शित होता है।

वावर **प्राकृतिक दृश्यों का भी वड़ा प्रेमी** था। झरने, सोते, झील, फूल, फल आदि तथा अपनी जन्मभूमि के चरागाहों में उसके लिए वड़ा आकर्षण था। वह

कला और साहित्य का भी बड़ा प्रेमी था। शिल्प कला, वास्तु कला तथा बागवानी के प्रति उसमें विशेष अभिरुचि थी। वह स्वयं उच्च कोटि का विद्वान एवं साहित्यकार था और तुर्की भाषा का महान पण्डित था। उसके संस्मरण, जो कि 'तुजके बाबरी' या 'बाबर नामा' के नाम से प्रसिद्ध हैं, आज भी अपना महत्व रखते हैं। इस प्रकार वह अपने काल का सर्वश्रेष्ठ मुसलमान शासक तथा योग्य सेनापति था।

अब हम बाबर के चरित्र तथा व्यक्तित्व के विषय में निम्नलिखित विद्वानों तथा इतिहासकारों के मत अभिव्यक्त करते हैं :—

**रशब्रुक विलियम्स** के अनुसार बाबर में आठ मौलिक गुण थे—"श्रेष्ठ निर्णयात्मक बुद्धि, पवित्र उच्च आकांक्षा, विजय प्राप्त करने की कला, शासन की कला, अपनी जनता को समृद्धिशाली बनाने की कला, भगवान के बन्दों पर नम्रता से शासन करने की प्रतिभा, सैनिकों के हृदय को जीतने की योग्यता और न्यायशीलता।"

**हेवल** के अनुसार "उसका प्रभावशाली व्यक्तित्व, कला-प्रेमी स्वभाव और रोमांचपूर्ण जीवन उसको इस्लाम के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ, आकर्षक व्यक्ति बनाते हैं।"

**डाक्टर स्मिथ** के अनुसार—"वह अपने समय का एशिया का महान प्रतिभाशाली राजा था और भारत के सम्राटों में एक उच्च स्थान के योग्य था।"

**लेनपूल** बाबर के विषय में लिखता है, "वह मध्य एशिया और हिन्दुस्तान के बीच, लूटमार मचाने वाले दलों तथा एशिया के साम्राज्यवादी शासन के बीच, तैमूर और चंगेज खाँ के बीच की कड़ी है। उसकी नसों में एशिया के दो ध्वंसकों का खून मिला हुआ था और खानाबदोश तातार के साहस और छटपटाहट के अतिरिक्त उसमें फारस की संस्कृति तथा शहरी प्रवृत्ति थी। ··· ··· यद्यपि वह स्वयं एक भाग्यशाली सिपाही था, परन्तु साम्राज्य का संस्थापक न होते हुए भी उसने उस आलीशान इमारत की आधारशिला रक्खी, जिस पर उसके पोते अकबर ने बाद में महल खड़ा किया। इतिहास में उसका स्थान उन भारत विजयों पर आधारित है जिन्होंने एक साम्राज्यवादी वंश के लिये मार्ग खोल दिया। ······ भाग्यशाली सिपाही होते हुए भी, बाबर में साहित्यिक रुचि और तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि के गुण थे। वह संस्कृति की भाषा फारसी, जो हिन्दुस्तान और मध्य एशिया दोनों की लैटिन कही जा सकती है, का कुशल कवि था, और अपनी मातृ-भाषा तुर्की की गद्य और पद्य की शैलियों का प्रकाण्ड पंडित था।"

**इलियट का मत**—बाबर के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए इलियट ने लिखा है, "यदि उसकी शिक्षा यूरोप में होती तो अच्छे स्वभाव का, वीर, दयालु, बुद्धिमान तथा स्पष्टवादी होने के कारण वह हेनरी चतुर्थ का स्थान लिए होता।

**एर्सकाइन का मत**—"यदि हम निष्पक्ष भाव से एशिया के इतिहास का अध्ययन करें तो हमें बहुत कम ऐसे राजकुमार मिलेंगे जो प्रतिभा तथा योग्यता में बाबर से उच्चतर स्थान के अधिकारी हों। उसके पौत्र अकबर को उसकी व्यापक

तथा उदार नीति के कारण उससे उच्चतर स्थान दिया जा सकता है । औरंगज़ेब की कुटिल कुचालें वैसी प्रशंसा के योग्य नहीं हैं । चंगेज खाँ तथा तैमूर लंग के गुण उनकी श्लाघनीय विजयों में समाप्त हो जाते हैं जो बाबर की सफलता से कहीं अधिक बढ़कर थीं, परन्तु मानसिक क्रियाओं में सौम्य सामंजस्य तथा अदम्य उत्साह में जिसके साथ उसने सौभाग्य तथा दुर्भाग्य की अति को सहन किया, पौरुषीय तथा सामाजिक गुणों में जो राजकुमारों के हिस्से में बहुत कम पड़ते हैं, अपने साहित्य प्रेम तथा उसके सम्वर्द्धन में अपनी सफलता में हमें सम्भवतः एशिया का कोई ऐसा राजकुमार न मिलेगा जिसे हम न्यायतः उसके पार्श्व में स्थान प्रदान कर सकें ।"

निष्कर्ष—उपरोक्त विद्वानों के मतों के आधार पर बाबर के चरित्र के विषय में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि बाबर एक प्रेमी पति, एक स्नेही पिता, एक उदार सम्बन्धी, एक प्रतिभावान कवि तथा साहित्यकार, एक कुशल संगीतज्ञ तथा प्रकृति प्रेमी, एक वीर, साहसी, दृढ़-प्रतिज्ञ तथा महत्वाकांक्षी सेनाध्यक्ष, रणनीति, कुशल सैनिक पण्डित तथा प्रजा हितकारी शासक था । उसमें एक तातार का साहस, एक पारसी की संस्कृति तथा सभ्यता और एक मुगल की शक्ति विद्यमान थी ।

---

प्रश्न २—पानीपत की पहली लड़ाई का संक्षेप में वर्णन कीजिये । इस युद्ध में बाबर की विजय के क्या कारण थे तथा इस युद्ध का भारतीय इतिहास में क्या महत्व है ?

Q. 2. Descirbe in brief the First Battle of Panipat. What led Babar to achieve victory in this battle and what is the importance of this battle in Indian History ?

उत्तर (१) पानीपत की पहली लड़ाई (१५२६)—इसके लिये प्रश्न नं० १ का उत्तर पढ़िये ।

(२) बाबर की विजय के कारण—पानीपत की इस पहली लड़ाई में बाबर की विजय के कारण निम्नलिखित थे :—

(क) इब्राहीम की अन्यायपूर्ण नीति—इब्राहीम लोदी का व्यवहार अपने सरदारों के प्रति बड़ा अन्यायपूर्ण था और वह उनको सदैव सन्देह की दृष्टि से देखा करता था । अतः उसके राज्य में बड़ा असन्तोष फैला हुआ था । सभी सरदार एवं उसके नाती उसकी इस अन्यायपूर्ण नीति के कारण उसके शत्रु बन गये थे और उसकी सहायता करने के स्थान पर शत्रु की सहायता करने को तैयार रहते थे । स्वयं उसके चचा आलम खाँ ने पानीपत के युद्ध में बाबर का साथ दिया था । इस प्रकार इब्राहीम लोदी न तो अपनी प्रजा का ही सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त कर सका और न अपने सरदारों का ही ।

(ख) इब्राहीम लोदी की दुर्बलता—इब्राहीम लोदी की सेना भी कमजोर थी । उसमें अनुशासन का अभाव था और उसे ठीक प्रकार की सैनिक शिक्षा नहीं मिली

थी। सैनिकों में देश-भक्ति तथा रण-कौशल का बड़ा अभाव था। इसके विपरीत बाबर की सेना बड़ी शिक्षित एवं सुव्यवस्थित थी। निर्धन प्रदेश के निवासी होने के कारण उसमें अदम्य उत्साह तथा साहस था और अपने धर्म एवं देश के लिये मर-मिटने की तीव्र भावना थी।

**(ग) इब्राहीम द्वारा हाथियों का प्रयोग**—भारतीय परम्परा के अनुसार इब्राहीम लोदी ने भी युद्ध में हाथियों का प्रयोग किया था। ये हाथी जख्मी होने पर बड़े घातक सिद्ध होते थे और आवेश में अपने ही सैनिकों को कुचलने लगते थे। इसके विपरीत बाबर ने युद्ध में तोपखाने का प्रयोग किया था। इस तोपखाने के सम्मुख इब्राहीम के वीर से वीर सैनिक भी न ठहर सके और हजारों की संख्या में मृत्यु को प्राप्त होने लगे।

**(घ) इब्राहीम में कूटनीतिज्ञता का अभाव**—इब्राहीम चतुर कूटनीतिज्ञ नहीं था। इसी कारण संकट-काल में भी वह दौलत खां लोदी, मुहम्मदशाह तथा राणा साँगा की सहायता न प्राप्त कर सका और बाबर को पंजाब पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में कोई विशेष कठिनाई न हुई। यदि इब्राहीम और राणा सांगा मिलकर शत्रु का मुकाबला करते तो सम्भव था कि बाबर को भारत में सफलता न मिलती।

**(ङ) इब्राहीम के गुप्तचर विभाग की दुर्बलता**—इब्राहीम लोदी का गुप्तचर विभाग भी सक्रिय न था। यदि उसके गुप्तचर कुशल होते तो वे बाबर की व्यूह-रचना का पता लगा लेते और ऐसी दशा में इब्राहीम की सेना बाबर पर आक्रमण के बजाय उसकी छावनी को घेर कर उसकी रसद के काटने का प्रयत्न करती। परन्तु इब्राहीम लोदी को इन सब बातों का तनिक भी ज्ञान न था।

**(च) सैन्य संचालन की दुर्बलता**—इब्राहीम लोदी की सेना का युद्ध-स्थल पर ठीक प्रचार संचालन न हो सका। अग्रगामी सेना बड़ी द्रुतगति से आगे बढ़ रही थी। जब बाबर के सुरक्षा विधान को देखकर वह यकायक रुक गई तो उसके पीछे आने वाली सेना अपनी गति को न रोक सकी। इससे सेना में धकोपिल शुरू हो गई। इसके अतिरिक्त इब्राहीम की सेना इतनी विशाल थी कि द्रुतगति एवं व्यवस्थित रूप से उसका संचालन करना बड़ा कठिन था। प्रत्येक परिस्थिति में उस पर पूर्ण नियन्त्रण रखना सम्भव न था। बाबर की सेना में ये गुण विराजमान थे।

**(छ) बाबर की रण-कुशलता**:—बाबर की विजय का एक बहुत बड़ा कारण उसकी अपनी रण-कुशलता थी। वह बड़ा ही अनुभवी एवं कुशल सेनानायक था। उसके सेनापति तथा सैनिक भी रण-कुशल थे। अपने सैनिकों के हृदय में साहस तथा आत्म-विश्वास उत्पन्न करने की उसमें अद्भुत क्षमता एवं शक्ति थी।

**(ज) बाबर की व्यूह-रचना**—इस युद्ध में बाबर की विजय का सबसे प्रमुख कारण उसकी व्यूह-रचना थी। उसने तुलुगमा युद्ध प्रणाली से अपनी सेनाओं को लड़ाई के मैदान में खड़ा किया। उसकी रक्षित सेना ने दुश्मन की सेना को पीछे

से घेर लिया और आगे से तोपची एवं बन्दूकची गोलियाँ बरसाने लगे। इस प्रकार इब्राहीम की सेनायें न तो भाग ही सकीं और न दुश्मन से डटकर मुकाबला ही ले सकीं। इन्हीं कारणों से इस युद्ध में बाबर की विजय तथा इब्राहीम लोदी की हार हुई।

(३) पानीपत के युद्ध का परिणाम एवं महत्व—पानीपत के युद्ध का भारतीय इतिहास में बड़ा महत्व है। इसके निम्नलिखित परिणाम हुए :—

(क) लोदियों की शक्ति का विनाश—इस युद्ध के परिणामस्वरूप लोदी वंश का अन्त हो गया और उसके स्थान पर भारत में मुगलों का राज्य स्थापित हुआ।

(ख) भारतीय सैनिकों का महा संहार—इस युद्ध में लगभग ६००० भारतीय सैनिक काम आये और १६००० के लगभग बुरी तरह घायल हुए। भारतीयों के अनुसार तो घायल व्यक्तियों की संख्या चालीस-पचास हजार थी।

(ग) मुगलवंश की स्थापना—पानीपत के इस युद्ध से लोदी राजवंश का अन्त हो गया और भारत में मुगलों के नये राजवंश की स्थापना हुई जिसका भारतीय इतिहास में बड़ा महत्व है।

(घ) हिन्दुओं में असन्तोष और निराशा—इस युद्ध का हिन्दुओं की कल्पनाओं पर बहुत प्रभाव पड़ा। मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह ने बाबर की सहायता से इब्राहीम लोदी को हराकर भारत में हिन्दू राज्य स्थापित करने की कल्पना की थी, किन्तु इस युद्ध के पश्चात् बाबर को दिल्ली का सम्राट होते देख हिन्दू सरकार निराश हो गये और उनका हिन्दू राज्य स्थापित करने का विचार कल्पना-मात्र ही रह गया।

(ङ) बाबर की इच्छा पूर्ति :—इस युद्ध में विजय प्राप्त होने से बाबर की भारत विजय की मनोकामना पूर्ण हो गई। दिल्ली तथा आगरा उसके अधिकार में आ गये और उसके नाम पर खुतबा पढ़ा गया। वह दिल्ली राज्य का बादशाह घोषित कर दिया गया। इस युद्ध से बाबर के गौरव में भी काफी वृद्धि हुई। अब उसकी गणना महान विजेताओं में होने लगी।

(च) नवीन युद्ध-प्रणाली का जन्म :—पानीपत के मैदान में बाबर की विजय उसकी रण-कुशलता के कारण हुई थी। उसकी विजय का श्रेय उसके तोपखाने को था जिसका प्रयोग भारत में सबसे पहले इसी युद्ध में किया गया था। अतः भविष्य में तोपखाना भारतीय युद्ध-प्रणाली का एक विशेष अंग बन गया।

(छ) लौकिक राज्य की स्थापना :—पानीपत के युद्ध से भारत में लौकिक राज्य की स्थापना हुई। अभी तक दिल्ली के सुल्तान राज्य के प्रत्येक कार्य में इस्लाम धर्म को प्रधानता देते थे और हिन्दुओं पर अत्याचार करते थे। परन्तु बाबर ने यह घोषणा कर दी थी कि उसका राज्य धर्म प्रभावित नहीं है। उसकी दृष्टि में हिन्दू तथा मुसलमान सब बराबर हैं।

(ज) नूतन स्फूर्ति का संचार :—भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना हो जाने से देश में नूतन स्फूर्ति का संचार हुआ। कला, साहित्य, व्यापार आदि के क्षेत्र में

देश खूब उन्नति के शिखर पर पहुँचा। धार्मिक क्षेत्र में सहिष्णुता की नीति अपनाई गई। हिन्दुओं को राज्य में बड़े ऊंचे ऊंचे पदों पर नियुक्त किया गया। किसानों एवं जन-साधारण की भलाई का हमेशा ध्यान रक्खा गया। चित्र कला, संगीत कला, भवन निर्माण कला सभी अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचीं। शासन के क्षेत्र में भी मौलिक योजनायें अपनाई गईं। इस प्रकार, हर क्षेत्र में देश ने उन्नति की और प्रजा खुश-हाल थी।

—: o :—

**प्रश्न ३—खानवा के युद्ध एवं उसके महत्वपूर्ण परिणामों का वर्णन कीजिए।**

**Q. 3. Describe the battle of Kanwah and its important results.**

**उत्तर—खानवा का युद्ध :—**इसके लिये प्रश्न नं० १ का उत्तर पढ़िये।

**युद्ध का महत्व तथा परिणाम:—**खानवा अर्थात् कनवाह का युद्ध भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। विद्वानों ने पानीपत के युद्ध को इतना महत्व नहीं दिया है जितना कि कनवाह के युद्ध को। कुछ इतिहासकारों का मत है कि "पानीपत के युद्ध का कार्य कनवाह के युद्ध ने पूरा किया। इस युद्ध ने भारतीय राज्य के स्वप्न को भंग कर दिया।" इस युद्ध के परिणाम निम्नलिखित हुए :—

**(१) बाबर की कठिनाइयों का अन्त :—**कनवाह का युद्ध एक निर्णयात्मक युद्ध था। इस युद्ध ने बाबर की कठिनाइयों का अन्त कर दिया। बाबर आरम्भ से ही मुसीबतों का मारा हुआ था। उसको अपने जीवन की रक्षा के लिये जगह जगह घूमना पड़ा था। काबुल से भारत आने पर भी उसको शान्ति नहीं मिली थी। यद्यपि पानीपत के मैदान में विजयलक्ष्मी उसी को प्राप्त हुई थी तथापि मुगल सैनिकों के हृदय पर वीर राजपूत सैनिकों का आंतक जमा हुआ था। अतः राणा सांगा पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त बाबर तथा उसके सैनिकों को किसी प्रकार की चिन्ता न रही और उनके लिये आगे भारत विजय का काम सरल हो गया।

**(२) राजपूत शक्ति का विध्वंस तथा उनकी कामना का अन्त :—**खानवा के युद्ध ने राजपूतों की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया। उनका संघ टूट गया। इससे उनका भारतीय राज्य स्थापित करने का स्वप्न भी भंग हो गया।

**(३) बाबर के स्थायी राज्य की स्थापना :—**इस युद्ध से बाबर की सत्ता स्थायी रूप से भारत में स्थापित हो गई जिससे उसके दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया। अब तक बाबर भारत को अच्छा देश नहीं समझता था। वह काबुल के गीत गाया करता था। परन्तु कनवाह की विजय ने उसे काबुल को भुला दिया और शेष जीवन उसने भारत में ही व्यतीत किया।

**(४) बाबर के राजत्व की भावना में परिवर्तन :—**इस युद्ध के उपरान्त बाबर की राजत्व की भावना में भी बड़ा परिवर्तन आया। उसने सुल्तान के स्थान पर पादशाह अर्थात् बादशाह की उपाधि धारण की जिसके पीछे सैनिक तथा राजकीय

शक्ति के साथ-साथ धर्म द्वारा स्वीकृत ईश्वरीय शक्ति की भावना निहित थी। धीरे-धीरे इस भावना ने लोगों के हृदय में भी स्थान कर लिया और वे उसे (बाबर) ईश्वर का प्रतिनिधि मान कर उसके प्रति भक्ति भावना प्रदर्शित करने लगे।

(५) अफगानों के विध्वंस में सरलता :—खनवाह के युद्ध में राजपूतों की शक्ति का विनाश हो जाने के कारण बाबर को अफगानों की बची हुई शक्ति के विध्वंस करने में तथा विद्रोहों को दबाने में बड़ी सहायता मिली। घाघरा के युद्ध में महमूद लोदी को पराजित करके उसने बंगाल तथा विहार पर भी अधिकार जमा लिया।

(६) मुगल वंश की स्थापना :—अब भारत में मुगल राज्य की नींव दृढ़ हो गई। जिस राज्य की स्थापना पानीपत के युद्ध (१५२६) ने की थी उसकी स्थापना कनवाह के युद्ध ने और मजबूती से कर दी। इस प्रकार इस युद्ध ने पानीपत के युद्ध के कार्य को पूर्ण कर दिया।

---

# हुमायूं (१५३०–१५५६)

## HUMAYUN (1530 To 1556 A. D.)

प्रश्न १—'यदि बाबर भारतवर्ष में एक सुदृढ़ और अच्छे शासन की स्थापना कर जाता तो हुमायूं को कदाचित इतनी कठिनाइयों का सामना न करना पड़ता। सिद्ध कीजिये।

अथवा

हुमायूं के सम्मुख क्या क्या कठिनाइयां थीं ? उसने उनका मुकाबिला किस प्रकार करने की कोशिश की ?

**Q. 1. "Had Babar laid down the foundation of a strong and efficient rule in India, Humayun would not have suffered so many troubles and misfortunes." Prove this statement.**

**Or**

**What were the troubles that Humayun had to face ? How did he try to overcome them ?**

उत्तर—बाबर की मृत्यु के पश्चात् दिसम्बर सन् १५३० ई० में उसका पुत्र हुमायूं दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। इस समय उसकी अवस्था केवल २३ वर्ष की थी। उसका मार्ग प्रारम्भ से ही कठिनाइयों से भरा हुआ था जिसे सुगम बनाने के लिये असीम धैर्य, अपार साहस तथा शक्ति की जरूरत थी। उसका मार्ग और भी विकट इसी लिये हो गया था कि मुसलमानों में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। तलवार ही अधिकारों का निर्णायक थी और प्रत्येक पुत्र अपने भाइयों के विरुद्ध अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिये सदा प्रस्तुत रहता था। उधर हुमायूं के पिता बाबर ने उसकी कठिनाइयाँ और भी बढ़ा दीं। बाबर एक महान सेनापति तो अवश्य था परन्तु उसमें कुशल शासक के गुणों का सर्वथा अभाव था। फलतः उसने विरासत के रूप में अपने उत्तराधिकारी हुमायूं के लिये अनेक कठिनाइयां छोड़ीं। इस प्रकार हुमायूं की कठिनाइयों को तीन भागों में बांटा जा सकता है—(१) वे कठिनाइयाँ जो उसे अपने पिता बाबर से प्राप्त हुई थीं। (२) वे कठिनाइयां जिनका स्वयं उसने उपार्जन किया था और (३) वे कठिनाइयाँ जो परिस्थिति और समय की देन थीं।

१—बाबर से प्राप्त कठिनाइयाँ—(क) बाबर ने भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना तो अवश्य कर दी थी परन्तु वह उसे सुसंगठित तथा सुदृढ़ न कर

सका था। उसने अपने पुत्र के लिये ऐसा साम्राज्य छोड़ा था जो केवल युद्ध की परिस्थितियों में ही संगठित रह सकता था और शान्ति के समय के लिये निर्बल तथा आधारहीन था।

(ख) उसने अपनी विजय के उपरान्त लोदी वंश की दोषपूर्ण शासन व्यवस्था को ही स्वीकार कर लिया था और सारा साम्राज्य अपने सरदारों को जागीर के रूप में बाँट दिया था। फलतः ये जागीरदार अपनी महत्वाकाँक्षाओं की पूर्ति के लिये हुमायूं के शत्रु बन गये।

(ग) उसने अपनी मृत्यु के समय अपने पुत्रों में साम्राज्य का बंटवारा करा दिया था। अतः यद्यपि साम्राज्य का उत्तराधिकारी बड़ा पुत्र हुमायूं था परन्तु कामरान को काबुल और कन्धार के महत्वपूर्ण प्रदेश प्राप्त थे। उन्हीं प्रदेशों से मुगल सेना में सैनिक भर्ती किये जाते थे। अब यह क्षेत्र हुमायूं के लिये सदा के लिये बन्द हो गया। दूसरी ओर अस्करी को 'सम्भल' और हिन्दाल को 'अलवर' के प्रान्त प्राप्त थे। ये दोनों हुमायूं के लिए सदैव आपत्तियों का कारण बने रहे।

(घ) बाबर ने अपनी विजयों द्वारा अफगानों को पराजित तो अवश्य कर दिया था परन्तु वह उनका विनाश न कर सका था। अतः अवसर पाकर वे सदा ही विद्रोह किया करते थे। इब्राहीम लोदी का भाई महमूद लोदी, जिसे बाबर ने मार भगाया था, बिहार में अफगानों को एकत्र करके अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। दूसरी ओर अफगान सरदार शेर खाँ सूर भी मुगलों के विरुद्ध अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। इब्राहीम लोदी का चचा आलम खाँ भी, जो मुगलों की कैद से निकल भागा था, गुजरात के बादशाह बहादुरशाह की आर्थिक सहायता से हुमायूं के विरुद्ध सेना का संगठन कर रहा था।

(ङ) साम्राज्य की आर्थिक स्थिति भी खराब थी क्योंकि बाबर ने दिल्ली और आगरा का खजाना उपहार-स्वरूप अपने सिपाहियों तथा सरदारों में बाँट दिया था। अतः रिक्त राजकोष ने भी हुमायूं की कठिनाइयाँ बढ़ा दी थीं।

**२—तत्कालीन परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याएं**—(क) शासन की अस्थिरता तथा अव्यवस्था के कारण मुगल दरबार जहाँ से उसे सहायता मिलनी चाहिए थी, विद्रोह और षड्यन्त्र का केन्द्र बन गया था। इन षड्यन्त्रकारी सरदारों में एक मुहम्मद जमा मिर्जा था जो उसकी सौतेली बहन मासूमा सुल्तान बेगम का पति था। दूसरा सरदार मुहम्मद सुल्तान मिर्जा था जो स्वयं अपने को तैमूर का वंशज होने के कारण सिंहासन का अधिकारी समझता था। तीसरा खतरनाक सरदार बाबर का बहनोई मीर मुहम्मद मेंहदी ख्वाजा था। ये सभी सरदार अपने अपने लिये सिंहासन प्राप्ति के षड्यन्त्र रच रहे थे। उधर हुमायूं के भाई भी उसकी सहायता करने के बजाय इन विद्रोही सरदारों की सहायता करते रहते थे।

(ख) मुगल कैम्प भी हुमायूं के लिये मुसीबतों का साधन बन रहा था। बाबर की सेना में विभिन्न जातियों के सैनिक और सेनापति थे जो बाबर की सैनिक

योग्यता के कारण उसकी सेवा के लिए सदा तैयार रहते थे। इनमें चगताई, मुगल, ईरानी, अफगान, उजबेग सभी जातियों के मनुष्य थे। हुमायूं में बाबर जैसी सैनिक योग्यता तथा सफल नेतृत्व न होने के कारण इन सैनिकों से स्वामिभक्ति की आशा रखना मुश्किल हो गया था। इसी प्रकार मुगल कैम्प और कोर्ट दोनों ही हुमायूं के लिये घातक सिद्ध हुए।

(ग) देश की राजनैतिक स्थिति भी हुमायूं के लिए सर्वथा प्रतिकूल थी। बाबर बंगाल पर विजय न प्राप्त कर सका था और अब बंगाल का सुल्तान विद्रोही अफगानों को शरण एवं प्रोत्साहन प्रदान कर रहा था। गुजरात और मालवा का शासक बहादुरशाह स्वयं दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने की अभिलाषा कर रहा था और विद्रोही अफगान और मुगल सरदारों को अपने यहाँ शरण दे रहा था। उधर राणा साँगा की पराजय के पश्चात् राजस्थान के राजपूत राजा पुनः शक्ति संचय कर रहे थे। इस प्रकार देश का समस्त वातावरण हुमायूं के लिये भयानक और विषाक्त बन रहा था।

**३ – हुमायूं द्वारा उपार्जित कठिनाइयाँ तथा उसकी असफलता:—**
(क) वास्तव में हुमायूं के लिये सब से बड़ा दुश्मन वह स्वयं ही था। यद्यपि उसमें वीरता, साहस तथा निर्भीकता, उदारता तथा दयालुता के सभी गुण मौजूद थे परन्तु उसमें परिश्रमशीलता, दृढ़ संकल्प और स्थिरता का सर्वथा अभाव था। उसमें विलासिता थी और अफीम खाने की बुरी आदत थी। लेनपूल ने उसकी चरित्र की दुर्बलताओं का वर्णन इस प्रकार किया है, "अध्यवसाय के लिए वह सर्वथा असमर्थ था, क्षणिक विजय-उल्लास के पश्चात् वह अपने हरम की विलासिता में डूबा हुआ अपने बहुमूल्य समय को अफीम के आनन्द में नष्ट कर देता जबकि उसके शत्रु उसके द्वार पर घोर गर्जन करते रहते। जब शत्रुओं को दण्ड देना चाहिये वह अपनी स्वाभाविक दयालुता के कारण उन्हें क्षमा प्रदान कर देता और जिस समय उसे घोड़े की पीठ पर लड़ाई के मैदान में होना चाहिये उस समय वह अपने विनोद-प्रिय और मिलनसारिता के कारण अपने दस्तरखान पर आमोद-प्रमोद मनाता रहता। इस प्रकार शासक के रूप में वह पूर्णतः असफल था। उसके नाम का शाब्दिक अर्थ भाग्यवान था परन्तु एक अभागा सम्राट कभी इस सुन्दर नाम से विभूषित नहीं हुआ।"

(ख) अपने पिता की आज्ञानुसार अपने भाइयों को सदैव संतुष्ट रखने के प्रयत्न से ही उसने अपनी कठिनाइयां और बढ़ा लीं। जब कामरान ने पंजाब पर अधिकार कर लिया तो वह बिल्कुल शान्त रहा। उसने कामरान को 'काबुल' और 'कंधार' के अतिरिक्त पंजाब का भी शासक मान लिया और बाद को हिसार फिरोजा का परगना भी उसे दे दिया। अब पश्चिमी क्षेत्र हुमायूं के लिये अच्छे सैनिक फौज में भर्ती करने के लिये हमेशा के लिए बन्द हो गया। इस प्रकार उसकी इस अदूरदर्शिता के कारण, मुगल सेना में भर्ती करने वाले प्रदेश उसके हाथ से निकल गये।

हुमायूं का भारतीय शक्तियों के साथ संघर्ष— (क) सबसे पहले हुमायूं ने बुन्देलखण्ड में स्थित कालिंजर के किले पर घेरा डालने का प्रयत्न किया परन्तु पूर्व में अफगानों के विद्रोह का समाचार पाकर उसे बिहार की ओर जाना पड़ा। वहाँ शेरखाँ ने चुनार के किले पर अपना अधिकार जमा लिया था। अतएव हुमायूं ने शेरखाँ पर आक्रमण करके उसे सन्धि करने पर विवश किया। इस प्रकार हुमायूं ने शेरखाँ को पूर्णतया न कुचलकर केवल आधीनता में कर लिया। सर्प जान से नहीं मारा, घायल करके ही छोड़ दिया।

(ख) हुमायूं और बहादुरशाह :— इस समय बहादुरशाह के विद्रोह को दबाने के लिये उसको गुजरात जाना पड़ा। बहादुरशाह ने मालवा जीत लिया था, और अब मेवाड़ जीतने की कोशिश कर रहा था। जब तक बहादुरशाह मेवाड़ पतन में लगा रहा, हुमायूं ने मालवा जीत लिया और गुजरात का रास्ता बहादुरशाह के लिये बन्द कर दिया। मजबूर होकर बहादुरशाह को मालवा में घुसना पड़ा और उसकी बुरी तरह हार हुई। अब बहादुरशाह पुर्तगालियों की शरण में 'ड्यू' द्वीप में पहुँचा। इस प्रकार गुजरात और मालवा पक्के फल की भाँति हुमायूं के हाथ में आ गये। अब उसने चम्पानेर का किला भी विजय कर लिया और उसके हाथ अटूट सम्पत्ति लगी। अब हुमायूं मालवा में आमोद-प्रमोद में मस्त हो गया और अस्करी को गुजरात भेज दिया। शासन-प्रबन्ध बिगड़ने लगा और सम्राट की सेना में असंतोष तथा अवज्ञा फैलने लगी। इसी बीच में बहादुरशाह ने पुर्तगालियों की सहायता से अपने देश गुजरात और मालवा फिर जीत लिये। इस प्रकार ये दोनों प्रदेश हुमायूं की गलती से निकल गये।

(ग) हुमायूं और शेरखाँ:—उधर शेरखाँ अपनी शक्ति प्रतिदिन बढ़ाता जा रहा था। उसने बंगाल की राजधानी गौड़ को घेर लिया। अब हुमायूं की आँखें खुलीं। वह फौरन ही बंगाल पहुँचा और चुनारगढ़ को घेर लिया और जीत लिया। शेरखाँ डर के मारे भाग गया। अब हुमायूं ने गौड़ भी जीत लिया और कई महीने तक आमोद-प्रमोद में वहीं पड़ा रहा। शेरखां को इससे अच्छा अवसर मिल गया। वह चुनारगढ़ पर फिर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। यह देखकर बादशाह को बंगाल छोड़ना पड़ा। परन्तु बरसात, आंधी और बाढ़ के कारण सब रास्ते बन्द हो गये। वह गंगा के किनारे चौसा तक पहुँच गया और शेरखाँ से सन्धि की बातें करने लगा। शेरखाँ ने अपनी ओर से शेख खलील को सम्राट के पास भेजा। शेख के आचरण से प्रभावित होकर हुमायूं ने उसको अपना विश्वासपात्र मानकर शेरखाँ के डेरे में सन्धि की शर्तें निश्चित करने के लिए भेजा। शेख खलील ने हुमायूं के साथ विश्वासघात किया और शेरखाँ को हुमायूं पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया।

राजदूत की इस सलाह से प्रभावित होकर शेरखाँ गंगा नदी को पार करके शाही सेना के सामने आ जमा। दोनों ओर की सेनायें लगभग तीन महीने तक

पड़ाव डाले पड़ी रहीं। शाही सेना का बुरा हाल था। अतः निराश होकर हुमायूं ने सन्धि की वार्ता प्रारम्भ की. परन्तु सन्धि की शर्तें निश्चित न हो सकीं। अब शेरखाँ ने अचानक शाही सेना पर आक्रमण कर दिया और फौज का दमन करके उसकी सारी सामग्री तथा खजाना लूट लिया। लेनपूल का कथन है, "ऐसा जान पड़ता था कि सभी बातों का निर्णय हो चुका था या होने वाला था और दोनों सेनायें एक दूसरी को मित्र समझती थीं। वे अपने अपने खेमों को उजाड़ कर घर लौटने की तैयारी कर रही थीं। ऐसे भ्रम में मुगलों को डाल कर सूर्य निकलने के थोड़ी देर पहले ही अचानक अफगानों ने चारों ओर से मुगलों पर आक्रमण कर दिया। मुगलों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बहुत से सोये सिपाही भी मार डाले गये। किसी को बचने का अवसर न मिला। केवल हुमायूं ही अकेला एक भिश्ती की सहायता से बच सका। बहुत से सिपाही गंगा में डूब कर मर गये, बहुत से कैद कर लिये गये, केवल अभागा बादशाह आगरा पहुंचा।

आगरा पहुँच कर अब हुमायूं अपनी नई सेना बनाने लगा। उसने अन्तिम समय में कामरान से सहायता माँगी। कामरान ने उसे केवल तीन हजार सैनिक देना स्वीकार किया। अब हुमायूं शेरखाँ को हराने के लिये कन्नौज पहुँचा। हुमायूं की सेना काफी बड़ी थी, परन्तु लगातार की हार के कारण उसकी हिम्मत पस्त थी सारी सेना पर भय छाया हुआ था। इसी कारण बड़ी आसानी से शेरखाँ ने मुगल सेना को हरा दिया और दिल्ली और आगरा का मालिक बन बैठा।

## हुमायूं की असफलता के कारण

उपरोक्त सभी युद्धों में हुमायूं की पराजय एवं असफलता तथा मसीबतें उठाने के कारण निम्नलिखित थे :—

(१) **दूरदर्शिता का अभावः**—हुमायूं की असफलता का एक बहुत बड़ा यह था कि उसमें दूरदर्शिता का सर्वथा अभाव था। वह उचित समय पर कार्य करना न जानता था। जहाँ दुश्मन की शक्ति को पूर्णतया नष्ट करने का मौका होता था वह उससे आधीनता स्वीकार कराकर उसे छोड़ देता था। चुनारगढ़ का किला शेरखाँ से जीत लेने पर उसे शेरखाँ की शक्ति पूर्णतया नष्ट कर देनी चाहिये थी परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। इसी प्रकार उसे बहादुरशाह के विरुद्ध मेवाड़ की सहायता करनी चाहिये थी जिससे बहादुरशाह की शक्ति नष्ट होती। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। इससे उसके शत्रुओं की शक्ति बढ़ती चली गई और वह मुसीबतों में फंसता चला गया।

(२) **भाइयों तथा रिश्तेदारों द्वारा विश्वासघातः**—हुमायूं की असफलता का एक बहुत बड़ा कारण यह भी था कि उसके भाइयों तथा रिश्तेदारों ने कभी उसका साथ नहीं दिया बल्कि उल्टे उसकी कमजोरी से लाभ उठाना चाहा। उसका भाई उसका सबसे कट्टर शत्रु था। उसके अन्य दो भाई अस्करी तथा हिन्दाल ने

भी उसका साथ नहीं दिया। उसके रिश्तेदार मुहम्मद जमा मिर्जा, मुहम्मद सुल्तान मिर्जा एवं मेंहदीख्वाजा सभी उसके शत्रु थे और उसे धोखा देते थे। कामरान के अधिकार में काबुल, कन्धार तथा पंजाब आ जाने से तो मुगल सेना में अच्छे सैनिकों की भर्ती होनी भी बन्द हो गयी जिससे हुमायूं को बड़ी हानि हुई।

(३) आर्थिक संकट तथा धर्म का अभाव:—आर्थिक संकट तथा धन का अभाव भी उसकी असफलता का एक कारण बना। हुमायूं के पिता बाबर ने लड़ाइयों तथा खैरात में अपना शाही खजाना खाली कर दिया था। स्वयं हुमायूं भी अपनी विजय से प्रसन्न होकर आरम्भ में बड़ी-बड़ी दावतें करता था तथा खैरात बांटता था। इससे अन्त में उसके पास धन की बहुत कमी हो गई। सैनिकों को वेतन तक मिलना बन्द हो गया था। अतः अब उसके सैनिकों में युद्ध करने तथा उसमें अपनी वीरता का प्रदर्शन करने का उत्साह न रह गया।

(४) साम्राज्य विभाजन:—हुमायूं की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उसने अपनी उदारता के कारण अपने भाइयों को राज्य दे दिये थे। उसके भाइयों ने उसकी सहायता करने के बजाय उल्टा अपने-अपने राज्यों के साधनों की सहायता से उसके साथ विश्वासघात किया और सदैव उसे परेशान किया। कामरान तो स्वयँ दिल्ली और आगरा का शासक बनना चाहता था।

(५) विजय के पश्चात आमोद-प्रमोद में लिप्त होना:—हुमायूं की असफलता का एक बड़ा कारण यह भी था कि वह मामूली विजय के पश्चात भी आनन्द मग्न होकर आमोद-प्रमोद के लीन हो जाता था। इस बीच में शत्रु अपनी स्थिति को फिर से दृढ़ बनाकर उसकी विजय को नष्ट कर डालता था। गुजरात तथा मालवा जीत लेने के पश्चात उसने इस विजय को स्थायी बनाने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि आमोद-प्रमोद में फंस गया। अतः ये दोनों प्रदेश आसानी से उसके हाथ से निकल गये। इसी प्रकार गौड पर विजय प्राप्त करने पर भी ऐसा ही हुआ। चौसा के युद्ध में भी उसकी पराजय का सबसे बड़ा कारण उसका आमोद-प्रमोद का कार्यक्रम ही था।

(६) चरित्र की अन्य कमजोरियाँ:—हुमायूं के चरित्र में कुछ और दुर्बलतायें भी थीं जिसके कारण उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा। उसका मस्तिष्क सदैव अस्थिर रहता था और दृढ़ता तथा निर्णयात्मकता का उसमें अभाव था। यद्यपि वह साहसी, बुद्धिमान, विद्वान तथा एक उच्च कोटि का सेनापति था, परन्तु विचारशून्य तथा अस्थिर स्वभाव के कारण उसके ये सब गुण उसके लिये व्यर्थ थे। लगातार कठोर परिश्रम तो वह कर ही नहीं सकता था। उसमें नेतृत्व ग्रहण करने की प्रतिभा न थी, जिसके कारण वह अपने असफरों तथा सनिकों पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं रख सका। अत्यन्त आपत्ति के समय भी उसके सेनाध्यक्ष विद्रोह कर दिया करते थे। उन्हें इस बात का विश्वास रहता था कि उनका स्वामी अन्त में क्षमा कर देगा।

दृढ़ संकल्प की कमी के कारण वह एक कार्य को पूरा करने के पहले ही दूसरे कार्य पर दौड़ पड़ता था। इससे उसके साधन विभक्त हो जाते थे और उसे दोनों स्थानों पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

इन सब कारणों से उसे विफलता का मुंह देखना पड़ा और अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा।

**हुमायूं की शरण तथा जीवन का अन्तिम भाग:**— कन्नौज के निकट शेरखां के साथ अपनी किस्मत का अन्तिम फैसला करके हुमायूं एक स्थान से दूसरे स्थान पर शरण व सहायता मांगता फिरा। आगरे से खजाना लेकर अपने परिवार सहित वह सबसे पहले दिल्ली आया। वहाँ से सरहिंद की ओर बढ़ा। कामरान की ओर से विश्वासघात की गन्ध पाकर वह सिंध की ओर गया और राजपूताने तथा सिन्ध के मैदानों में तीन साल तक भटकता फिरा। जोधपुर के राजा ने उसे फौजी सहायता देने की प्रतीज्ञा की थी पर अन्त में वह भी विश्वासघाती निकला और उसने हुमायूं को कैदी बनाना चाहा। इस लिए अब हुमायूं अमरकोट पहुंचा, जहां उसका पुत्र अकबर पैदा हुआ। अकबर को कन्धार में छोड़कर अब हुमायूं फारस पहुंचा। फारस के शाह ने उसको दो शर्तों पर सहायता का वायदा किया—(१) सुन्नी धर्म को छोड़कर शिया धर्म को अपनाओ और (२) कन्धार को जीतकर मुझे दो। इन दोनों शर्तों को स्वीकार करके हुमायूं ने फारस की फौज की सहायता से काबुल और कन्धार जीत लिया और बाद को दिल्ली और आगरा भी सन् १५५५ ई० में विजय कर लिया और अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार, अन्त में उसका भाग्य फिर लौट आया। परन्तु इस अभागे बादशाह का जीवन अब भी सुख से न बीता। मुश्किल से ही उसने अपने राज्य का सुख ६ महीने तक भोगा कि २४ जनवरी १५५६ ई० में अपने पुस्तकालय की चिकनी सीढ़ियों से फिसल कर गिर पड़ा और परलोक सिधार गया। **इस प्रकार सारे जीवन भर ठोकरें खाकर अन्त में भी ठोकर खाकर ही मरा। इससे अभागा बादशाह भारतवर्ष के इतिहास में शायद दूसरा कोई नहीं हुआ।**

## हुमायूं का चरित्र तथा उसके कार्यों का मूल्यांकन

हुमायूं के जीवन तथा उसके कार्यों का निरीक्षण करने के उपरान्त अब हम उसके चरित्र तथा कार्यों का मूल्यांकन करना आवश्यक समझते हैं। उसके स्वभाव तथा कार्यों की समीक्षा निम्नलिखित दृष्टिकोणों से की जा सकती है—

**(१) व्यक्ति के रूप में**—हुमायूं अपने पिता बाबर का बड़ा ही आज्ञाकारी पुत्र था। उसने न केवल अपने पिता के जीवन काल में ही वरन् उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उसकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। अपनी माता के प्रति भी उसकी बड़ी श्रद्धा थी। वह अपने सभी सम्बन्धियों के साथ प्रेम का बर्ताव करना चाहता था। यद्यपि उसके कई पत्नियाँ थीं परन्तु वह उन सब को समान रूप से प्रेम करता था। अपनी सन्तान में भी उसका बड़ा स्नेह था। उसमें उच्च कोटि की उदारता तथा क्षमाशीलता भी थी। इसी आदत के कारण वह बार बार विश्वासघात करने वालों

को भी क्षमा कर दिया करता था। जब उसका घातक शत्रु कामरान उसके सामने पेश किया गया और सभी अमीरों ने उससे कामरान की हत्या कर डालने की प्रार्थना की तो हुमायूं ने उत्तर दिया, "यद्यपि मेरी बुद्धि आप लोगों की ओर आकष्ट होती है, किन्तु मेरा हृदय नहीं।" इस प्रकार उसने अपने भाई का रक्त बहाने से इन्कार कर दिया। इस अत्यधिक उदारता तथा क्षमाशीलता के कारण कभी-कभी वह भयानक विपत्तियों में फंस जाता था।

उपरोक्त गुणों के साथ-साथ हुमायूं के चरित्र में कुछ अवगुण भी थे। वह अस्थिर और अदृढ़ था। न तो उसमें अध्यवसाय की क्षमता ही थी और न दृढ़ संकल्प ही। वह अकर्मण्य, विलासी और आरामतलब भी था। उसकी आमोदप्रियता युद्ध के अवसर पर बड़ी घातक सिद्ध होती थी। वह अफीम भी बहुत खाता था जिससे उसकी अकर्मण्यता और विचारशून्यता निरन्तर बढ़ती जाती थी।

**(२) मुसलमान के रूप में**—हुमायूं पक्का मुसलमान था और इस्लाम धर्म में उसकी बड़ी श्रद्धा थी। परन्तु उसमें धार्मिक कट्टरता की भावना अधिक न थी। उसका व्यवहार शिया मुसलमानों के प्रति बुरा न था। स्वयं उसकी पत्नी हमीदा बानू बेगम तथा उसका स्वामिभक्त सेवक बैरमखाँ शिया थे। परन्तु हिन्दुओं के साथ वह सहिष्णुता का व्यवहार न कर सका। कालिंजर में उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट करा दिया था, परन्तु नियमित रूप से वह हिन्दुओं पर अत्याचार नहीं करता था।

**(३) सैनिक के रूप में**—हुमायूं बड़ा ही वीर तथा साहसी सेनापति था। शारीरिक बल उसमें पर्याप्त मात्रा में मौजूद था। आपत्ति काल में उसका धैर्य कभी भंग न होता था और रण क्षेत्र में वह अपने प्राणों की चिन्ता न करके अपने को भयानक आपत्ति में डाल देता था। इस प्रकार एक अच्छे सैनिक के सब गुण उसमें मौजूद थे। परन्तु वह एक कुशल सेनाध्यक्ष न था। उसमें नेतृत्व ग्रहण करने की क्षमता न थी। यही कारण है कि उसके साथी उसके साथ प्रायः विश्वासघात कर जाया करते थे और विद्रोह कर बैठते थे। इसके अतिरिक्त वह अपने शत्रु की कमजोरी तथा मुसीबतों से लाभ उठाना नहीं जानता था। इस प्रकार एक कुशल सेनापति के रूप में वह कभी सफल न हो सका।

**(४) शासक के रूप में**—जहाँ तक एक कुशल शासक का सम्बन्ध है, न तो हुमायूं में रचनात्मक प्रतिभा थी, न उसे रचनात्मक कार्य करने और अपने शासन को सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित बनाने का अवसर ही मिला। वह निरन्तर अपने शत्रुओं से युद्ध करता रहा। इसलिये अपनी जनता के नैतिक तथा भौतिक विकास की ओर वह ध्यान न दे सका। वह अपने सैनिकों तथा अफसरों पर अनुशासन नहीं रख पाता था और बड़ा ही अकर्मण्य था। जब भी समय मिलता वह तुरन्त विलासिता तथा आमोद-प्रमोद में संलग्न हो जाया करता था। ऐसा व्यक्ति कभी सफल शासक नहीं बन सकता।

(५) साहित्य अनुराग और विद्याव्यसन—हुमायूं बड़ा ही विद्याप्रेमी तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। वह स्वयं एक अच्छा कवि था और भूगोल, गणित, ज्योतिष, दर्शन तथा धर्म शास्त्र का बड़ा अच्छा ज्ञाता था। तुर्की तथा फारसी दोनों भाषाओं का उसे बड़ा अच्छा ज्ञान था। ज्योतिष में अभिरुचि के कारण उसने सात नक्षत्रों के नाम पर सात भवन बनवाये थे जिसमें से प्रत्येक भवन एक विशिष्ट वर्ग के लोगों के लिये होता था।

शिक्षा प्रसार के लिये उसने अनेक विद्यालयों की स्थापना की थी। पुस्तकालय स्थापना में भी उसकी रुचि थी। उसने अपने पुस्तकालय में अनेक भौतिक ग्रन्थों का संग्रह किया था। युद्ध के समय भी वह साथ में अनेक पुस्तकें ले जाता था। इसी पुस्तकालय की सीढ़ी से फिसल कर २४ जनवरी १५२६ ई० को वह परलोक सिधार गया।

अब हम उसके चरित्र के विषय में कुछ विद्वानों के मत प्रगट करते हैं:—

**मिर्जा हैदर के अनुसार**—"हुमायूं बादशाह बाबर के पुत्रों में सब से ज्येष्ठ, महान और विश्रुत था। मैंने उसकी भाँति सौम्य और प्रतिभाशाली व्यक्ति कम देखा है। किन्तु विलासी तथा दुराचारी व्यक्तियों की संगति के कारण उसमें कुछ दोष उत्पन्न हो गये थे। इन दोषों में अफीम का प्रयोग भी था।"

**फरिश्ता के अनुसार**—"हुमायूं बड़े ही भद्र स्वभाव का था। उसमें बड़ी उदारता और दयालुता थी। वह बड़ा निर्भीक, दानशील और उदार शाहजादा था। वह भूगोल विद्या में बड़ा दक्ष था और उसे विद्वानों की संगति में बहुत आनन्द आता था। नमाज तथा वजू का उसे बड़ा ध्यान रहता था और बिना वजू किये वह अल्लाह का नाम न लेता था।"

**लेनपूल का मत**—(इनका मत ऊपर 'हुमायूं द्वारा उपार्जित कठिनाइयाँ' शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा चुका है।)

**नजामुद्दीन अहमद का मत**—"हुमायूं के दिव्य चरित्र में पौरुष के सभी गुण विद्यमान थे और साहस और वीरता में वह अपने समय के सभी राजाओं से बढ़ कर था। ...... ज्योतिष और गणित में वह अद्वितीय था। वह अच्छी कविताएं किया करता था और उस समय के विद्वान, महान् और भद्र जन उसके संपर्क में आया करते थे। उसकी उदारता ऐसी थी कि जब कामरान और चगताई अमीर बंदी बना कर उसके सम्मुख उपस्थित किये जाते और उसके अधिकार में आ जाते तो वह बार-बार उन्हें क्षमा कर देता था। वजू का सदा ध्यान रखता था और जब तक वजू न कर लेता अल्लाह का नाम तक न लेता था।"

---

**प्रश्न २—हुमायूं के चरित्र का परिचय दीजिए और उसकी असफलता के कारण स्पष्ट कीजिए।**

**Q. 2. Give a Character sketch of Humayun and mention the causes of his failure.**

उत्तर—उत्तर के लिये प्रश्न नं० १ पढ़िये।

३

## (शेरशाह सूरी १५४०–१५४४)

## SHER SHAH SURI (1540 To 1544 A. D.)

प्रश्न १—शेरशाह के प्रारम्भिक जीवन तथा हुमायूं के साथ उसकी लड़ाइयों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

Q. 1. Describe the early life of Sher Shah and his struggles against Humayun.

उत्तर—(१) शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन—(क) शेरशाह का बचपन का नाम फरीद खाँ था। उसका बाप हसन बिहार में सहसराम का जागीरदार था। फरीद का पिता उसकी सौतेली माँ के वश में था। इसलिये उसके लड़कपन में उसने फरीद पर कोई ध्यान नहीं दिया। कहते हैं कि फरीद के पिता हसन खां के चार स्त्रियाँ तथा आठ लड़के थे और वह अपनी सब से छोटी पत्नी के सौन्दर्य पर विमुग्ध रहता था और फरीद तथा उसकी माँ की उपेक्षा किया करता था। यह फरीद के लिये असह्य था। अन्त में, परेशान होकर आठ वर्ष की अवस्था में फरीद अध्ययन के लिये जौनपुर चला गया। इन दिनों जौनपुर शिक्षा तथा संस्कृति का केन्द्र था। यहाँ पर फरीद तीन वर्ष तक विद्या प्राप्त करता रहा और अपने मस्तिष्क का विकास पूर्णतः कर लिया। इसी बीच में हसन खाँ जौनपुर के गवर्नर 'जमाल खाँ' से मिलने के लिये जौनपुर आया। यहाँ पर उसके सम्बन्धियों ने अपने योग्य तथा भाग्यवान पुत्र की उपेक्षा करने के कारण इसे बहुत बुरा भला कहा और दोनों में मेल करा दिया और सहसराम तथा ख्वासपुर की जागीर का प्रबन्ध फरीद को सौंप दिया गया।

(ख) जागीर का प्रबन्ध—लगभग २१ वर्ष तक फरीद अपने पिता की जागीर के प्रबन्ध में संलग्न रहा और उसने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा तथा योग्यता का परिचय दिया। उसने निम्नलिखित सिद्धांतों पर जागीर का प्रबन्ध आरम्भ किया था—

(i) न्याय के बिना राज्य का स्थायित्व असम्भव है और दण्ड के बिना न्याय सम्भव नहीं है।

(ii) शासक में सेवा का भाव होना चाहिए और उसे सदैव अपनी प्रजा के हित का ध्यान रखना चाहिये। अतएव लगान निश्चित करते समय बड़ी उदारता दिखलानी चाहिये परन्तु वसूल करते समय किसी भी प्रकार की दया की आवश्यकता नहीं।

(iii) जमींदारों पर पूरा नियन्त्रण रहना चाहिये। यदि कोई जमींदार आज्ञा का उल्लंघन करता है अथवा डाके डालता है तो उसे कठोर दण्ड मिलना चाहिये।

यदि विद्रोही जमींदार प्रायश्चित करें तो उसकी सम्पत्ति लौटा देनी चाहिये और उनके साथ उदारता का व्यवहार करना चाहिये।

फरीद ने इन्ही सिद्धान्तों पर अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध किया और शान्ति तथा सुव्यवस्था रखने के लिये उसने दो सौ घुड़सवारों की अपनी एक सेना भी रखली। अब साधारण से साधारण व्यक्ति भी उसके पास आ सकता था और अपनी शिकायतें सुना सकता था। यदि पता लगाने पर अफसर का अपराध सिद्ध हो जाता था तो उसे निःसंकोच दण्ड दिया जाता था।

उपरोक्त सुधारों से हमें फरीद की राजनीतिज्ञता तथा दूरदर्शिता का पता चलता है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वह लोकमत का बहुत आदर करता था और अपने को अपनी प्रजा के हितों का संरक्षक समझता था।

**(ग) फरीद का प्रवास**—अपने पिता की जागीर के सुप्रबन्ध से फरीद इतना प्रसिद्ध हो गया कि उसकी सौतेली माँ को बड़ी ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। अब उसने फरीद के विरुद्ध हसन के कान भरने शुरू कर दिये। परिणाम यह हुआ कि फरीद को अपने पिता की जागीर छोड़कर एक प्रवासी का जीवन व्यतीत करना पड़ा। १५१८ ई० में अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिये वह अपने घर से निकल पड़ा और सुल्तान इब्राहीम लोदी से आगरे में मिला। वहाँ अधिक सफलता का अवसर न देखकर फरीद बिहार गया और वहाँ के सूबेदार दरियाँ खां लोहानी के पुत्र बहार खाँ के यहाँ नौकरी कर ली। यहां उसने अपनी योग्यता का पूरा परिचय दिया। एक बार फरीद ने बहार खां के साथ शिकार पर जाते समय तलवार के एक ही वार से शेर को मार डाला। उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर बहार खां ने उसे शेरखाँ की उपाधि दी। कुछ ही दिनों बाद बहारखां और शेरखां में अनबन हो गई और शेरखां बाबर के यहाँ आगरे चला आया।

**(घ) शेरखाँ का मुगलों से सम्बन्ध**—जब बाबर पूर्व के अफगानों को वश में लाने लगा तो शेरखाँ ने उसकी बड़ी सहायता की जिससे प्रसन्न होकर बाबर ने उसे उसके पिता की जागीर दे दी।

बहारखाँ की मृत्यु के पश्चात् बाबर ने बिहार का सूबेदार बहारखाँ के नाबालिग लड़के जलालखाँ को नियुक्त किया और शेरखाँ इस सूबे का शासन प्रबन्ध करने लगा। जब जलालखाँ बालिग हुआ तो उसे शेरखाँ के हाथों कठपुतली बने रहना पसन्द नहीं आया। अतः उसके हाथों से छुटकारा पाने के लिये उसने बंगाल के शासक की सहायता मांगी। शेरखाँ ने उन दोनों की सेनाओं को आसानी से हराकर बिहार पर अधिकार जमा लिया। इसके पश्चात् उसका संघर्ष हुमायूं से शुरू हुआ।

**(२) हुमायूं के साथ शेरखाँ का संघर्ष**—इसके लिये अध्याय २ का प्रश्न नं० १ पढ़िये।

———

प्रश्न २—शेरशाह के शासन का संक्षिप्त विवरण दीजिये। उसने क्या सुधार योजनायें चलाईं, वर्णन कीजिए।

Q. 2. Describe in brief the system of administration of Sher Shah Suri. What refc⁻ms did he introduce in this sphere ?

उत्तर—(१) शासन के सिद्धान्त —शेरखाँ के शासन प्रवन्ध को समझने से पहले उसके शासन के सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है जिनके आधार पर वह शासन करता था। सर्व प्रथम उसने देश में पूर्ण शान्ति स्थापित करना आवश्यक समझा। द्वितीय—वह अपनी जनता की उन्नति तथा उसके सुख के लिये एक योग्य तथा प्रगतिशील शासन स्थापित करना चाहता था। इस प्रकार वह जनता के हृदय में शासन के प्रति विश्वास और आदर का भाव उत्पन्न करना चाहता था। तृतीय—वह प्रजा और शासक के बीच की कृत्रिम दीवारों को तोड़ कर दोनों के बीच में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था और इस प्रकार वह प्रजा पर होने वाले अत्याचारों की सम्भावना को कम करना चाहता था। चतुर्थ—उसने यह अनुभव किया कि देश के शासन के लिये धन का होना बहुत आवश्यक है और उस धन के प्राप्त होने का एकमात्र साधन किसान ही हैं। इसलिये उसने किसानों की उन्नति को सर्वोपरि समझा। पंचम—उसने पक्षपात रहित और शीघ्र निश्चित न्याय को उचित समझा। षष्ठम—उसने धार्मिक पक्षपात की नीति का वहिष्कार किया। अन्त में, उसका यह सिद्धान्त था कि आय का अधिकांश जन-कार्य में लगना चाहिये। इसलिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये प्रजा की सम्पत्ति का अपव्यय वह हमेशा अनुचित समझता था।

(२) केन्द्रीय शासन—शेरशाह का शासन केन्द्रस्थ तथा स्वच्छ निरंकुश शासन था। राज्य का सारा उत्तरदायित्व और उसकी सारी सत्ता उसी के हाथ में केन्द्रित थी। वह न केवल राज्य प्रबन्ध करता था, वरन् सेना तथा न्याय का भी सर्वोच्च अध्यक्ष था। मध्यकालीन राजाओं में केवल शेरशाह ही एक ऐसा राजा हुआ है जिसकी सहायता के लिये एक भी मन्त्री नहीं था। उसने यह उचित न समझा कि कठिनाइयों के समय उसे कोई सलाह दे या विना समझे पैर उठाने से कोई उसे रोके। इसका एक कारण यह भी था कि उस समय कोई ऐसा व्यक्ति न था जिस पर विश्वास किया जाता और दूसरी वात यह थी कि शेरशाह स्वयं वहुत शक्तिशाली और परिश्रमी था और उचित शासन प्रबन्ध का उसे पूरा ज्ञान था।

(३) स्थानीय तथा प्रान्तीय सरकारें—गांवों को स्थानीय स्वराज्य प्रदान किया गया था। गांवों के ऊपर परगने थे। परगनों को मिलाकर 'सरकार' वनती थी। सरकारों के ऊपर 'प्रांत' थे और सबके ऊपर बादशाह स्वयं था। प्रत्येक परगने में एक अमीन, शिकदार, एक खजान्ची, एक मुन्सिफ, एक फारसी लेखक और एक हिन्दी लेखक होता था। प्रत्येक सरकार में एक शिकदरे-शिकेदारान और एक मुन्सिफे-मुन्सिफान तथा और भी कई उच्च पदाधिकारी होते थे। प्रान्तों के प्रधान अफगान अमीर और राजदरबारी बनाये जाते थे जिन्होंने मुगलों से भारतवर्ष का राज्य जीतने

में शेरशाह की सहायता की थी। सभी को अपने पद के अनुसार अधिकार दिये जाते थे। शेरशाह ने अफसरों के स्थान परिवर्तन की प्रथा भी चलाई क्योंकि उसका विश्वास था कि एक ही स्थान पर रहते रहते अफसरों में बहुत सी बुराई उत्पन्न हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त राज्य का कोई प्रधान अफसर जनता के कार्यों में बिना राजाज्ञा के कुछ भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

(४) शासन विभाग—आधुनिक खोजों से पता चलता है कि शेरशाह ने अपने राज्य संचालन के लिये सरकार के कार्य को कई भागों में विभक्त कर दिया था। इन विभागों में सैनिक विभाग, अर्थ विभाग, जन कार्य विभाग और न्याय तथा दान विभाग आदि थे।

**(क) सेना**- शेरशाह को अपने साम्राज्य को सुरक्षित तथा सुसंगठित रखने के लिये एक विशाल तथा सुशिक्षित सेना की आवश्यकता थी। वह अलाउद्दीन के सैनिक संगठन से बहुत प्रभावित हुआ था। अतएव उसने उसके सिद्धान्तों पर अपनी सेना का संगठन किया। वह सम्राट तथा सैनिकों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। अतएव उसने सामन्ती प्रथा का अन्त कर दिया और सिपाहियों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित किया। यह सिपाहियों को स्वयं भर्ती करता था और उनका वेतन भी स्वयं निश्चित करता था। हिन्दुओं को शाही सेना में प्रमुख स्थान मिलता था। हिन्दुओं का एक अलग तोपखाना भी होता था। इस प्रकार शेरशाह ने सेना के राष्ट्रीयकरण का प्रयास किया था। उसकी सेना देश के विभिन्न भागों में विभक्त रहती थी और छावनियों में रक्खी जाती थी। सम्राट के आधीन स्वयं एक बहुत बड़ी सेना रहती थी जिसमें १५०००० अश्वारोही तथा २५००० पैदल सैनिक रहते थे। इसके अतिरिक्त उसमें ५००० हाथी और बहुत बड़ा तोपखाना भी था। अलाउद्दीन की भाँति शेरशाह ने भी **घोड़ों को दाग देने तथा हुलिया लिखाने की प्रथा चलाई थी** जिससे बेईमानी न हो सके और घोड़े न बदले जा सकें। सैनिक नियम बड़े कठोर थे। कोई सिपाही फसल को नुकसान नहीं पहुँचा सकता था। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए दुर्ग भी बने हुए थे, जिनमें योग्य सेनापतियों की अध्यक्षता में सुरक्षा सेनायें रक्खी जाती थीं। इस प्रकार शेरशाह ने एक बड़ी ही सुशिक्षित तथा सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित सेना का प्रबन्ध किया था।

**(ख) अर्थ**— आय का मुख्य साधन भूमि-कर था। इसके अतिरिक्त आय के और भी कई साधन थे, जैसे चुंगी जो कई स्थानों पर ली जाती थी। युद्ध के समय जो लूट का माल मिलता था वह भी राज्य की आय का एक बहुत बड़ा साधन था। परन्तु शेरशाह ने बहुत से अप्रिय अनुचित करों को हटा दिया था।

**(ग) न्याय**—शेरशाह ने न्याय व्यवस्था का भी बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया था। उसकी धारणा थी कि न्याय के बिना राज्य का स्थायित्व असम्भव है और दण्ड के बिना न्याय सम्भव नहीं है। अतएवं वह अपराधियों को निःसंकोच दण्ड देता था। इस मामले में तो वह अपने पुत्रों तथा प्रसिद्ध अमीरों को भी क्षमा नहीं करता था। इस प्रकार न्याय में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं होता था। न्याय

करने के लिए उसने बहुत से न्यायालय स्थापित किये। उसने उन छोटी श्रेणी के लोगों को भी बादशाह के सामने फरियाद करने की आज्ञा दी जिनके ऊपर ऊँचे अफसर अत्याचार किया करते थे। उसने प्राचीन ग्राम संस्थाओं की पुनः स्थापना की और उनके कार्य संचालन में किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली जाती थी। दण्ड विधान बहुत ही कठोर था। प्रधान मुन्सिफ कर-सम्बन्धी मुकदमों की जाँच करते थे और अन्य मुकदमों का निर्णय काजी और मीर अदल किया करते थे।

शेरशाह ने आमिल तथा गवर्नरों को यह आदेश दे दिया था कि यदि उनके अधिकार क्षेत्र में कोई चोरी हो जाय अथवा डाका पड़ जाय और चोरों अथवा डाकुओं का पता न चले तो उन्हें चाहिये कि पास पड़ौस के गांवों के मुकद्दमों को कैद कर लें और तब तक उन्हें मुक्त न करें जब तक वे चोरों का पता न लगा द अथवा क्षति पूर्ति न कर दें। कभी-कभी तो हत्या के मामले में जब कोई मुकदमा हत्यारे का पता न लगा सकता था तो उसे स्वयं प्राण दण्ड दे दिया जाता था। इस प्रकार दण्ड का उद्देश्य अपराधी को दण्ड देने के अतिरिक्त दूसरों के सामने आदर्श भी उपस्थित करता था।

शेरशाह सूरी की न्याय व्यवस्था की प्रशंसा करते हुये **श्री इलियट महोदय ने** लिखा है :--

In the time of Sher Shah, an old woman might place a basket of ornaments on her head and go on journey and no thief or robber would come near her for fear of punishment which Sher Shah inflicted."

(घ) जन-मार्ग तथा सरायें—राष्ट्र निर्माण की योजना में शेरशाह ने सबसे प्रमुख कार्य सड़कों और सरायों के निर्माण और सुधार का किया। सड़कों द्वारा उसने राज्य के सभी प्रमुख स्थानों को एक दूसरे से मिला दिया। वर्तमान ग्रांड ट्रंक रोड का निर्माण शेरशाह ने ही कराया था। उसकी सबसे बड़ी सड़क जो झेलम पर बनी, सुनार गांव ने रोहतासगढ़ तक जाती थी। दूसरी सड़क उसने बनारस से माँडू तक बनवाई। तीसरी सड़क आगरा और दिल्ली को मिलाती थी। इसके अतिरिक्त एक सड़क जौनपुर तक जाती थी। सड़कों के दोनों ओर फलों के छायादार वृक्ष लगाये गये, उसने सरायों का भी निर्माण किया जिनमें यात्रियों की सुविधा के लिये सभी वस्तुयें होती थीं। प्रत्येक सराय में एक कुआँ और एक मस्जिद होती थी। हरएक सराय में एक शाही कमरा भी होता था जिसे खानाये-शाही कहते थे। इसमें दौरे पर जाने वाले सरकारी अफसर ठहरा करते थे। ये सरायें डाक की चौकी का भी काम देती थीं। सराय में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के रहने के लिये अलग-अलग स्थान रहता था। सराय के द्वार पर जलपूर्ण पात्र रक्खे रहते थे जिससे लोग पानी पी सकें। प्रत्येक सराय में ब्राह्मण नियुक्त रहते थे जो गर्म तथा ठण्डे जल, बिस्तर, भोजन आदि की व्यवस्था हिन्दुओं के लिये करते थे। इस प्रकार यात्रियों की

सुविधा के लिये शेरशाह ने काफी प्रबन्ध कर दिया था। इससे सड़कें सुरक्षित हो गईं और शासन का कार्य भी सुचारू रूप से होने लगा।

(५) **गुप्तचर तथा पुलिस**—प्रत्येक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक के लिए एक सुव्यवस्थित गुप्तचर विभाग की बड़ी आवश्यकता रहती है। शेरशाह के यहाँ भी गुप्तचर विभाग था जो बड़ी सावधानी से कार्य करता था और जरा जरा सी घटनाओं की सूचना सम्राट तक पहुँचाया करता था।

आन्तरिक शान्ति तथा सुव्यवस्था के लिए पुलिस का प्रबन्ध था। इसका मुख्य कार्य देश में शान्ति स्थापित रखना, अपराधों का पता लगाना तथा उनको कम करने का प्रयत्न करना था। पुलिस पदाधिकारी जनता को उपदेश देकर उन्हें सच्चरित्र तथा कर्तव्य-परायण बनाने का प्रयत्न भी करते थे।

(६) **भूमि का प्रबन्ध**— शेरशाह ने भूमि का भी बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। परन्तु उसके भूमि सम्बन्धी सुधारों की विवेचना करने से पहले उसके भूमि सम्बन्धी सिद्धांतों पर विचार कर लेना आवश्यक है। उसका प्रथम सिद्धान्त यह था कि प्रजा की सुविधा सदैव ध्यान में रहे। दूसरा, यह, कि कर की दर निश्चित करते समय नम्रता का व्यवहार हो, परन्तु वसूल करते समय कठोरता का। तीसरा, यह कि कर तथा उपज में अनुपात हो जिससे किसान को सरकारी मांग के अदा करने में कठिनाई न हो। चौथे, यह कि किसान को अपनी भूमि पर स्थायी अधिकार प्राप्त हो जिससे वह उसे अपनी सम्पत्ति समझे और उसकी उन्नति में संलग्न रहे। उसकी यह भी धारणा थी कि कि किसानों पर लगान बकाया नहीं रहने देना चाहिये क्योंकि जब लगान बकाया रह जाता है तभी किसानों तथा राज्य कर्मचारियों में झगड़ा होता है।

इन सिद्धान्तों को कार्य-रूप में परिणत करने के विचार से शेरशाह ने कृषि के अन्तर्गत भूमि के नापने की प्रथा चलाई। यह नाप रस्सी से की जाती थी। उसके बाद उसकी पैदावार का अनुमान लगाकर उसके अनुसार पैदावार का ⅓ भाग भूमि का कर माना जाता था किसान को यह कर नकदी में चुकाना पड़ता था परन्तु कहीं कहीं अनाज के रूप में भी कर चुकाने की सुविधा प्रदान की जाती थी। कृषक को अपनी खेती का पूरा विवरण बादशाह को देना पड़ता था जिससे वह सरकार को कर के रूप में जो कुछ और जितना दे सकता था उसका विवरण भी देता था। इसे कबूलियत कहते थे। इस कबूलियत पर प्रत्येक रैयत के हस्ताक्षर होते थे। बादशाह कृपक को उत्तर में एक पट्टा देता था, जिसमें सरकारी कर का ब्यौरा अंकित रहता था और उसी के अनुसार भूमि-कर वसूल किया जाता था किसान को यह प्रोत्साहन दिया जाता था कि वह स्वयं राज-कोष में आकर अपना कर जमा करे। इससे गांवों के मुकदमों और मुखियों का महत्व क्षीण हो जाता था तथा राजकीय अफसरों का किसानों के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता था। परन्तु यह

प्रथा पूरे साम्राज्य में व्यापक नहीं थी। प्रोफेसर कानूनगो के अनुसार "शेरशाह की नीति इस भूमि-कर प्रथा को सम्पूर्ण साम्राज्य में फैलाने की थी परन्तु स्थानीय रीति-रिवाजों के कारण इस प्रथा को कार्यान्वित करने में कठिनाई देखकर तथा देश की स्थिति को सम्भाले रखने के लिए शेरशाह को अपना यह विचार स्थगित करना पड़ा।"

(७) **भूमि-कर प्रथा में सुधार का परिणाम**—भूमि-कर सुधार का परिणाम यह हुआ कि जनता के सिर से बहुत से अवैधानिक करों का भार हट गया। किसान अब स्वतन्त्र होकर अपनी भूमि जोत सकता था और आराम से अपना निर्वाह करता था। इसी प्रकार के सुधार से देश की स्थिति सुधरने लगी और प्रजा को भी सुख मिल गया। उन सुधारों से न केवल प्रजा को वरन् सरकार को भी बड़ा लाभ हुआ क्योंकि लगान निश्चित तथा उचित होने के कारण इसके वसूल करने में बड़ी आसानी हो गई।

(८) **निकर्ष**— इस प्रकार शेरशाह की उत्तम शासन प्रणाली ने उसकी कीर्ति को इतिहास में अमर बना दिया है। उसकी प्रजा-हित की चिन्ता, कर्मचारियों पर नियन्त्रण, भूमिपतियों का दमन, धार्मिक सहिष्णुता, शासन कुशलता तथा निष्पक्ष न्याय ने न केवल उस युग की जनता को सुख एवं शान्ति प्रदान की, वरन् उसकी मृत्यु के पश्चात शताब्दियों तक प्रचलित शासन प्रणालियों में आत्मा बन कर उन्हें जीवित बना दिया। मध्यकालीन युग में उसकी समानता करने वाला अकबर के अतिरिक्त कोई दूसरा शासक नहीं हुआ। वह शासन प्रवन्ध की बहुत सी बातों में अकबर का पथ-प्रदर्शक था। उसकी शासन-प्रणाली तो कई बातों में आधुनिक शासन प्रणालियों से भी उत्तम थी। यही कारण है कि बहुत से इतिहासकारों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

Wolseley Haig का कहना है, "He was in truth one of the greatest rulers who ever set on the throne of Delhi. No other, from Aibak to Aurangzeb, possessed such intimate knowledge of the details of administration or was able to control public business so effectively as he."

प्रोफेसर कानूनगो उसके भूमि सम्बन्धी सुधारों के विषय में लिखते हैं कि "यदि शेरशाह दस या बीस वर्ष और जीवित रहता तो आज हमें यह जमींदार वर्ग और उसका अत्याचार न देखना पड़ता ......" इसके आगे उन्होंने लिखा है, "यदि आज तक कोई राजा अपने समय की दौड़ धूप में समय से भी आगे बढ़ गया है तो वह यही अफगान शासक है। प्रभात की सुनहली किरणें जैसे दिन के उज्ज्वल प्रकाश की सूचक होती हैं, उसी तरह मनुष्य के भविष्य की कल्पना उसकी बाल्यावस्था में ही हो जाती है। शेरशाह की बाल्यावस्था में ही उसकी महानता के चिन्ह प्रकट होते थे। दृढ़ प्रतिज्ञा का संकेत उसके कपोलों पर ही अंकित था, धैर्य और सहनशीलता उसकी आँखों में झलकती थी और मस्तक पर राजत्व की रेखायें खिची हुई थीं।"

इस प्रकार पांच वर्ष के इस थोड़े से समय में इतनी अधिक प्रशंसा प्राप्त करने का सौभाग्य केवल इसी योग्य व्यक्ति को प्राप्त हुआ। विन्सेन्ट स्मिथ ने ठीक ही लिखा है कि "यदि शेरशाह कुछ दिन और जीवित रहता तो वह एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना कर जाता कि मुगलों का नाम भी भारतीय इतिहास के पृष्ठों में देखने को नहीं मिलता।

---

प्रश्न ३—सिद्ध कीजिए कि कार्य-कुशलता तथा राजनीतिज्ञता में शेरशाह सूरी अकबर का अग्रवर्ती (Fore-runner) था।

अथवा

"अकबर अपनी शासन सम्बन्धी नीति तथा व्यवस्था के लिये शेरशाह सूरी का बड़ा ऋणी था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

**Q. 3. Prove that Sher Shah Suri was the fore-runner of Akbar in efficiency and statesmanship.**

**Or**

**"Akbar was too great extent indebted to Sher Shah Suri in his policy of administration and organisation." Prove this statement.**

उत्तर:—शेरशाह सूरी के शासन सम्बन्धी सिद्धान्त एवं उसकी शासन पद्धति अकबर सम्राट तथा आगे आने बादशाहों के लिये एक आदर्श का विषय बन गये थे। अत: उन सभी बादशाहों ने शासन के क्षेत्र में शेरशाह सूरी की शासन व्यवस्था से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण की और उस पर अमल किया। यह बात अवश्य है कि इन्होंने अपने समय की आवश्यकतानुसार इनमें मामूली से संशोधन कर लिये थे। इस कारण से यह कहना उचित ही जान पड़ता है कि शेरशाह सूरी अकबर सम्राट का पथ-प्रदर्शक था। इसकी पुष्टि निम्नलिखित तथ्यों से होती है।

(१) शासन सम्बन्धी सिद्धान्त :—शेरशाह सूरी ने जिन सिद्धान्तों के ऊपर अपने शासन-प्रबन्ध की नींव डाली थी, लगभग उन सभी सिद्धान्तों को अकबर ने भी अपनाया। शेरशाह के शासन सम्बन्धी सिद्धान्तों के लिये प्रश्न नं० २ पढ़िये।

(२) भूमि-कर प्रणाली :—शेरशाह की भूमिकर प्रणाली भी मुगल सम्राटों के लिये एक बहुमूल्य देन सिद्ध हुई। शेरशाह सूरी ने कृषि के अन्तर्गत समस्त भूमि को नपवा डाला और पैदावार के लिहाज से उसे कई श्रेणियों में विभक्त कर दिया। प्रत्येक श्रेणी की भूमि का लगान पैदावार के अनुसार निश्चित किया गया। किसानों को पट्टे दिये गये और उनसे कबूलियत नामक दस्तावेज लिखवा लिये गये। इसी प्रकार का प्रबन्ध अकबर ने भी किया। भाग्यवश राजा टोडरमल ने ही, जिनने शेरशाह के समय में भूमि का प्रबन्ध किया था, अकबर के समय में इस कार्य को किया। शेरशाह जमींदारी प्रथा को खतम करके सरकार और किसानों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहता था। उसने किसानों को यह छूट दे रखी थी

कि वे अपना लगान सीधा सरकारी खजाने में जाकर जमा करा दें। इस प्रकार शेरशाह अपनी किसान प्रजा के हित का बड़ा ध्यान रखता था। यही नीति आगे चलकर अकबर सम्राट ने भी अपनाई।

(३) **सैनिक संगठन** :—जिस ढंग पर शेरशाह सूरी ने अपनी सेनाओं का संगठन किया था, उसी ढंग पर अकबर ने भी किया। घोड़ों को दागने तथा सैनिकों का हुलिया लिखने की प्रथा शेरशाहसूरी की भाँति अकबर ने भी अपनाई। उसी की भाँति अकबर ने अपने सैनिकों को नकद वेतन देना शुरू किया और वह स्वयं कभी कभी अपनी सेनाओं का निरीक्षण भी किया करता था। यह बात अवश्य है कि अकबर सम्राट ने सेना में मनसबदारी प्रथा को जन्म दिया जो कि शेरशाह सूरी के समय में नहीं थी।

(४) **न्याय विभाग** :—जिस प्रकार शेरशाह सूरी ने अपने राज्य में निष्पक्ष एवं उचित न्याय की व्यवस्था की, उसी प्रकार अकबर ने भी की। दोनों ने सरकारी कर्मचारियों के अत्याचारों की रोकथाम के लिये भरसक प्रयत्न किया। शेरशाह सूरी के राज्य काल में सैनिक लोग कूंच करते समय किसानों की फसल को किसी भी दशा में नुकसान नहीं पहुँचा सकते थे। यदि किसी गाँव में चोरी हो जाती थी अथवा कोई व्यक्ति कत्ल कर दिया जाता था तो वहाँ के चौधरी को अपराधी का पता लगाना पड़ता था अन्यथा उसे दण्ड का भागी होना पड़ता था। इस व्यवस्था के कारण शेरशाह के राज्य में अपराध बहुत कम होते थे और दण्ड विधान बड़ा कड़ा था एवं सब के साथ समान न्याय किया जाता था। ऐसी ही व्यवस्था अकबर के समय में थी। अकबर मे भी धर्म एवं जाति-पांति के भेद-भाव को मिटाकर सबके लिये समान न्याय का प्रबन्ध किया था।

(५) **धार्मिक सहिष्णुता** :—शेरशाह पहला मुसलमान शासक था जिसने कट्टर सुन्नी मुसलमान होते हुये भी धार्मिक सहिष्णुता की नीति को अपनाया। वह अपनी समस्त प्रजा को समान समझता था। इसी कारण उसने सब को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की थी। यही नहीं, बल्कि वह हिन्दुओं को योग्यतानुसार उच्च पदों पर भी नियुक्त करता था। अकबर ने भी इसी नीति को अपनाया। उसने अपनी शक्ति को दृढ़ बनाने के लिये राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोड़े और उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त किया। उसने सबको धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की और हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक सूत्र में बांधने के लिये दीनइलाही धर्म की भी स्थापना की। उसने मुल्लाओं एवं मौलवियों को शासन-प्रबन्ध के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करने दिया और प्रजा के हित को अपना लक्ष्य बनाया।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि शेरशाह सूरी ने जिस शासन-पद्धति एवं नीति को अपनाया उसी पर अकबर सम्राट ने भी अमल किया। इन्हीं कारणों से शेरशाह अकबर का अग्रवर्ती कहलाता है।

— ——

प्रश्न ४—शेरशाह सूरी के चरित्र तथा महत्वपूर्ण कार्यों पर प्रकाश डालिये।

Q. 4. Describe the character and achievements of Sher Shah Suri.

उत्तर—भारतवर्ष के इतिहास में शेरशाह सूरी एक बहुत ही महत्वपूर्ण व्यक्ति हुआ है जिसकी प्रतिभा, कार्य-कुशलता, सैनिक-चातुर्यता, उदारता तथा न्याय-प्रियता की लगभग सभी विद्वानों तथा इतिहासकारों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

यहां पर हम कुछ विद्वानों के मतों का उल्लेख करते हैं:—

ई० बी० हैवेल—"शेरशाह ने सैनिक तथा असैनिक दोनों ही विषयों में अद्भुत संगठन-शक्ति का परिचय दिया। अपने अथक परिश्रम से तथा प्रशासन की छोटी से छोटी बातों की ओर निजी ध्यान देकर पांच वर्ष के अल्प काल में ही उसने समस्त हिन्दुस्तान में कानून तथा व्यवस्था की स्थापना कर दी। इसमें सन्देह नहीं जो प्रजा दीर्घ काल से कष्ट भोगती आई थी और जो स्वभाव से ही नियमों का पालन करने की अभ्यस्त थी, अपेक्षाकृत शान्ति के कुछ समय तथा अंधाधुन्ध लूट से रक्षा के लिये इस लौह पुरुष अफगान की बड़ी कृतज्ञ थी। यद्यपि कभी-कभी वह बीते हुए स्वर्ण युग का स्मरण करके आहें भरती होगी जब शूद्र भी स्वतन्त्र आर्य थे और जब पांचों भारतों का महाराजाधिराज भी पंचायतों के नियमों का सम्मान करता था।"

**विलियम अर्सकाइन**—"शेरशाह ने अपनी प्रतिभा के सहारे ही सिंहासन प्राप्त किया था और जिस उच्च पद पर वह पहुँचा अपने को उसके सर्वथा योग्य सिद्ध कर दिया। बुद्धिमत्ता तथा अनुभव में, शासन तथा राजस्व के प्रबन्ध में और सैनिक चतुराई में वह भारत पर शासन करने वाले अपनी जाति वालों में सर्वश्रेष्ठ था। अकबर से पहले अन्य कोई शासक ऐसा नहीं था जिसमें व्यवस्थापक तथा प्रजा हितैषी इतनी भावना रही हो जितनी की शेरशाह में।"

**कीने**—"इस पठान जैसी सुबुद्धि का परिचय किसी अन्य सरकार ने तो क्या, अंग्रेजी सरकार ने भी नहीं दिया।"

**वी० ए० स्मिथ**—शेरशाह केवल भयंकर अफगानों के झुण्ड का नेता ही न था बल्कि स्थापत्य कला में भी उसे पर्याप्त रुचि थी जैसा कि बिहार में स्थित उसके सहसराम के मकबरे से स्पष्ट है। उसने शासन सुधार में भी अपनी अद्भुत रुचि का परिचय दिया था। उसके सुधार बहुत कुछ अलाउद्दीन के सिद्धान्तों पर आधारित थे और भविष्य में अकबर के पथ-प्रदर्शक बने। उसने मुद्रा में भी सुधार किये और चाँदी के बहुत से सिक्के चलाये जो बनावट और सफाई में बहुत श्रेष्ठ थे। पांच वर्ष के तूफानी शासन काल में उसने बहुत कुछ कर दिखाया। यदि वह कुछ और जीवित रहता तो अपने वंश को दृढ़ आधार पर खड़ा कर जाता और 'महान मुगलों' को इतिहास के रंगमंच पर प्रकट होने का अवसर न मिलता।"

**एच० एल० ओ० गैरेट**—"पाँच वर्ष के थोड़े से समय में ऐसे योग्यतापूर्ण बुद्धिमत से काम करने वाले बहुत ही कम मनुष्य हुए हैं।"

कालिका चरण कानूनगो—यदि आज तक कोई राजा अपने समय की दौड़ में समय से भी आगे बढ़ गया है तो वह यही अफगान शासक है। प्रभात की सुनहली किरण जैसे दिन के उज्जवल प्रकाश की सूचक होती हैं उसी प्रकार मनुष्य के भविष्य की कल्पना उसकी बाल्य अवस्था में ही हो जाती है। शेरशाह की बाल्यावस्था में ही उसकी महानता के चिन्ह प्रकट होते थे। दृढ़ प्रतिज्ञा का संकेत उसके कपोलों पर अंकित था, धैर्य और सहनशीलता उसकी आंखों में झलकती थी और मस्तिष्क पर राजत्व की रेखायें खिची हुई थीं।"

उपरोक्त विद्वानों के मतों का उल्लेख करके अब हम शेरशाह की विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभा पर प्रकाश डालना आवश्यक समझते है जो कि निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है—

(१) व्यक्ति के रूप में—शेरशाह सूरी के व्यक्तिगत जीवन पर दृष्टि डालने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसमें कौटुम्बिक प्रेम का सर्वथा अभाव था। न वह पितृ-भक्त था और न उसकी मातृ-भक्ति का ही कोई उदाहरण मिलता है। न उसमें दाम्पत्य प्रेम था और न उच्च कोटि का वात्सल्य प्रेम ही। परन्तु वह बड़ा परिश्रमी था। वह दिन रात अपने शासन के कार्यों में व्यस्त रहता था और कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करता था। वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और अपनी योग्यता तथा आत्म-विश्वास के कारण इनको कार्यान्वित करने में भी सफल हुआ। शेरशाह कर्तव्यपरायण भी बहुत था। उसे अपने कर्तव्यों का बड़ा ध्यान रहता था और उनके पालन का वह सदा ध्यान रखता था। वह कोरा आदर्शवादी न था बल्कि उसमें क्रियात्मक प्रतिभा भी थी। वह बड़ा ही विद्यानुरागी और साहित्यकारों का आश्रयदाता था। धर्माचार्यों तथा साहित्याचार्यों की संगति से उसे बड़ा अनुराग था और बिना उलमा लोगों को साथ लिये वह भोजन नहीं करता था। उसमें उच्च कोटि की उदारता तथा धार्मिक सहिष्णुता थी। दुर्बलों, असहायों तथा निर्धनों पर उसकी असीम कृपा रहती थी। वह अपनी हिन्दू तथा मुस्लिम प्रजा को समान दृष्टि से देखता था और दोनों के ही हित की चिन्ता किया करता था।

(२) सैनिक के रूप में—सैनिक के रूप में भी शेरशाह ने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। वह बड़ा ही वीर तथा साहसी सैनिक था और भयानक से भयानक परिस्थिति में भी अपना धैर्य नहीं खोता था। वह बड़ा ही कुशल सेना अध्यक्ष था। यही कारण है कि मुगल सम्राट हुमायूं के विरुद्ध भी उसे सफलता मिली। शत्रु को धोखा देना तथा अचानक उस पर आक्रमण कर देना उसकी रणनीति का एक अंग बन गया था। विजय प्राप्त करने के लिये वह नैतिक तथा अनैतिक सभी साधनों का सहारा लेने को तत्पर रहता था। नेतृत्व ग्रहण करने की उसमें अपूर्व क्षमता थी और उसी के सहारे उसे आशातीत सफलता मिलती रहती थी।

(३) विजेता के रूप में—विजेता के रूप में भी शेरशाह सूरी किसी अन्य सुल्तान अथवा सम्राट से पीछे न था। विजित प्रदेशों की सुरक्षा तथा सुशासन की व्यवस्था करने के उपरान्त ही वह आगे कदम उठाता था। इस प्रकार उसने एक

अत्यन्त सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित साम्राज्य की स्थापना कर दी थी। उसके युद्ध सम्बन्धी सिद्धान्त बड़े प्रशंसनीय थे। उसका आदेश था कि सैनिकों का निरर्थक संहार न हो, कृषकों की फसल को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे और युद्ध में क्रूरता तथा रक्त-रंजन की प्रवृत्ति न हो।

(४) शासक के रूप में शेरशाह सूरी केवल एक अच्छा सेनापति और विजेता ही न था बल्कि एक उच्च कोटि का शासक भी था। उसके शासन प्रबन्ध की तो सभी विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उसके शासन सम्बन्धी सिद्धान्त उसकी राजनीतिज्ञता तथा दूरदर्शिता के द्योतक हैं। प्रजाहित चिन्तन, भूमिपतियों का दमन, भूमि सुधार, धार्मिक सहिष्णुता तथा कर्मचारियों पर पूर्ण नियन्त्रण उसके कुछ ऐसे सिद्धान्त थे जिनका अनुसरण अकबर सम्राट ने भी किया और इतिहास में अपना नाम अमर बनाया। इन्हीं आदर्शों का अनुसरण आज हमारी राष्ट्रीय सरकार कर रही है।

**(५) राष्ट्र निर्माता के रूप में**– शेरशाह एक बहुत बड़ा राष्ट्र निर्माता था। भारत को एक राष्ट्र बनाने का सर्वप्रथम प्रयास उसी ने किया था। उसने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक समान समझा और उनमें सद्भावना तथा सहानुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। उसने एक सुसंगठित शासन की स्थापना करके दोनों जातियों के मनुष्यों के राजनैतिक तथा आर्थिक उत्थान का प्रयत्न किया। उसके शासन काल में दोनों ही जातियों को अपना धर्म तथा संस्कृति के उत्थान का समान अवसर मिला। इसके साथ-साथ कला की भी पर्याप्त उन्नति हुई। हम उसे आधुनिक भारत का भी राष्ट्र-निर्माता कह सकते हैं। उसकी उदारता, सहिष्णुता, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, भूमिकर प्रथा, लोकहित की भावना, किसानों का उद्धार तथा बहुमत का आदर इत्यादि बातें आधुनिक विचारधाराओं की द्योतक हैं। इन्हीं सब कारणों से वह भारतीय इतिहास में अमर हो गया है।

**कालिका चरण** कानूनगो ने उसके विषय में लिखा है :—

"शेरशाह के राज्य आरोहण के साथ-साथ उदार इस्लाम का वह युग आरम्भ हुआ जो औरंगजेब के शासन की प्रतिक्रिया के समय तक चलता रहा। यह कहना अनुचित न होगा कि अकबर नहीं बल्कि शेरशाह प्रथम व्यक्ति था जिसने भारतीय राष्ट्र के निर्माण का प्रयत्न किया। उसकी प्रशासन प्रतिभा का कार्य उसके वंश के साथ लुप्त नहीं हुआ बल्कि सम्पूर्ण मुगल काल में विद्यमान रहा; साम्राज्य के अधिक विस्तृत हो जाने से उसमें कुछ थोड़े से परिवर्तन अवश्य करने पड़े थे। वह हमारी वर्तमान प्रशासन व्यवस्था का भी आधार है। ब्रिटिश भारत का आधुनिक मजिस्ट्रेट (दण्डाधीश) तथा कलक्टर शेरशाह के शिकदारे-शिकदारान का और तहसीलदार आमिल अथवा अमीन का उत्तराधिकारी है। राजस्व तथा मुद्रा-प्रणालियाँ जो थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक चलती रहीं, अकबर की नहीं बल्कि शेरशाह की कृतियाँ थीं।"

———

# अकबर महान (१५५६-१६०५)

## AKBAR THE GREAT (1556 To 1605 A. D.)

प्रश्न १—मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक कौन था—बाबर अथवा अकबर ? अपने उत्तर की पुष्टि कारण सहित कीजिये।

Q. 1. Who was the real founder of Mughal Empire in India- Babar or Akbar ? Give reasons in support of your answer.

उत्तर—(१) मुगल सम्राट बाबर—यह एक बहुत ही विवादग्रस्त प्रश्न है कि मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक कौन था ? इसमें कोई सन्देह की आवश्यकता नहीं कि भारत में मुगल साम्राज्य की नींव बाबर ने डाली परन्तु देखना यह है कि बाबर की नींव डाला हुआ मुगल राज्य कितने दिन तक कायम रहा। वास्तव में, भारत पर आक्रमण से पूर्व देश में दो शक्तियां अत्यन्त प्रबल थीं। उनमें से एक तो लोदी वंश था जिसका शासक इब्राहीम लोदी देहली, आगरा तथा जौनपुर पर राज्य कर रहा था और दूसरी शक्ति राजस्थान में राजपूतों की थी जिसका सरदार महाराणा संग्रामसिंह (राणा साँगा) था। बाबर को इन दोनों शक्तियों से अलग अलग संघर्ष करना पड़ा। उसने इब्राहीम लोदी को सन् १५२६ में पानीपत के मैदान में और राणा साँगा को सन् १५२७ में खनवा के प्रसिद्ध मैदान में पराजित किया। अब बाबर का उत्तरी भारत में मुकाबला करने वाली कोई भी शक्ति शेष न रह गई और उसने यहाँ अपने राज्य की नींव डाली।

बाबर ने इस प्रकार मुगल साम्राज्य की स्थापना तो अवश्य कर दी परन्तु वह उसको संगठित करके एक अच्छे शासन प्रबन्ध की नींव न डाल सका। अतः शीघ्र ही मुगल सत्ता भारत से उठ गई और एक बार फिर भारत पर अफगानों का प्रबल साम्राज्य कायम हो गया। इसका प्रधान कारण यही था कि बाबर की भारतीय विजय एकमात्र सैनिक विजय थी और उसमें सफल शासक के गुणों का सर्वथा अभाव था। उसने शासन व्यवस्था के लिए लोदियों की दोषपूर्ण नीति को ही अपनाया और सारा राज्य जागीरों में बंट गया तथा किसी नवीन शासन प्रणाली की स्थापना नहीं की गई। बाबर का सैनिक संगठन भी सर्वथा दोष रहित नहीं था। उसमें विभिन्न जातियों के लोग थे जो केवल बाबर जैसे कुशल सेनापति के ही नेतृत्व में काम कर सकते थे अतएव बाबर की मृत्यु के पश्चात् हुमायूं में इतने अच्छे सेनानी के गुण न होने के कारण इस सैनिक संगठन में शिथिलता आने लगी और सेना की

विभिन्न टुकड़ियों में आपस में ही मतभेद तथा कलह होने लगा। बाबर के सहायता-कारी बड़े-बड़े अमीर भी उसकी मृत्यु के पश्चात् अपनी व्यक्तिगत सत्ता बढ़ाने की कोशिश करने लगे। फलतः केन्द्रीय सरकार दुर्बल होने लगी। इस प्रकार, बाबर अपने भारतीय साम्राज्य के आधार को ठोस और सबल न बना सका और न एक अच्छे शासन-प्रबन्ध की ही नींव डाल सका। रशब्रुक विलियम्स ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि "बाबर ने अपने पुत्र हुमायूं को एक ऐसा साम्राज्य प्रदान किया था जो केवल युद्ध की परिस्थितियों में ही चल सकता था और शान्ति के समय के लिये निर्बल और निराधार था।" इसका परिणाम यह हुआ कि हुमायूं को प्रारम्भ से ही घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा और इस निराधार साम्राज्य को उसने अपनी व्यक्तिगत दुर्बलताओं के कारण शीघ्र खो दिया। इस प्रकार बाबर का स्थापित किया हुआ भारतीय राज्य सहसा विलीन हो गया। ऐसी स्थिति में बाबर को भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना का वास्तविक श्रेय नहीं दिया जा सकता।

बाबर के पुत्र हुमायूं को भी मुगल साम्राज्य की स्थापना का श्रेय नहीं दिया जा सकता। अपने पन्द्रह वर्ष के निर्वाचन के उपरान्त उसने अपना खोया हुआ साम्राज्य तो अवश्य प्राप्त कर लिया परन्तु वह केवल नाम मात्र को ही था क्योंकि शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी। इस बीच में वह न तो साम्राज्य का संगठन ही कर सका और न उसको सुव्यवस्थित ही बना सका।

**(२) मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक अकबर**—जिस समय अकबर गद्दी पर बैठा, उसकी अवस्था केवल १३ वर्ष की थी और उसका दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार केवल नाम-मात्र को ही था। उसका राज्याभिषेक भी एक साधारण बाग में हुआ। हुमायूं की मृत्यु का समाचार पाकर अफगानों के हिन्दू सेनापति हेमु ने एक विशाल सेना की सहायता से दिल्ली और आगरा भी विजय कर लिया। अब अकबर के पास कुछ भी न रह गया। परन्तु अकबर के संरक्षक तथा सुयोग्य सेनापति बैरामखां ने पानीपत के द्वितीय युद्ध में सन् १५५६ में हेमु को हराकर दिल्ली और आगरा पुनः विजय कर लिये। इस प्रकार दिल्ली, आगरा तथा आस-पास के प्रदेशों पर अकबर का पुनः अधिकार हो गया। इसके पश्चात् बालिग हो जाने पर अकबर ने अपनी सेना का संगठन करके धीरे-धीरे समस्त उत्तरी भारत पर अपना अधिकार जमा लिया और उसका साम्राज्य काश्मीर से खान देश और अहमद-नगर तक तथा कन्धार और सिन्ध से लेकर बंगाल तक फैल गया।

अकबर ने केवल उत्तरी भारत के मुसलमानी राज्यों को ही समाप्त नहीं किया बल्कि उसने राजस्थान पर भी अपना अधिकार जमा लिया। उसने राजपूतों को अपनी उदार शासन नीति से प्रसन्न करके उन्हें अपना सहायक तथा मित्र बना लिया और उनकी सहायता से अपने राज्य को दूर-दूर तक विस्तृत कर दिया।

अकबर ने केवल मुगल साम्राज्य का विस्तार ही नहीं किया बल्कि अपनी असाधारण योग्यता तथा धार्मिक सहिष्णुता और उदारता से एक ऐसे सुव्यवस्थित, संगठित तथा सुदृढ़ शासन की नींव डाली जो लगभग ३०० वर्षों तक न हिल सकी। अपनी दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता के कारण उसने बहुसंख्यक हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त कर लिया। उसने उन्हें ऊँचे-ऊँचे पद दिये और उनको हर क्षेत्र में मुसलमानों के समान अधिकार दिये। इस प्रकार अकबर ने शताब्दियों से चली आ रही हिन्दुओं की समस्त असुविधाओं को दूर कर दिया और उन्हें धार्मिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की। शेरशाह की भांति उसने भी अपने शासन का उद्देश्य प्रजा का हित बनाया और उसकी पूर्ति में तन-मन-धन से जुट गया। फल यह हुआ कि उसके शासन में भारत की हर क्षेत्र में उन्नति हुई। देश धन धान्य से पूर्ण हो गया और प्रजा सुखी तथा समृद्धिशाली हो गई।

इस प्रकार सम्राट अकबर ने न केवल मुगल साम्राज्य का विस्तार किया वरन् अपनी दूरदर्शिता से एक सफल तथा सुदृढ़ शासन की स्थापना भी की जिसमें साहित्य, कला कौशल, व्यापार तथा खेती सभी की उन्नति हुई और प्रजा बड़ी खुशहाल रही। इस प्रकार एक बिना गद्दी तथा राजधानी के सम्राट ने एक ऐसे शासन की नींव डाली जो भारतवर्ष में लगभग ढाई सौ वर्षों तक कायम रही। इन सब कारणों से अगर मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक अकबर को ही माना जाय तो अधिक उपयुक्त होगा।

---

**प्रश्न २—अकबर की राजपूत नीति क्या थी ? इस नीति के क्या परिणाम निकले ?**

**Q. 2. Describe the Rajput Policy of Akbar. What were its results ?**

उत्तर—(१) **अकबर की राजपूतों के साथ सहानुभूति के कारण**—(क) अकबर एक बड़ा ही बुद्धिमान, दूरदर्शी तथा कूटनीतिज्ञ व्यक्ति था। वह भारतवर्ष में एक विस्तृत तथा सुदृढ़ साम्राज्य की नींव डालना चाहता था। उसके इस मार्ग में दो शक्तियाँ बाधक थीं—एक तो मुसलमान जिनमें अधिकांश अफगान थे और जिन्हें पराजित करके मुगलों ने भारत में साम्राज्य की स्थापना की थी, और दूसरे राजस्थान के राजपूत जो उस समय भारतवर्ष की एक बड़ी वीर तथा लड़ाकू जाति थी। उस समय हिन्दुओं का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक नेतृत्व उन्हीं के हाथ में था। अतः अकबर ने शुरू से ही उस चीज को महसूस किया कि यदि राजपूतों के साथ युद्ध की अपेक्षा प्रेम और सद्भावना के आधार पर मित्रता के सम्बन्ध स्थापित किये जायें तो यह अधिक उपयोगी होगा और उसका साम्राज्य भी स्थायी तथा विस्तृत बन जायगा। इसके अतिरिक्त, अकबर राजपूतों के शौर्य, पराक्रम, चरित्र तथा देश-भक्ति से भली-भांति परिचित था। वह यह भी जानता

था कि राजपूतों के चरित्र में विश्वासघात जैसी कोई वस्तु नहीं है। अतः उसने प्रेम, सहानुभूति, सद्भावना तथा उदारतापूर्ण व्यवहार से राजपूतों के हृदय पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया।

(ख) **राजस्थान की भौगोलिक स्थिति** ने भी बादशाह को इस प्रकार की नीति अपनाने के लिये प्रेरित किया। इस प्रदेश के दिल्ली और आगरा से अत्यन्त निकट होने के कारण दृढ़ और स्थायी साम्राज्य के निर्माण के लिये उनका समूल विनाश या मित्रता आवश्यक थी। साथ ही राजपूतों को अपराजित छोड़कर दक्षिण की विजय के लिये जाना भी खतरनाक था। अतएव अकबर ने राजपूतों पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा उनसे मित्रता करना ही उचित समझा क्योंकि इससे उसकी कठिनाइयाँ भी हल हो जाती थीं और साम्राज्य निर्माण में भी उनसे पूरी सहायता मिलने की आशा थी। अकबर का यह कार्य राजनीति कुशलता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

(२) **अकबर की राजपूत नीति**—(क) **वैवाहिक सम्बन्ध**—अकबर ने राजपूतों की सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त करने के लिये उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने आरम्भ किये। सबसे पहले उसने **आमेर के कछवाहा राजा भारमल की पुत्री से अपना विवाह किया** और इस प्रकार उसे राजपूतों के एक प्रभावशाली वर्ग की सहायता प्राप्त हो गई। स्वयं अकबर के समय का सबसे बड़ा सेनापति तथा राजनीतिज्ञ राजा मानसिंह इसी आमेर के राजवंश में उत्पन्न हुआ था। **जैसलमेर तथा जोधपुर के राजाओं ने भी आमेर का अनुसरण करके अकबर के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये**। आगे चलकर **अकबर के पुत्र जहाँगीर** का विवाह भी **भारमल की पोती से हो गया**। इन विवाहों के फलस्वरूप राजपूत मुगल साम्राज्य के सच्चे हितैषी बन गए।

(ख) **पद प्रदान**—अकबर ने राजपूतों को उच्च पद देना भी प्रारम्भ किया। वह राजपूतों की वीरता, शौर्य तथा प्रतिभा से बहुत अधिक प्रवाहित हुआ था। इसलिये वह उनकी सेवा से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता था। उसने **राजा मानसिंह** का मनसब शहजादों के बराबर रक्खा। राजपूतों के अतिरिक्त सभी प्रभावशाली और योग्य हिन्दुओं को अपनी योग्यता के अनुकूल राज्य में विश्वसनीय पद प्राप्त होने लगे। भूमि विभाग का सारा प्रबन्ध **टोडरमल** को सौंपा गया था। बीरबल अकबर की सभा के नवरत्नों में से एक और सम्राट के मनोविनोद का प्रधान साधन था। कई युद्धों में सम्राट ने **राजा टोडरमल** तथा **राजा बीरबल** को प्रधान सेनापति बनाकर भेजा था। इस प्रकार इस सद्व्यवहार से हिन्दुओं की राजभक्ति दृढ़ हो गई और साम्राज्य के प्रति उनकी श्रद्धा भी बढ़ गई।

(ग) **धार्मिक स्वतन्त्रता**—मध्यकालीन सुल्तानों की भांति अकबर में धार्मिक कट्टरता या संकीर्णता न थी। वह अत्यन्त उदार धार्मिक विचारों का सम्राट था। अतः उसने अपनी हिन्दू प्रजा को धार्मिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की। उसने

जजिया तथा अन्य धार्मिक कर जो हिन्दुओं को देने पड़ते थे, बन्द कर दिये। हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिये अकबर ने उनके आचार व्यवहार का अनुसरण करना तथा उनके त्यौहारों को मानना प्रारम्भ कर दिया। कभी कभी वह हिन्दुओं की वेशभूषा धारण करता तथा माथे पर चन्दन भी लगाता था। राजमहल में राजपूत रानियों को हिन्दू-धर्म के अनुकूल आचरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इन सब कार्यों ने अकबर के प्रति राजपूतों में श्रद्धा और प्रेम के भाव उत्पन्न कर दिये।

(घ) सामाजिक सुधार—अकबर ने अनेक सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों द्वारा भी राजपूतों को अपनी ओर आकृष्ट किया। उसने तीर्थस्थानों पर लगने वाले कर हटाये, जजिया बन्द किया, सती की प्रथा को रोकने की चेष्टा की, बाल विवाह को बन्द करने के लिये आदेश निकाला और अधिक दहेज प्रथा का विरोध किया। उसने संस्कृत भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया और हिन्दू विद्वानों को राज-दरबार में आश्रय प्रदान किया। अकबर के इन सुधारों ने समस्त हिन्दू प्रजा के हृदयों को जीत लिया और राजपूतों की श्रद्धा तो बहुत ही बढ़ गई। वे अकबर की उदारता तथा सद्भावना के सच्चे पोषक बन गये।

(३) राजपूत नीति का परिणाम—अकबर की राजपूत नीति पूर्ण रूप से सफल रही। उसकी उदारता तथा मेल की नीति के दो महत्वपूर्ण परिणाम निकले। पहला परिणाम यह हुआ कि मुगल साम्राज्य को राजपूतों की सेवा तथा सहायता प्राप्त हो गई जिससे उसकी शक्ति में बड़ी वृद्धि हो गई मुगल राज्य और स्थायी, तथा दृढ़ हो गया। जब तक अकबर द्वारा निर्धारित नीति में परिवर्तन किया गया तब तक मुगल साम्राज्य सुदृढ़ बना रहा। परन्तु जब औरंगजेब के काल में इस नीति का बहिष्कार कर दिया गया तब साम्राज्य का पतन होना प्रारम्भ हो गया। अकबर की राजपूत नीति का दूसरा परिणाम यह हुआ कि भारतीय राजनीति में एक नये युग का आरम्भ हुआ जिसे हम उदारता तथा धार्मिक सहिष्णुता का युग कह सकते हैं। यह भारत को एक राष्ट्र बनाने का प्रथम प्रयास था।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि अकबर और राजपूतों की मित्रता का परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए अत्यन्त हितकर सिद्ध हुआ। इससे उसे न केवल राजपूतों की, वरन् समस्त हिन्दुओं की सहायता और सद्भावना प्राप्त हो गई। अब उसने राजपूतों की सहायता से स्वतन्त्र मुस्लिम राज्यों को विध्वंस किया। यहाँ तक कि राजपूतों की ही तलवार से राजपूतों की ही स्वतन्त्रता का नाश किया गया। उन्हीं की सहायता से पूर्व और दक्षिण की विजय सरल हो गई। अब उसे सैनिकों की भर्ती के लिए पश्चिमोत्तर प्रान्तों का मुंह न देखना पड़ा। इन प्रान्तों को जीतने तथा उन्हें आधीन रखने में भी उसे राजपूतों की पूरी सहायता प्राप्त हुई। इन्हीं की सहायता से अकबर दरबार के विदेशी अमीरों को भी अपने आधीन रख सका और उन्हें फिर कभी विद्रोह करने का अवसर न मिला। राजपूतों और हिन्दुओं की

उपस्थिति से उसके दरबार का गौरव और भी बढ़ गया और राजा मानसिंह जैसे तपस्वी, वीर और कुशल सेनापति, राजा टोडरमल जैसे प्रतिभाशाली तथा बीरबल जैसे सफल विदूषक उस की सभा के अमूल्य रत्न बन गये। राजपूतों में वैवाहिक सम्बन्ध एवं सम्पर्क ने अकबर की स्वाभाविक उदारता और सहिष्णुता को और भी उदार बना दिया जिसके फलस्वरूप वह हिन्दुओं के अति निकट आ गया और उनके सम्मान तथा प्रेम का पात्र बन गया।

**सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र** में भी अकबर की इस नीति का व्यापक प्रभाव पड़ा। हिन्दुओं तथा मुसलमानों में प्रेम एवं सद्भावना उत्पन्न करके अकबर ने भारतीय समाज की सदियों पुरानी कटुता और द्वेष को दूर कर दिया। हिन्दुओं की कुछ प्रचलित बुराइयों को दूर करके उसने हिन्दू समाज को सुधारने का प्रयास किया। अपनी धार्मिक सहिष्णुता के परिणामस्वरूप ही उसने "दीनइलाही" नामक नये धर्म की स्थापना की और इसके द्वारा विभिन्न धर्मों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। यद्यपि दीनइलाही सफल न हुआ, परन्तु उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप विभिन्न धर्मों की कटुता बहुत कुछ समाप्त हो गई और हिन्दुओं तथा मुसलमानों में मिलजुल कर रहने की प्रवृत्ति बढ़ी।

परन्तु कुछ विद्वान अकबर की राजपूत नीति को उसकी कूटनीतिज्ञता का प्रतीक बताते हैं। इस नीति से हिन्दुओं की एक वीर जाति पर आदि काल से ही राजनैतिक स्वतन्त्रता की रक्षा का जो भार चला आ रहा था धराशायी हो गई। राजपूताने का गौरव अस्त हो गया। यवनों को अपनी बेटियाँ देकर और उनकी सेवा करके राजपूतों ने अपनी जाति तथा अपने देश पर वह कलंक लगाया है जिसको असंख्य सागरों का जल भी नहीं धो सकता। इस प्रकार जहां राजपूतों ने अकबर के साथ मित्रता तथा उसकी सेवा करके मुगल साम्राज्य को शक्तिशाली बनाया, दूसरी ओर उन्होंने अपने प्राचीन गौरव को हाथ से खो दिया और एक प्रकार से समस्त हिन्दू जाति के प्रति तथा अपने देश के प्रति विश्वासघात किया। एक सच्चा तथा देशभक्त हिन्दू इन राजपूतों को केवल जाति-द्रोही, देश-द्रोही तथा आत्म-द्रोही समझेगा और महाराणा प्रताप को अपना उपास्य देव समझकर उसके चरणों में सिर टेकेगा।

---

**प्रश्न ३– अकबर की धार्मिक नीति का वर्णन कीजिये। उसने दीन-इलाही धर्म किस उद्देश्य से चलाया? इस धर्म की कुछ विशेषताओं का वर्णन कीजिए।**

**Q. 3. Describe the religious policy of Akbar. What was his aim of founding Din-i-Ilahi? Describe the foundamental principles of this religion.**

**उत्तर**—योरोप की भांति भारत में भी सोलहवीं शताब्दी धार्मिक पुनरुत्थान का युग था। इस पुनरुत्थान के पूर्व दो शताब्दियों से हिन्दू सन्त और महात्माओं

ने धर्म-सुधार का कार्य प्रारम्भ कर दिया था जो भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध है। इस आन्दोलन ने जाति-पांति और ऊंच नीच के भेद-भाव को मिटा कर मनुष्य के गौरव और महत्व पर जोर दिया और सब के लिए समान रूप से मोक्ष का मार्ग प्रदर्शित किया। सूफी सन्तों की शिक्षा भी बहुत कुछ अंशों में हिन्दू सुधारकों की शिक्षा से मिलती-जुलती थी। फलतः इन आन्दोलनों द्वारा दोनों धर्मों के लोगों में प्रेम और सद्भावना उत्पन्न करने की चेष्टा हो रही थी। कुछ अंशों में इन सुधारक सन्तों को सफलता भी प्राप्त हुई और हिन्दू और मुसलमान अपना पुराना भेद-भाव भूलकर एक दूसरे धर्म की बातें जानने के उत्सुक हुए। परन्तु इन प्रयत्नों के बावजूद दोनों धर्मों के मनुष्य अब भी एक दूसरे से दूर थे और धर्म तथा राज्य दोनों ही में उलमा का प्राधान्य कायम था। अतः आवश्यकता इस बात की थी कि धर्म और राज्य दोनों ही क्षेत्र से उलमा का प्राधान्य कम करके राजनैतिक स्तर पर युग की इस मांग की पूर्ति की जाय। इस दिशा में सबसे पहला प्रयत्न शेरशाह सूरी का था जो हिन्दू तथा मुसलमानों में कोई भेद-भाव न रखकर अपना शासन प्रजा के हित के लिए चलाना चाहता था और अपने इस उद्देश्य में वह काफी हद तक सफल भी हुआ। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य सम्राट अकबर ने किया। वह स्वभाव से जिज्ञासु था और सत्य को समझने की कोशिश करता था। मनुष्य के पारस्परिक भेद-भाव और उनकी कटुता को देखकर उसका हृदय व्याकुल हो उठता था। उलमा की कट्टरता तथा धर्मान्धता उसके हृदय में धीरे-धीरे घृणा उत्पन्न करने लगी और वह एक कट्टर मुसलमान से धीरे-धीरे ऐसा व्यक्ति होने लगा कि अन्त में उसकी श्रद्धा इस्लाम धर्म में बिल्कुल न रह गई। इस परिवर्तन के निम्नलिखित कारण थे—

२ (क) वंश का प्रभाव—धार्मिक क्षत्र में अकबर पर अपने पूर्वजों का गहरा प्रभाव पड़ा। अकबर के पितामह बाबर और हुमायूं में धार्मिक कट्टरता न थी। वे स्वभाव से ही उदार थे। अकबर की माता हमीदाबानू बेगम एक शिया विद्वान की पुत्री थी जिसकी सहिष्णुता तथा उदार प्रवृत्ति का अकबर पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसके शिक्षक अब्दुल लतीफ तथा संरक्षक बैरामखाँ दोनों ही उदार प्रकृत्ति के मनुष्य थे। इन सब बातों ने अकबर को उदार और सहिष्णु बनने में बड़ी सहायता पहुँचाई।

(ख) सूफियों का प्रभाव—अकबर पर सूफियों के विचारों का भी बहुत प्रभाव पड़ा। इसका बचपन सूफियों के बीच बीता था और बड़ा होने पर वह शेखमुबारक और उसके दो विद्वान पुत्र फैजी और अब्दुल फजल के प्रभाव में आया। ये तीनों [illegible] मत के मानने वाले थे और बड़े ही स्वतन्त्र विचारों के थे। ये ईश्वर की एकता में विश्वास रखते थे और इनका विचार था कि प्रत्येक धर्म तथा भाषा में उसी ईश्वर के विभिन्न रूप का वर्णन है। ऐसे विचार वाले फैजी तथा अब्दुल फजल मित्रों का अकबर के ऊपर अधिक प्रभाव पड़ा।

राजपूतों के सम्पर्क का प्रभाव:—धार्मिक क्षेत्र में अकबर ने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था। उनमें से अनेक सभासद और मित्र थे। इन राजपूतों की संगति तथा सेवाओं का उसके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। राजमहलों के भीतर भी राजपूत रानियों ने भी अपना धर्म नहीं छोड़ा था। इनके सम्पर्क का भी अकबर पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इनके ही आग्रह पर अकबर ने हिन्दुओं के ऊपर से अनेक धार्मिक प्रतिबन्धों को हटा लिया था।

(घ) **सोलहवीं शताब्दी के जागरण का प्रभाव:**—जैसा कि प्रो० सिन्हा ने लिखा है 'सोलहवीं शताब्दी संसार के इतिहास में धर्मोत्थान की शताब्दी थी। भारतवर्ष में भी एक जागरण हुआ। यह जागरण भक्ति आन्दोलन के रूप में जनता के सामने आया जिसका लक्ष्य हर एक प्रकार का समन्वय उत्पन्न करना था। इस आन्दोलन का प्रभाव अकबर के धार्मिक विचारों पर भी पड़ा।

(ङ) **राजनैतिक प्रभाव:**—कुछ विद्वानों का कहना है कि अकबर की राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं ने भी उसकी धार्मिक नीति पर बड़ा प्रभाव डाला। वह एक सुसंगठित तथा स्थायी साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। इसके लिए सभी धर्मों तथा सम्प्रदाय के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त होना अति आवश्यक था क्योंकि केवल शक्ति पर आधारित सामाज्य स्थायी नहीं हो सकता था।

(च) **मुल्ला और मौलवियों का प्रभाव**—अकबर अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में जिन मुल्ला यथा मौलवियों की संगति में था वे बड़े ही धर्मान्ध और कट्टर थे और प्राय: छोटी-छोटी बातों पर आपस में लड़ जाया करते या दूसरे धर्म के मनुष्य को गालियाँ दिया करते थे। अतएव इन लोगों के इस व्यवहार से उसे घृणा होने लगी और वह इस्लाम धर्म से दूर हटने लगा।

(छ) **जिज्ञासु प्रवृत्ति**—अकबर स्वयं बड़ा धार्मिक प्रवृत्ति का और चिन्तनशील व्यक्ति था। वह घंटों एक स्थान पर बैठकर मनन और चिन्तन किया करता था। उसका मस्तिष्क बड़ा ही उर्वर तथा जिज्ञासु था। वह सत्य की खोज करना चाहता था और सभी धर्मों के तथ्यों के जानने की उसकी बहुत इच्छा थी।

(३) **अकबर के धार्मिक विचारों में परिवर्तन**—अकबर स्वभाव से ही अत्यन्त उदार विचारों का व्यक्ति था और ऊपर लिखी हुई बाह्य परिस्थितियों ने उसकी उदारता को और भी व्यापक बना दिया। वह सभी धर्मों में साम्य स्थापित करना चाहता था और उन्हें स्वतन्त्र विकास का अवसर प्रदान करना चाहता था। राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध के कारण उसमें हिन्दू के प्रति और सहानुभूति हो गई थी और यही कारण था कि उसने जजिया तथा अन्य धार्मिक कर जो हिन्दुओं पर लगाये जाते थे हटा दिये। परन्तु इस काल में उसके मस्तिष्क में घोर उथल-पुथल हो रही थी। उलमाओं की कट्टरता ने उसके अन्दर और उत्तेजना उत्पन्न कर दी। अतः १५७५ में जब वह शेख मुबारक उसके दोनों पुत्र फैजी और अब्दुल फजल के सम्पर्क में आया तो उसने फतहपुर सीकरी में एक 'इबादतखाना' की स्थापना की

जहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्म की बारीकियों से उसे परिचित कराते थे। इस प्रकार उसे विभिन्न धर्मों के तथ्यों का ज्ञान हो गया और उसके धार्मिक विचारों में क्रान्ति उत्पन्न हो गई और अन्त में उसने धार्मिक एकता स्थापित करने के लिये एक नये धर्म 'दीन इलाही' की स्थापना की। इसमें सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों को रखकर और विरोधी तत्वों का परित्याग कर उसे सर्वमान्य बनाने का प्रयास किया।

(४) फतहपुर सीकरी का धार्मिक वाद-विवाद— इस प्रकार सत्य की खोज के लिये सम्राट ने १५७५ ई० से फतहपुर सीकरी में 'इबादत खाना' नाम की एक नई इमारत बनाये जाने की आज्ञा दी जिसमें धार्मिक वाद-विवादों का प्रबन्ध किया गया। इसमें हिन्दू, जैन, पारसी, ईसाई, तथा मुसलमान आदि विभिन्न धर्मों के विद्वान तथा पंडित देश के सभी भागों से इकट्ठे होते थे और अपने वाद-विवादों तथा धार्मिक चर्चा से सम्राट को सत्य की खोज करने में सहायता पहुँचाते थे। वाद-विवादों में भाग लेने वाले कट्टर इस्लाम धर्म के प्रतिनिधियों के पक्ष में नेता शेख मखदूमुल्क और शेख अब्दुनब्बी थे और उदार विचारों के प्रतिनिधि शेख मुबारक, अब्बुलफजल, फैजी तथा राजा बीरबल थे। भिन्न-भिन्न दलों के प्रतिनिधि पारस्परिक वाद-विवाद में झगड़ा करने लगते थे, यहाँ तक कि वे एक दूसरे को अपशब्द भी कहने लगते थे।

हिन्दू धर्म के समान ही जैन धर्म, ईसाई धर्म और सिक्ख मत में भी बादशाह को रुचि थी और वह उनके उपदेशों का स्वागत करता था। जैन आचार्यों में 'हरि विजय सूरी', 'विजय सेन सूरी', 'भानुचन्द्र उपाध्याय' और 'जिनचन्द्र' थे। इनकी शिक्षा से प्रभावित होकर बादशाह ने कैदियों और पिंजरे के पक्षियों को मुक्त कर दिया और खास खास दिन पशुओं का वध निषेध कर दिया।

पारसी भी शाही दरबार में उपस्थित रहते थे और वाद-विवादों में भाग लेते थे। उनके नियमानुसार अब्बुलफजल को दरबार में बराबर पवित्र अग्नि जलाये रखने का हुक्म हुआ। पारसी शास्त्री 'दस्तूर महरजी' ने बादशाह को पारसी धर्म की शिक्षा दी।

सम्राट ने ईसाई धर्म की ओर भी अभिरुचि दिखाई और गोआ से पादरी वाद-विवाद में भाग लेने के लिये बुलाये गये। सम्राट इस धर्म से भी प्रभावित हुआ परन्तु इन पादरियों ने नासमझी से इस्लाम तथा मुहम्मद साहब को गालियाँ देनी शुरू कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि एक बार फादर रूडोल्फ की जान तक खतरे में पड़ गई और स्वयं सम्राट ने उनकी रक्षा की।

सम्राट ने सिक्खों के प्रति भी सम्मान दिखाया। एक बार इसने सिक्ख गुरु की इच्छानुसार पंजाब की प्रजा की भलाई के लिये एक साल का लगान माफ कर दिया।

इस प्रकार अकबर ने अपने समय के सभी प्रचलित धर्मों से सम्पर्क स्थापित करके अपनी धार्मिक जिज्ञासा तृप्त करने की चेष्टा की। उसने प्रत्येक धर्म के प्रति इतनी अधिक श्रद्धा दिखलाई कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी और आचार्य यही समझने लगे कि सम्राट ने इनका धर्म स्वीकार कर लिया है। परन्तु वास्तव में उसने किसी धर्म को स्वीकार नहीं किया। असलियत यह है कि इस्लाम से असन्तुष्ट होकर उसने दूसरे अन्य धर्मों का अध्ययन शुरू किया था और विभिन्न धर्मों में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की थी।

(५) **दीनइलाही**—अपने इन उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करने के विचार से उसने दीनइलाही धर्म चलाया।

यह नया धर्म सन् १५८१ ई० में स्थापित हुआ। यह एक उदार धर्म था जिसमें सभी धर्मों की अच्छी बातें शामिल थीं। इसमें किसी सिद्धान्त पर बिना सोचे समझे आँख मूंद कर विश्वास करने को नहीं कहा जाता था। इस धर्म में कोई देवता या नबी न थे और इसका प्रधान व्याख्याता बादशाह था। यह सभी धर्मों को एक ही लक्ष्य पर पहुँचने के विभिन्न मार्ग मानता था। इसमें माँस का निषेध था और इस धर्म के अनुयायियों को सम्राट को सिजदा या साष्टांग प्रणाम करना पड़ता था। सूर्य और अग्नि की उपासना सबके लिये अनिवार्य थी। इस धर्म के अनुयायी एक दूसरे को **'अल्लाह हो अकबर'** या 'जल्ल-जल्लालहू' कह कर अभिवादन करते थे। उन्हें अपने वर्ष गाँठ के दिन दावत देनी पड़ती थी और प्रत्येक सदस्य को अपनी सम्पत्ति, जीवन, सम्मान तथा धर्म को सम्राट के लिये परित्याग करने के लिये तैयार रहना पड़ता था। इस प्रकार यह धर्म वाह्य आडम्बरों से मुक्त था।

(६) **अकबर धर्म प्रचारक नहीं था**—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि इस धर्म को चलाने से उसका उद्देश्य एक नबी या धर्माचार्य बनने का था। वह अपने दरबारियों तथा अफसरों को भी इस धर्म का अनुयायी बनने के लिये विवश नहीं करता था। इसके विपरीत वह स्वतन्त्र विचारों के महत्व पर बहुत जोर देता था और चाहता था कि सब लोग गूढ़ विश्वास और बिना सोचे समझे आँख मूंद कर धार्मिक सिद्धांतों के विश्वास के पाश से मुक्त हों। **आई-ने-अकबरी में दीन इलाही के अट्ठारह अनुयायियों के नाम दिये हुए हैं** जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध अबुलफजल, **शेख मुबारक और अजीज कोका हैं।** इसमें सम्मिलित होने वाला एक मात्र हिन्दू राजा बीरबल था जो अपने उदार धार्मिक विचारों के कारण बादशाह का बड़ा प्रिय हो गया था।

(७) **दीनइलाही की आलोचना**—बदाऊनी का कहना है कि दीनइलाही की स्थापना के बाद सम्राट ने इस्लाम के खिलाफ अनेक आदेश निकाले जैसे—(१) बादशाह को सिजदा करना (२) बारह वर्ष की अवस्था के पूर्व खतना की मनाही और उसके बाद लड़के की इच्छा पर छोड़ना (३) गो-माँस निषेध करना (४) सोने चांदी के काम के कपड़े, जिनका इस्तेमाल शरियत में मना है, पहनना (५) नमाज

तथा अजान का बहिष्कार (६) लहसुन-प्याज खाने की मनाही (७) रमजान के व्रत और मक्का को जाने की मनाही (८) कुरान और हदीस का बहिष्कार (९) मस्जिदों तथा इबादत खानों को गोदाम बनाना और (१०) मुल्लाओं तथा शेखों को निर्वाचित करना।

बदाऊनी के इन आपेक्षों में से अधिकांश अविश्वसनीय हैं क्योंकि वह एक संकीर्ण हृदय का धर्मान्ध मुसलमान था जिसकी पुस्तक से हिन्दुओं के प्रति उसका दुर्भाव पग-पग पर झलकता है। अकबर संकीर्णता से बहुत ऊपर उठा हुआ था और वह किसी धर्म का दुश्मन नहीं था। उसने कभी भी कुरान का बहिष्कार नहीं किया। इसलिए बदाऊनी का विवरण निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता। डाक्टर विसेन्ट स्मिथ इस दीन इलाही धर्म को अकबर की इस अहमन्यता तथा मूर्खता का फल बतलाते हैं। किन्तु हम इस विचार से भ सहमत नहीं हो सकते। ऐसा कहना अकबर की उच्च अभिलाषा तथा महान उद्देश्य के प्रति आँखें मूंद लेना होगा। डा० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, अकबर की धार्मिक उदारता ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक किया और एक ऐसा आदर्श सामने रक्खा जिसका यदि बाद में अनुसरण किया गया होता तो सहानुभूति तथा भ्रातृत्व में बंधे हुए एक राष्ट्रीय भारत का जन्म हुआ होता।"

---

प्रश्न ४—अकबर के समय की मालगुजारी प्रथा का विवरण लिखिए। उसका कृषकों की आर्थिक दशा पर क्या प्रभाव पड़ा?

Q. 4. Sketch the revenue organisation of Akbar and explain its effect on the economic condition of peasantry.

(१) अकबर के भूमि सुधारक प्रारम्भिक प्रयत्न—अकबर न केवल एक महान् विजेता था वरन् वह एक बहुत बड़ा शासक तथा सुधारक भी था। वास्तव में, उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अतएव शासन का कोई क्षेत्र ऐसा न था जो उसकी प्रतिभा का ऋणी न हो और जिसमें उसने सुधार न किया हो। चूंकि माल विभाग सब से अधिक महत्व रखता है अतएव सब से अधिक परिवर्तन सम्राट ने इस विभाग में किया। सौभाग्य से ख्वाजा अब्दुल मजीद, मुजफ्फर तुरबती तथा राजा टोडरमल जैसे योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों की सेवायें सम्राट को प्राप्त थीं जिन्होंने भूमि-सुधार में सम्राट को बड़ा योग दिया।

शेरशाह पहला मुसलमान शासक था जिसने जमीन की पैमाइश कराई थी और लगान के बन्दोबस्त के मुख्य नियमों को निश्चित किया था और जिनका अकबर के समय में अनुसरण हुआ था। परन्तु शेरशाह की अकाल मृत्यु से इस विषय में उसका कार्य अधूरा रह गया और उसके बाद शासन के अस्त-व्यस्त हो जाने से

उसने जो कुछ किया था उस पर पानी फिर गया। अतः अकबर के राज्य में आरम्भ से ही मालगुजारी के बन्दोबस्त में सुधार का प्रयत्न किया जाने लगा।

सबसे पहले ख्वाजा अब्दुल मजीद ने भिन्न-भिन्न सरकारों में अनुमान लगाकर लगान के निश्चित करने का प्रयास किया, परन्तु इस कार्य में उसे विशेष सफलता न मिली। इसके बाद जब मुजफ्फर तुरबती दीवान हुए तब दूसरी बार भूमिकर के निश्चित करने का प्रयास किया गया। लगान सम्बन्धी जांच-पड़ताल के लिए तुरबती ने दस कानूनगो नियुक्त किये और इन लोगों की रिपोर्ट के आधार पर लगान निश्चित करने का प्रयास किया गया। परन्तु इसके परिणाम अच्छे न हुए और उजबेगों के विद्रोह के कारण यह आयोजना भंग हो गई। इस दिशा में ठोस कदम राजा टोडरमल ने उठाया।

(२) **टोडरमल के सुधार**—१५८२ में टोडरमल दीवाने अशरफ बनाये गये। अब उन्होंने सम्पूर्ण माल विभाग का संगठन आरम्भ किया। उनके सामने भूमि सम्बन्धी **पांच समस्यायें** थीं।

(क) कृषि भूमि की ठीक-ठीक पैमाइश कराना (ख) कृषि भूमि का वर्गीकरण (ग) प्रत्येक बीघे की औसत उपज का ज्ञान प्राप्त करना (घ) प्रत्येक बीघे की उपज में राज-भाग को निश्चित करना तथा (ङ) राज-भाग का नकद मूल्य आंकना जिससे प्रजा नकद रुपये के रूप में लगान दे सके।

(क) **भूमि की नाप**—राजा टोडरमल ने बांसों में लोहे के छल्ले डलवा कर जरीब तैयार करवाई जिनके बढ़ने-घटने की सम्भावना नहीं रहती थी। इस जरीब से सारी भूमि की नाप कराई गई। इससे यह पता लग गया कि कितनी भूमि कृषि में है। इस नाप को पटवारी के कागजों में लिख दिया गया और उसकी एक प्रति-लिपि माल विभाग में रखवा दी गई।

(ख) **भूमि का वर्गीकरण**—प्रत्येक बीघे की औसत उपज का निश्चय करने के लिये टोडरमल ने सारी भूमि को निम्नलिखित चार भागों में विभक्त कर दिया—

(१) **पोलज**—इसमें हर साल दो फसलें बोई जाती थीं और जमीन कभी परती नहीं छोड़ी जाती थी। यह भूमि बड़ी उपजाऊ होती थी और कभी इसकी उत्पादन शक्ति कम नहीं होती थी।

(२) **परौती**—यह वह भूमि होती थी जिसमें लगातार खेती नहीं हो सकती थी। अतएव कुछ दिन खेती करने के उपरान्त इस भूमि को एक वर्ष के लिए परती छोड़ दी जाती थी जिससे यह अपनी उत्पादन शक्ति फिर पूरी कर सके।

(३) **छच्चर**—इसमें परौती से भी कम उत्पादन शक्ति होती थी। अतएव यह तीन चार वर्ष तक परती छोड़ दी जाती थी जिससे इसकी उत्पादन-शक्ति बढ़ जाय।

(४) **बंजर**—यह सब से निम्न वर्ग की भूमि होती थी। इसकी उत्पादन

शक्ति बहुत नष्ट हो जाती थी। अतएव यह पाँच वर्ष या इससे भी अधिक समय के लिए परती छोड़ दी जाती थी। बंजर भूमि अनुपजाऊ भूमि होती थी।

पोलज तथा परौती भूमि को फिर तीन भागों में विभक्त कर दिया गया था। यह विभाजन जमीन की उपजाऊ शक्ति के आधार पर किया गया था। इस प्रकार प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की पोलज तथा परौती जमीन होती थीं।

(ग) **औसत उपज का ज्ञान**—प्रथम, द्वितीय श्रेणी की पोलज तथा परौती भूमि की औसत निकाली गई। छच्चर तथा बंजर भूमि की भी औसत निकाली गई। इस प्रकार प्रत्येक श्रेणी की भूमि की औसत निश्चित कर दी गई।

(घ) **राज-भाग का निश्चय**—औसत उपज निश्चय करने के बाद राज-भाग निश्चय किया गया। शेरशाह के समय में उपज का १/३ भाग राज्य को मिलता था। परन्तु अकबर के समय में १/२ भाग निश्चित किया गया।

(ङ) **राज-भाग का नकद मूल्य**—राज-भाग का नकद मूल्य निश्चित करने के लिये पिछले दस वर्षों के भावों का औसत निकाला गया। इस प्रकार जो औसत भाव आया उसी के हिसाब से राज्य-भाग का मूल्य निश्चित कर दिया गया और पटवारी के कागजों में दर्ज करा दिया गया। प्रजा नकद रुपया अथवा अनाज के रूप में लगान दे सकती थी। परन्तु सरकार नकद रुपया देने पर जोर देती थी। अकाल के समय लगान में कमी भी कर दी जाती थी। कभी-कभी मालगुजारी बिल्कुल माफ भी कर दी जाती थी और प्रजा की सहायता के लिये 'तकावी' भी बाँटी जाती थी। यह प्रबन्ध दस वर्ष के लिये किया गया था। परन्तु डा० ईश्वरी प्रसाद ने इस मत का खंडन किया है और लिखा है कि अकबर के समय में दस वर्षीय प्रबन्ध नहीं था।

(३) **माल विभाग के अफसर**—अकबर से पहिले मालगुजारी इकट्ठा करने के लिए ठेका देने की प्रथा थी। अकबर ने इस प्रथा को बन्द करवा दिया और मालगुजारी वसूल करने के लिये सरकारी कर्मचारियों को नियुक्त किया। मालगुजारी वसूल करने के लिए 'अमीन' नियुक्त किए गए। अमीनों की सहायता के लिये बितिक्ची, पोद्दार, कानूनगो, पटवारी, मुकद्दम आदि कर्मचारी नियुक्त किये गये। कर्मचारियों को यह आदेश था कि सरलता के साथ प्रजा से लगान वसूल करें और प्रजा की सुविधा का ध्यान रक्खें। किसान स्वयं अपना लगान सरकारी कोष में जमा करा सकता था। कोषाध्यक्ष एक पाई भी अधिक नहीं ले सकता था। पटवारी को एक रसीद देनी पड़ती थी जिसमें इस लगान की रकम तथा खेत के क्षेत्रफल का विवरण होता था।

(४) **सुधारों का परिणाम**—सम्राट के इन सुधारों से सरकार तथा किसान दोनों को लाभ हुआ। अब राज्य की आय निश्चित हो गई और लगान निश्चित हो जाने के कारण बेइमानी के लिए कोई स्थान न रहा। अब न सरकारी कर्मचारी किसान से अधिक वसूल कर सकते थे और न किसान ही कम देने का प्रयत्न कर

सकते थे। प्रजा बहुत से करों से मुक्त हो गई और भूमि पर इसका अधिकार सुरक्षित हो गया। कृषि में दिन प्रति दिन उन्नति होती गई। इससे किसान खुशहाल हो गये और खाद्य-पदार्थ सस्ते हो गए। इससे सर्व साधारण को भी लाभ हुआ। राजकोष भी रुपयों से भर गया। डा० स्मिथ ने भी अकबर की लगान की प्रशंसा की है। सारांश यह है कि इन सुधारों से किसान, साधारण जनता तथा राज्य सभी को फायदा हुआ।

---

**प्रश्न ५—अकबर की शासन प्रणाली का संक्षिप्त में वर्णन कीजिये।**

**Q. 5. Describe in brief the System of Administration of Akbar.**

उत्तर—शेरशाह की भाँति अकबर भी मध्यकालीन शासकों में बहुत प्रसिद्ध शासक हुआ है। यद्यपि उसका शासन मौलिक न था, परन्तु प्राचीन रूपरेखा को आधार मानकर उसने अपने शासन को सजीव बना दिया। उसका शासन शेरशाह तथा विदेशी प्रणालियों का एक उत्तम सम्मिश्रण था।

**(१) शासन के सिद्धान्त**—अकबर ने अपना शासन प्रबन्ध निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित किया—

**(क) न्याय**—अपने साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उसने न्याय को अपनी नीति का आधार बनाया। उसका विश्वास था कि कानून की दृष्टि में सभी नागरिक समान होने चाहिएं। इसी कारण से उसने हिन्दुओं तथा मुसलमानों, धनवानों तथा गरीबों में कोई भेद-भाव नहीं रक्खा।

**(ख) धर्म निर्पेक्षता**—उसके शासन का दूसरा सिद्धान्त धर्म निर्पेक्षता था। उसने राजनैतिक क्षेत्र से धर्म को अलग रखकर समस्त प्रजा के हित के लिए कार्य किया।

**(ग) सैनिक तथा शासन-कार्यों में समन्वय**—उसके शासन की एक विचित्र विशेषता यह थी कि उसने सैनिक तथा शासन के कार्यों में समन्वय स्थापित किया। राज्य के सभी कर्मचारियों को आवश्यकता पड़ने पर सैनिक कार्य भी करने पड़ते थे।

**(घ) अन्य सिद्धान्त**—इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत सहिष्णुता का सिद्धान्त, धार्मिक स्वतन्त्रता का सिद्धान्त, योग्यतानुसार पद देने का सिद्धान्त, प्रजा हित का सिद्धान्त आदि थे। इन सिद्धान्तों पर चलकर अकबर ने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाया और शताब्दियों तक के लिए इसकी जड़ें मजबूत कर दीं।

**(२) केन्द्रीय शासन-सम्राट**—अकबर एक सर्व-शक्तिमान सम्राट था। परन्तु वह एक उदार शासक था। वह सेना का सबसे बड़ा पदाधिकारी था और न्याय का सर्वोच्च अध्यक्ष था। विधान तथा प्रबन्ध सम्बन्धी सभी शक्तियाँ उसके हाथ में थीं। इसके अतिरिक्त वह अपनी जनता का संरक्षक था। वह बड़ा परिश्रमी था और

सोलह घण्टे राज्य प्रबन्ध आदि के कार्यों में व्यतीत करता था। शासन सम्बन्धी मामलों में परामर्श देने के लिये उसके यहाँ कई योग्य मन्त्री थे, जिनसे वह सभी बातों में सलाह लेता था।

**केन्द्रीय शासन के विभाग**—शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिये केन्द्रीय शासन अनेक विभागों में विभक्त था और प्रत्येक विभाग एक योग्य अधिकारी के नियन्त्रण में सौंप दिया गया था। सम्राट के बाद राज्य का सर्वोच्च अधिकारी वजीर था। वह शासन के सभी विभागों की देखभाल करता था और सभी महत्वपूर्ण कार्यों में उसका परामर्श लिया जाता था। प्रान्तीय शासन का नियन्त्रण और संचालन भी उसी के हाथ में था। आवश्यकता पड़ने पर वह भी सेनापति का काम करता था। परन्तु सम्राट के अधिक निकट रहने के कारण वह अधिक समय के लिए दूर नहीं रह सकता था। केन्द्रीय शासन के निम्नलिखित विभाग और अधिकारी थे—

(क) **राजकोष**—इस विभाग का प्रधान 'दीवान' कहलाता था। यह राजकोष तथा आय व्यय के लिए उत्तरदायी था।

(ख) **राजपरिवार**—यह विभाग 'खानसामा' के आधीन था। शाही महल तथा भोजनालय की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति यही करता था और राज-परिवार के सम्पूर्ण व्यय का हिसाब रखता था। सम्राट के सभी नौकर उसकी आधीनता में काम करते थे।

(ग) **सेना विभाग**—इस विभाग का प्रधान 'मीर बख्शी' था। सैनिकों की भर्ती, उनका वेतन और उन्हें अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित करना इसका ही काम था। युद्ध के पूर्व सामरिक व्यूह रचना में सेनापतियों का स्थान यही नियत करता था। इसके अतिरिक्त वेतन सम्बन्धी सभी बिलों को यही स्वीकृत करता था।

(घ) **दान विभाग**—इस विभाग का प्रबन्ध 'सदरेसुदूर' कहलाता था। साधु महात्माओं, विद्वानों तथा धार्मिक संस्थाओं की सहायता के लिए दी गई भूमि का प्रबन्ध यही करता था।

(ङ) **आचरण-निरीक्षण-विभाग**—यह विभाग मुहतसिब के आधीन था। उसका यह कार्य था कि वह देखे कि जनता आचरण सम्बन्धी राजकीय नियमों का पालन करती है या नहीं। वह लोगों को जुआ, मद्यपान आदि बुरी आदतों से मुक्त रखने की कोशिश करता था।

(च) **तोपखाना**—यह विभाग 'मीर आतिश' या 'दारोगा-ए-तोपखाना' के आधीन था।

(छ) **न्याय विभाग**—इस विभाग का प्रधान 'काजी-उल-कुजात' था।

(ज) **गुप्तचर तथा डाक विभाग**—इस विभाग का प्रधान दारोगा-ए-डाक चौकी था। इसका प्रधान कार्य सरकारी डाक भेजना और उसे प्राप्त करना था। यह गुप्त रीति से साम्राज्य के विभिन्न भागों से समाचार भी प्राप्त करता था।

(ऋ) मुद्रा विभाग—इस विभाग का प्रधान दारोगा-ए-टकसाल था जो शाही टकसाल की समुचित व्यवस्था करता था।

(३) प्रान्तीय शासन—अकबर ने अपने साम्राज्य को १५ प्रान्तों में बाँट रक्खा था। प्रान्तीय शासन केन्द्रीय शासन के अनुकूल ही संगठित था। प्रान्त का सर्वोच्च अधिकारी 'सूबेदार' होता था। वह अपने प्रान्त में एक छोटे राजा की भाँति शासन करता था। प्रान्तों में विद्रोह की प्रवृत्ति को रोकने के लिये अकबर ने अधिकारियों की शासन की अवधि कम करके उनमें आपस में शक्ति विभाजन की नीति अपनाई थी। प्रान्तों में निम्नलिखित अधिकारी होते थे :—

(क) सूबेदार—सूबेदार प्रान्तीय शासन का प्रधान होता था। वह 'सिपहसालार' भी कहलाता था। उसके आधीन प्रान्तीय शासन और सेना दोनों ही थे। सम्राट की भाँति उसका भी अपना दरबार होता था। उसे बादशाह के केवल दो अधिकार प्राप्त नहीं थे—(१) वह झरोखे में नहीं बैठ सकता था और (२) बादशाह की मंजूरी के बिना सन्धि-विग्रह नहीं कर सकता था। वह सूबे के न्याय विभाग और युद्ध विभाग का प्रधान होता था। उसकी अपनी कचहरी होती थी जिसमें वह काजियों और मीर आदिलों के फैसलों की अपील सुनता था। सूबे में न्याय-विभाग का प्रधान होते हुए भी सूबेदार बादशाह की स्वीकृति के बिना किसी को प्राणदण्ड नहीं दे सकता था। वह धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। धार्मिक प्रश्नों का निर्णय सदर तथा अन्य अधिकारी करते थे। युद्ध विभाग का प्रधान होने की हैसियत से वह सूबे की फौजों का सिपहसालार था और उसी पर फौज को तैयार रखने की जिम्मेदारी थी। सूबे के उच्चतम अधिकारियों को छोड़कर वह अन्य अधिकारियों को नियुक्त कर सकता था और बर्खास्त भी कर सकता था। उसे प्रान्त की सभी सूचनाएं सम्राट के पास भेजनी पड़ती थीं और सम्राट की आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था।

(ख) दीवान—प्रान्त का दूसरा महत्वपूर्ण अधिकारी दीवान था। उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी। सूबे का खजाना उसी के आधीन था। उसके दस्तखत के बिना कोई भी रकम खजाने से अदा नहीं हो सकती थी। वह महकमा लगान के मुकदमों का फैसला करता था और सूबे के कार्यों पर नियन्त्रण रखता था जिससे वह विद्रोह करने या स्वतन्त्र होने की चेष्टा न करें।

(ग) फौजदार—फौजदार सिपहसालार के नीचे सूबे में सबसे बड़ा फौजी अफसर होता था। एक सूबे में कई फौजदार होते थे। उसका कार्य छोटे मोटे उपद्रव शान्त करना, लुटेरों को गिरफ्तार करना, लगान वसूल करने में आमिल को सहायता देना आदि था। उसकी नियुक्ति सूबेदार करता था।

(घ) आमिल—आमिल का प्रधान कर्तव्य लगान वसूल करना था। किन्तु इसके साथ ही उसे डकैत आदि अपराधियों को दण्ड देकर प्रजा की सुख-शान्ति की भी रक्षा करनी पड़ती थी। उसे पटवारी, मुकद्दम तथा कारकुन लोगों के कागजात की भी जांच करनी पड़ती थी।

(ङ) सदर—सदर का काम धार्मिक तथा दान इत्यादि के लिए भी दी गई माफी जमीन की देखभाल करना था। इसे सदर-उस-सुदूर के आधीन काम करना पड़ता था। प्रान्तों में प्रायः सदर और काजी का काम एक ही व्यक्ति को करना पड़ता था।

(च) कोतवाल—कोतवाल शहर पुलिस का प्रधान होता था और नगर में शान्ति तथा व्यवस्था रखना इसी का काम था। आईने अकबरी में उसके ये काम बताए गए हैं—रात को शहर में पहरा देना व गश्त लगाना, घरों और आम सड़कों की सूचना रखना, विभिन्न वर्गों के आय व्यय पर नजर रखने के लिए गुप्तचर नियुक्त करना, चोरों का पता लगाना, बाटों की जांच करना, लावारिस और लापता आदमियों की सम्पत्ति की सूची तैयार करना, किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध सती न होने देना और १२ वर्ष से कम उम्र के लड़कों का खतना न होने देना। कोतवाल को चोरी गए माल का भी पता लगाना पड़ता था। पता न लगा सकने पर उसे उतना धन अपने पास से देना पड़ता था। इस प्रकार कोतवालों के सुप्रबन्ध से नगरों में अमन चैन रहता था।

(छ) सरकार—प्रत्येक प्रान्त 'सरकारों' में विभक्त था। सरकार का सर्वोच्च अधिकारी फौजदार होता था जिसकी नियुक्ति सूबेदार करता था। गांवों तथा कस्बों में जहाँ कोतवाल नहीं थे वही कोतवाल का भी कार्य करता था। सरकार में दीवान का प्रतिनिधि 'करोड़ी' कहलाता था। वह सरकारी मालगुजारी की वसूली करता था। सरकार के दूसरे कर्मचारी बिटिक्ची, वाक्ये नवीस, पोतदार, कानूनगो, पटवारी, चौधरी और मुकद्दम आदि थे। सरकारी लगान की वसूली की सुविधा के लिए प्रत्येक सरकार अनेक परगनों में विभक्त था।

(४) स्थानीय शासन—शासन की सुविधा के लिये प्रत्येक परगना अनेक गांवों में विभक्त था। गांव शासन की सबसे छोटी इकाई होता था और राजनैतिक, सामाजिक तथा व्यवसायिक दृष्टिकोणों से पूर्ण इकाई समझा जाता था। गांव का प्रधान मुकद्दम होता था। लगान वसूल करते समय वह सरकार का प्रतिनिधि तथा इसे निश्चित करते समय किसानों का प्रतिनिधि समझा जाता था। लगान का ढाई प्रतिशत उसे अपने परिश्रम के रूप में मिलता था। गांव में शांति स्थापित रखना भी उसी का काम था। वह गांव के छोटे-मोटे झगड़ों का निर्णय करता था और पुलिस का भी काम करता था। गांव का दूसरा महत्वपूर्ण कर्मचारी पटवारी था। उसे गांव के हिसाब किताब, भूमि, लगान आदि का रजिस्टर रखना पड़ता था।

(५) मालगुजारी का प्रबन्ध—इसके लिए प्रश्न नं० ४ देखिए।

(६) सेना का संगठन—अकबर के पास एक बहुत बड़ी सेना थी। आईने-अकबरी में कुल मिलाकर ४४ लाख से अधिक सैनिकों का होना बतलाया गया है। उसकी सेना में मुख्यतः तीन रूप थे—

(क) मनसबदारों की फौजें।

(झ) **मुद्रा विभाग**—इस विभाग का प्रधान **दारोगा-ए-टकसाल** था जो शाही टकसाल की समुचित व्यवस्था करता था।

(३) प्रान्तीय शासन—अकबर ने अपने साम्राज्य को १५ प्रान्तों में बांट रक्खा था। प्रान्तीय शासन केन्द्रीय शासन के अनुकूल ही संगठित था। प्रान्त का सर्वोच्च अधिकारी 'सूबेदार' होता था। वह अपने प्रान्त में एक छोटे राजा की भांति शासन करता था। प्रान्तों में विद्रोह की प्रवृत्ति को रोकने के लिये अकबर ने अधिकारियों की शासन की अवधि कम करके उनमें आपस में उचित विभाजन की नीति अपनाई थी। प्रान्तों में निम्नलिखित अधिकारी होते थे :—

(क) **सूबेदार**—सूबेदार प्रान्तीय शासन का प्रधान होता था। वह 'सिपह-सालार' भी कहलाता था। उसके आधीन प्रान्तीय शासन और सेना दोनों ही थे। सम्राट की भाँति उसका भी अपना दरबार होता था। उसे बादशाह के केवल दो **अधिकार प्राप्त नहीं थे—(१) वह झरोखे में नहीं बैठ सकता था और (२) बादशाह की मंजूरी के बिना सन्धि-विग्रह नहीं कर सकता था।** वह सूबे के न्याय विभाग और युद्ध विभाग का प्रधान होता था। उसकी अपनी कचहरी होती थी जिसमें वह काजियों और मीर आदिलों के फैसलों की अपील सुनता था। सूबे में न्याय-विभाग का प्रधान होते हुए भी सूबेदार बादशाह की स्वीकृति के बिना किसी को प्राणदण्ड नहीं दे सकता था। वह धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। धार्मिक प्रश्नों का निर्णय सदर तथा अन्य अधिकारी करते थे। युद्ध विभाग का प्रधान होने की हैसियत से वह सूबे की फौजों का सिपहसालार था और उसी पर फौज को तैयार रखने की जिम्मेदारी थी। सूबे के उच्चतम अधिकारियों को छोड़कर वह अन्य अधिकारियों को नियुक्त कर सकता था और बर्खास्त भी कर सकता था। उसे प्रान्त की सभी सूचनाएं सम्राट के पास भेजनी पड़ती थीं और सम्राट की आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था।

(ख) **दीवान**—प्रान्त का दूसरा महत्वपूर्ण अधिकारी दीवान था। उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी। सूबे का खजाना उसी के आधीन था। उसके दस्तखत के बिना कोई भी रकम खजाने से अदा नहीं हो सकती थी। वह महकमा लगान के मुकदमों का फैसला करता था और सूबे के कार्यों पर नियन्त्रण रखता था जिससे वह विद्रोह करने या स्वतन्त्र होने की चेष्टा न करें।

(ग) **फौजदार**—फौजदार सिपहसालार के नीचे सूबे में सबसे बड़ा फौजी अफसर होता था। एक सूबे में कई फौजदार होते थे। उसका कार्य छोटे मोटे उपद्रव शान्त करना, लुटेरों को गिरफ्तार करना, लगान वसूल करने में आमिल को सहायता देना आदि था। उसकी नियुक्ति सूबेदार करता था।

(घ) **आमिल**—आमिल का प्रधान कर्तव्य लगान वसूल करना था। किन्तु इसके साथ ही उसे डकैत आदि अपराधियों को दण्ड देकर प्रजा की सुख-शान्ति की भी रक्षा करनी पड़ती थी। उसे पटवारी, मुकद्दम तथा कारकून लोगों के कागजात की भी जांच करनी पड़ती थी।

(ङ) सदर—सदर का काम धार्मिक तथा दान इत्यादि के लिए भी दी गई माफी जमीन की देखभाल करना था। इसे सदर-उल-सुद्र के आधीन काम करना पड़ता था। प्रान्तों में प्रायः सदर और काजी का [illegible] एक ही व्यक्ति को करना पड़ता था।

(च) कोतवाल—कोतवाल शहर पुलिस का प्रधान होता था और नगर में शान्ति तथा व्यवस्था रखना इसी का काम था। आईने अकबरी में उसके ये काम बताए गए हैं—रात को शहर में पहरा देना व गश्त लगाना, घरों और आम सड़कों की सूचना रखना, विभिन्न वर्गों के आय व्यय पर नजर रखने के लिए गुप्तचर नियुक्त करना, चोरों का पता लगाना, बाटों की जांच करना, लावारिस और लापता आदमियों की सम्पत्ति की सूची तैयार करना, किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध सती न होने देना और १२ वर्ष से कम उम्र के लड़कों का खतना न होने देना। कोतवाल को चोरी गए माल का भी पता लगाना पड़ता था। पता न लगा सकने पर उसे उतना धन अपने पास से देना पड़ता था। इस प्रकार कोतवालों के सुप्रबन्ध से नगरों में अमन चैन रहता था।

(छ) सरकार—प्रत्येक प्रान्त 'सरकारों' में विभक्त था। सरकार का सर्वोच्च अधिकारी फौजदार होता था जिसकी नियुक्ति सूबेदार करता था। गांवों तथा कस्बों में जहाँ कोतवाल नहीं थे वही कोतवाल का भी कार्य करता था। सरकार में दीवान का प्रतिनिधि 'करोड़ी' कहलाता था। वह सरकारी मालगुजारी की वसूली करता था। सरकार के दूसरे कर्मचारी **बिटिक्ची, वाक्ये नवीस, पोतदार, कानूनगो, पटवारी, चौधरी** और **मुकद्दम** आदि थे। सरकारी लगान की वसूली की सुविधा के लिए प्रत्येक सरकार अनेक परगनों में विभक्त था।

(४) स्थानीय शासन—शासन की सुविधा के लिये प्रत्येक परगना अनेक गांवों में विभक्त था। गांव शासन की सबसे छोटी इकाई होता था और राजनैतिक, सामाजिक तथा व्यवसायिक दृष्टिकोणों से पूर्ण इकाई समझा जाता था। गाँव का प्रधान मुकद्दम होता था। लगान वसूल करते समय वह सरकार का प्रतिनिधि तथा इसे निश्चित करते समय किसानों का प्रतितिधि समझा जाता था। लगान का ढाई प्रतिशत उसे अपने परिश्रम के रूप में मिलता था। गांव में शांति स्थापित रखना भी उसी का काम था। वह गांव के छोटे-मोटे झगड़ों का निर्णय करता था और पुलिस का भी काम करता था। गांव का दूसरा महत्वपूर्ण कर्मचारी पटवारी था। उसे गांव के हिसाब किताब, भूमि, लगान आदि का रजिस्टर रखना पड़ता था।

(५) मालगुजारी का प्रबन्ध—इसके लिए प्रश्न नं० ४ देखिए।

(६) सेना का संगठन—अकबर के पास एक बहुत बड़ी सेना थी। आईने-अकबरी में कुल मिलाकर ४४ लाख से अधिक सैनिकों का होना बतलाया गया है। उसकी सेना में मुख्यतः तीन रूप थे—

(क) मनसबदारों की फौजें।

(ख) अहदी या वे शरीफ सिपाही जिन्हें मनसब नहीं मिल सकती थी।

(ग) राजपूत राजाओं की सहायक सेनायें। ये सेनायें जो लड़ाई के समय साम्राज्य की ओर से लड़ती थीं बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई। बादशाह भी इनका बड़ा मान करता था।

(क) मनसबदारी प्रथा—मनसब शब्द का अर्थ 'पद' व 'प्रतिष्ठा' है। अकबर ने अपने मनसबदारों को ३३ वर्गों में विभक्त किया था। सबसे छोटा मनसब २० सैनिकों का और सबसे बड़ा पांच हजार सैनिकों का था। सात से दस हजार के मनसब केवल राजवंश के लिए थे परन्तु बाद में मानसिंह, टोडरमल आदि भी इस पद पर नियुक्त हुए थे। मनसबदारों की नियुक्ति में जाति-पाति का भेद नहीं था और यह पद इनका वंशानुगत नहीं होता था। प्रत्येक वर्ग के मनसब का वेतन नियत था और उसे अपने मनसब के अनुसार घुड़सवार रखने पड़ते थे। मनसबदारों का व्यक्तिगत पद 'जात' कहलाता था। परन्तु उन्हें इसके अतिरिक्त 'सवार' का भी पद दिया जाता था। 'सवार' पद प्राप्त मनसबदारों को अपने पद के लिये निश्चित वेतन के अतिरिक्त कुछ और अधिक वेतन मिलता था जिससे वे अतिरिक्त सेना रखते थे। मनसबदारों को युद्ध और शासन, दोनों ही कार्य करने पड़ते थे।

इस प्रकार प्रत्येक मनसबदार को अपने पद के अनुसार सैनिकों, घोड़ों, हाथियों, ऊँटों, खच्चरों और गाड़ियों की एक निश्चित सेना रखनी पड़ती थी। लेकिन मनसबदार इस विषय में अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते थे। वे सरकार को धोखा दिया करते थे। कुछ बेइमान मनसबदार कूंजड़ों, धुनियों, जुलाहों, अवारा पठानों, तुर्कों आदि को जिन्हें अनुभव तथा हथियार चलाने का ज्ञान नहीं होता था अपने साथ लड़ाई में ले जाते थे और फिर लौटकर उन्हें अलग कर देते थे। इस प्रकार सिपाहियों के वेतन को वे आप हजम कर जाते थे। इस नाशकारी आचरण का अन्त करने के लिए बादशाह ने दाग की प्रथा और सवारों तथा घोड़ों की हुलिया दर्ज करने की प्रथा प्रचलित की। समय-समय पर वह स्वयं भी मनसबदारों की सेनाओं का निरीक्षण करने लगा था।

(ख) दाखिली सेना - दाखिली सेना के सैनिक वे होते थे जो राज्य की ओर से भर्ती किये जाते थे और जिन्हें राज्य की ओर से वेतन दिया जाता था।

(ग) अहदी सेना—इन सैनिकों की भर्ती सम्राट स्वयं करता था और ये उसके अंग रक्षक का कार्य करते थे। इस सेना का प्रधान दरबार का कोई प्रसिद्ध अमीर होता था। इन सैनिकों को साधारण सैनिक से अधिक वेतन मिलता था।

(घ) अधीनस्थ राजाओं की सेना—साम्राज्य के अन्तर्गत कुछ ऐसे भी राजा थे जिन्होंने बादशाह की आधीनता स्वीकार कर ली थी। वे वार्षिक कर देते थे और आवश्यकता पड़ने पर सम्राट की सैनिक सहायता भी करते थे।

सेना के विभिन्न अंग—अकबर की सेना के पाँच अंग थे —(१) पैदल, (२) घुड़सवार, (३) तोपखाना, (४) हाथी, और (५) नौ-सेना। पैदल सेना बहुत

महत्वपूर्ण नहीं थी। घुड़सवारों की सेना पर विशेष ध्यान दिया जाता था। घोड़ों को दागने और उनके हुलिये की पूरी व्यवस्था थी। तोपखाना भी भारतीय सेनाओं का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया था। अकबर ने ऐसी तोपें ढलवाई जो आसानी से इधर उधर भेजी जा सकती थीं। परन्तु हिन्दुस्तानी तोपें चलाने में कुशल नहीं होते थे। इसलिये रूमी तोपची रखे जाते थे। तोपखाने का सबसे बड़ा अफसर 'मीर-आतिश' कहलाता था। अकबर ने नौ-सेना की ओर भी ध्यान दिया। उसने हल्की तोपों से सजी हुई बहुत सी नावें तैयार करवाई। अकबर को हाथियों का भी बड़ा शौक था। उसके पास हाथियों का एक अच्छा दल था। मनसबदारों को भी हाथियों की एक निश्चित सेना रखनी पड़ती थी।

(७) **न्याय विभाग**—सम्राट स्वयं न्याय का स्रोत था और साम्राज्य के सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में अभियोगों का निर्णय करता तथा अपीलें सुनता था। सम्राट के बाद न्याय-विभाग का सर्वोच्च अधिकारी काजी-उल कुजात था। प्रत्येक न्यायालय में तीन अधिकारी होते थे—काजी, मुफ्ती और मीर अदल। काजी मामले की जांच करता, मुफ्ती कानून की व्याख्या करता और मीर अदल फैसला सुनाता था। अभियोगों का निर्णय कुरान के नियमों के अनुसार होता था। परन्तु हिन्दुओं के दीवानी के मुकदमों में उनके रीति रिवाजों पर भी ध्यान दिया जाता था। दण्ड प्रायः कठोर थे और जुर्माने कड़े होते थे। विद्रोह तथा खून के मामले में प्राण दण्ड दिया जाता था, परन्तु इनके लिये सम्राट की स्वीकृति आवश्यक थी। अंग-भंग और कोड़े लगाने की व्यवस्था थी। विद्रोहियों को जहर देना या जीवित जलाने की भी प्रथा थी। गाँवों के लिये न्याय की कोई समुचित व्यवस्था न थी। गाँव के लोग अपने झगड़ों का निर्णय प्रायः ग्राम पंचायतों द्वारा करते थे। फौजदारी के मामलों में हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये एक ही नियम थे।

(८) **गुप्तचर विभाग**—अकबर ने साम्राज्य के विभिन्न भागों की घटनाओं की सूचना प्राप्त करने के लिये गुप्तचर विभाग की व्यवस्था की थी। इस विभाग के कर्मचारी सरकारी कर्मचारियों के कार्यों तथा उनके व्यवहारों का गुप्त रूप से निरीक्षण करते थे और उसकी सूचना सम्राट को देते थे। केन्द्र की भाँति प्रान्तों में भी गुप्तचर होते थे। इससे जिले के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार को रोकने में सहायता मिलती थी। इसके अतिरिक्त अकबर स्वयं भी अपने कर्मचारियों पर कड़ी निगाह रखता था।

(९) **डाक विभाग**—एक स्थान से दूसरे स्थान तक सूचना भेजने के लिए डाक विभाग की व्यवस्था थी। वाकयेनवीस प्रतिदिन घोड़ों तथा हरकारों द्वारा साम्राज्य के विभिन्न भागों की सूचना केन्द्र में भेजा करते थे। प्रत्येक छः सात मील की दूरी पर डाक चौकियाँ होती थीं जहाँ हर समय डाक ले जाने के लिये हरकारे या घोड़े मौजूद रहते थे। इस विभाग का प्रधान दारोगा-ए-डाक चौकी कहलाता था।

(१०) शिक्षा विभाग—स्वयं अशिक्षित होते हुए भी अकबर ने शिक्षा की समुचित व्यवस्था की थी। उसके समय में अनेक विद्यालय स्थापित हुए और उनमें योग्य शिक्षक नियुक्त किए गये। निर्धन विद्यार्थियों की सहायता की जाती थी। विद्यालयों में फारसी का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया था। सम्राट ने स्त्री-शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया और फतहपुर सीकरी में एक बालिका विद्यालय की स्थापना कराई।

---

प्रश्न ६—अकबर के समय में कला व साहित्य की जो उन्नति हुई उस पर प्रकाश डालिये।

**Q. 6. Throw light on the progress of Art and Literature in the reign of Akbar.**

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर के लिए अध्याय ९ का प्रश्न नं० ४ पढ़िये।

---

प्रश्न ७—अकबर को एक राष्ट्रीय शासक कहना कहाँ तक उचित है?

**Q. 7. *How far is it correct to call Akbar as national king?***

उत्तर—भारतीय इतिहास में अकबर को एक बहुत ही उच्च स्थान प्राप्त है। भारत को एक राष्ट्र का रूप प्रदान करने का श्रेय उसी को प्राप्त है। उसने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के आपसी मत-भेदों को दूर करने का प्रयत्न किया और उनमें एक राष्ट्र की भावना जागृत करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए :—

(१) उसने धर्म को राजनीति से अलग रक्खा और राजनैतिक कार्यों में मुल्ला एवं मौलवियों को हस्तक्षेप नहीं करने दिया।

(२) उसने धर्म के अनुयायियों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की।

(३) उसने तीर्थ यात्रा कर एव जजिया कर हिन्दुओं पर से हटा दिये।

(४) उसने हिन्दू मन्दिरों एवं शिक्षा संस्थाओं को अनुदान दिये।

(५) उसने हिन्दुओं के साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोड़कर उनको अपना सम्बन्धी बना लिया।

(६) उसने हिन्दुओं को योग्यता के आधार पर शासन में उच्च पद प्रदान किये।

(७) उसने भारतीय कला एवं साहित्य को खूब प्रोत्साहन दिया।

(८) उसने हिन्दू समाज की बहुत सी कुरीतियों जैसे बाल विवाह, सती प्रथा आदि का कानून बना कर अन्त कर दिया और विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया।

उपरोक्त उपायों से हिन्दुओं तथा मुसलमानों में मेल हो गया और वे एक राष्ट्र के रूप में संगठित हो गये।

राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिये अकबर ने निम्नलिखित कार्य और किये :—

(१) राजनैतिक एकता :—अकबर ने लगभग समस्त भारत को विजय करके अपने शासन प्रबन्ध को एक सूत्र में बांध दिया। उसने सारे देश में समान कानून लागू किये, समान भूमि कर की व्यवस्था की, समान न्याय की नींव डाली, एक से सिक्के जारी किये और एक ही राजकीय भाषा का प्रयोग किया। इन सब उपायों से उसने देश को राजनैतिक एकता प्रदान की।

(२) सांस्कृतिक एकता:—राज्य की ओर से पोषित शिक्षण संस्थायें हिन्दुओं के बच्चों के लिये खोल दी गईं जिससे कि वे भी सरलतापूर्वक शिक्षा ग्रहण कर सकें।

अकबर ने अनेक संस्कृत, तुर्की, अरबी और यूनानी ग्रन्थों का फारसी भाषा में अनुवाद कराया। इससे भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के मनुष्यों को एक दूसरे के साहित्य का ज्ञान प्राप्त हुआ। हिन्दी-साहित्य की भी खूब उन्नति हुई। मुसलमान कवियों ने भी हिन्दी भाषा में सुन्दर-सुन्दर कवितायें लिखीं। इन सब प्रयत्नों से देश में सांस्कृतिक एकता का जन्म हुआ।

(३) सामाजिक एकता :—अकबर ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच सामाजिक एकता की भावना जागृत करने के लिये अन्तर्जातीय विवाहों और खान-पान को प्रोत्साहन दिया। उसने दशहरा, दीवाली, रक्षा-बन्धन और बसन्त आदि हिन्दुओं के त्यौहारों एवं फारसी के नौरोज के उत्सव को राष्ट्रीय त्यौहार घोषित कर दिया और स्वयं उनको बड़े धूमधाम से मनाने लगा। उसने हिन्दू समाज की बहुत सी कुरीतियों को भी दूर करने का प्रयत्न किया।

(४) धार्मिक एकता:—अकबर ने धार्मिक एकता स्थापित करने के उद्देश्य से दीनइलाही धर्म को चलाया जिसमें सब धर्मों के अच्छे अच्छे सिद्धान्तों का समन्वय था। इसके अतिरिक्त उसने अपनी समस्त प्रजा को धार्मिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता दे रक्खी थी।

अकबर के इन प्रयत्नों के फलस्वरूप हम उसे राष्ट्रीय सम्राट के नाम से पुकारते हैं।

---
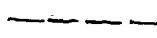
**प्रश्न ८—अकबर को एक महान सम्राट क्यों कहा जाता है? समझाकर लिखिये।**

Q. 3. Why is Akbar called the Great?

उत्तर—किसी सम्राट को महान कहने के लिए उसमें निम्नलिखित गुणों का पाया जाना तथा कार्यों को करना अति आवश्यक है:—

(१) चमत्कारी विजय तथा साम्राज्य संस्थापन,

(२) शान्ति पूर्ण शासन और प्रजा हित चिन्तन,
(३) धार्मिक सहिष्णुता,
(४) उचित न्याय-व्यवस्था,
(५) संस्कृति, साहित्य और कला का संरक्षण।

इन्हीं विशेपताओं की कसौटी पर कसकर हम यह देखेंगे कि अकबर को 'महान्' क्यों कहा जाता है।

## (१) विजय और साम्राज्य संस्थापन

सन् १५५६ ई० में जिस समय हुमायूं की मृत्यु हुई थी उस समय अकबर की अवस्था केवल १३-१४ वर्ष की थी। अतः शासन की वास्तविक बागडोर उसके मामा बैरम खाँ के हाथ में रही। उस समय तो दिल्ली तथा आगरा भी अकबर के हाथ में था। इन दोनों महत्वपूर्ण स्थानों पर हुमायूं की अकाल मृत्यु का समाचार पाते ही महमूदशाह के सेनापति हेमू ने अपना अधिकार जमा लिया था। अतः अकबर का तो सिंहासनारोहण भी गुरदासपुर जिले में स्थित कलानोर के बाग में किया गया और एक चबूतरे को उसके सिंहासन का रूप दिया गया। इसके पश्चात् बैरम खाँ ने पानीपत के दूसरे युद्ध में हेमू को पराजित करके तथा उसकी जीवन लीला समाप्त करके दिल्ली तथा आगरा पर अपना अधिकार जमाया। इस प्रकार जिस मुगल साम्राज्य की नींव बाबर ने भारत में सन् १५२६ ई० में रक्खी थी उसका तो जरा सा अंश भी अकबर को उत्तराधिकार के रूप में न मिल सका। यदि बैरम खां अकबर का संरक्षक न होता तो सम्भवतः मुगल साम्राज्य भारत से हुमायूं की मृत्यु के उपरान्त ही नष्ट हो गया होता। परन्तु अकबर ने ऐसा न होने दिया। उसने दिल्ली तथा आगरा के इस छोटे से राज्य को अपनी योग्यता, रण-कुशलता तथा धार्मिकता और राजपूत नीति के फलस्वरूप एक विशाल साम्राज्य में बदल दिया। उसका साम्राज्य उत्तर पश्चिम में अफगान देश से लेकर पूर्व में बंगाल तक और उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में बीजापुर तथा गोलकुण्डा की सीमा तक विस्तृत था। उसके साम्राज्य में १५ सूबे थे। उसने एक ऐसे साम्राज्य की दृढ़ आधारशिला पर स्थापना की जो तीन पीढ़ियों तक विविध आन्तरिक और बाह्य झकोरों और झंझाओं के बीच भी अडिग बना रहा।

## (२) शक्तिपूर्ण शासन तथा प्रजाहित चिन्तन

अकबर केवल एक महान् विजेता ही न था बल्कि एक दूरदर्शी शासक तथा उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ भी था। उसने अपनी सम्पूर्ण प्रजा की सद्भावना तथा सहयोग से एक प्रबल और स्थायी साम्राज्य एवं शासन व्यवस्था की स्थापना की। वह पहला मुसलमान था जिसने बहुसंख्यक हिन्दुओं के सहयोग का उचित मूल्य आंकित किया था। उसने न केवल हिन्दुओं के साथ सौजन्यता का व्यवहार किया और राज्य में उन्हें ऊंचे २ पदों पर नियुक्त किया वरन् उसने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को समान अधिकार प्रदान किया और हिन्दुओं की सभी असुविधाओं को दूर किया।

प्रजा का हितचिन्तन और धार्मिक कटुता तथा वैर की समाप्ति उसके शासन के प्रधान लक्ष्य थे। हिन्दुओं की सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न करके उसने भारतीयों के सामाजिक जीवन में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। धार्मिक वाद-विवाद गृह स्थापित कर तथा दीनइलाही धर्म की आयोजना कर उसने धार्मिक जीवन में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। राजस्व प्रणाली में सुधार करके उसने किसानों की दशा को सुधारा। इस प्रकार अकबर ने प्रजा के हित को ध्यान में रखकर एक सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की।

## (३) धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारता

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है अकबर ने धार्मिक क्षेत्र में उदारता तथा सहिष्णुता की नीति अपनाई। अपनी प्रजा के दो वर्ग हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक करने तथा उनके आपसी मतभेदों को दूर करने के लिये उसने दीनइलाही धर्म चलाया जो सब धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों का सम्मिश्रण था। परन्तु उसने किसी भी व्यक्ति या सरकारी कर्मचारी को इस धर्म को मानने के लिये बाध्य न किया। उसने सभी सम्प्रदायों के व्यक्तियों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर रक्खी थी और सर्व संस्थाओं को समान रूप से दान दिया करता था। धार्मिक कर जैसे—तीर्थ यात्रा कर, जजिया कर इत्यादि उसके आदेश से सभी हटा दिये गए थे और सबको अपने धर्म के पालन करने, उसके अनुसार पूजा पाठ करने तथा उसका प्रचार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। यह उसकी महानता का एक वहुत बड़ा चिन्ह था।

## (४) उचित न्याय व्यवस्था

अकबर ने अपने शासन प्रवन्ध के अन्तर्गत न्याय की भी उचित व्यवस्था की। न्याय के प्रश्न पर छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, जात पात किसी भी प्रकार का भेदभाव न किया जाता था। न्याय के दरवाजे सब मनुष्यों के लिये खुले थे और सबके साथ अदालतों में न्याय होता था। अभियोगों के निर्णय का वैधानिक आधार कुरान था किन्तु हिन्दुओं के दीवानी के मामलों में उनके रीति रिवाजों पर भी ध्यान दिया जाता था। प्रायः दण्ड कठोर और जुर्माने कड़े होते थे। विद्रोह तथा हत्या का दण्ड प्राणदण्ड था। गाँवों में प्रायः ग्राम पंचायतों द्वारा झगड़ों का निर्णय हो जाता था। फौजदारी के मामलों में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के लिये एक ही नियम थे।

## (५) संस्कृति, साहित्य तथा कला का संरक्षण

अकबर के संरक्षण में संस्कृति, साहित्य तथा कला की खूब उन्नति हुई। हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों ही संस्कृतियों का विकास तथा उन्नति हुई। उसके शान्ति तथा समृद्धपूर्ण शासन काल में भक्ति आन्दोलन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा। स्थापत्य कला, चित्र कला तथा संगीत कला सभी उन्नति के चरम उत्कर्ष पर पहुँचीं। कला के क्षेत्र में अपनी अभिरुचि के अनुसार ईरानी आदर्शों को अपनी प्रतिभा द्वारा भारतीय शिल्प चातुरी और भारतीय परम्परा में ढाल दिया। उसने

ईरानी शिल्प कला का भारतीयकरण आरम्भ किया। आगरे के किले में उसका बनवाया हुआ जहाँगीरी महल तथा फतहपुर सीकरी के विविध भवनों—बुलन्द दरवाजा, दीवान खास तथा पंचमहल की कला में भारतीयता इतनी स्पष्ट हो गई है कि ये किसी राजपूत कुमार के बनाये हुए प्रतीत होते हैं। सिकन्दरा में उसका मकबरा भी उसी नमूने पर बनाया गया है।

स्थापत्य कला के साथ-साथ अकबर ने चित्रकला में भी पर्याप्त रुचि दिखलाई। मुसलमान चित्रकारों में अब्दुस समद, मीर सैयद अली और फर्रुखबेग तथा हिन्दू चित्रकारों में दसवन्त, बसावन, साँवल दास, ताराचन्द, जगन्नाथ आदि बहुत प्रसिद्ध थे। इन चित्रकारों ने चंगेजनामा, रामायण आदि के बड़े सुन्दर-सुन्दर आख्यान चित्रित किये थे।

जहाँ तक संगीत कला का प्रश्न है अकबर के दरबार में हिन्दू, ईरानी, तूरानी और काशमीरी सभी गवैये संरक्षण पाते थे। तानसेन उसके राज-दरबार का सबसे प्रसिद्ध गवैया था जो अपने दीपक राग तथा वर्षा राग के लिये समस्त भारत में प्रसिद्ध था।

अकबर के संरक्षण में साहित्य की भी खूब उन्नति हुई। फारसी साहित्य, हिन्दी साहित्य तथा बंगला साहित्य सभी का पूर्ण विकास हुआ। ऐतिहासिक ग्रन्थ भी खूब लिखे गये। कवितायें, गजले, कसीदे आदि सभी की रचनाएं हुईं।

**निष्कर्ष:**—उपरोक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि एक महान् शासक के सभी गुण अकबर में मौजूद थे। उसकी महानता, उसकी अलौकिक प्रतिभा, धार्मिक सहिष्णुता, साहित्य एवं कला-प्रियता, राजनीतिज्ञता, उदारता, प्रजा-पालन तथा राज वैभव में निहित है। इसीलिये उसे एक महान् सम्राट कहा जाता है।

—:o:—

**प्रश्न ९— "एकता तथा सबके प्रति शान्ति का व्यवहार यही अकबर के शासन के मूल सिद्धान्त थे।" इसकी समीक्षा कीजिये।**

**Q. 9. Peace with all and unity mere the main principles of Akbar's administration.' Discuss.**

**उत्तर**—अकबर एक बहुत ही दूरदर्शी, उदार विचारों वाला तथा धार्मिक क्षेत्र में सहिष्णु शासक था। सन् १५५६ ई० में जब वह सिंहासनारूढ़ हुआ उस समय उसके चारों ओर शत्रु ही शत्रु दिखलाई देते थे। अकबर को इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता था। किन्तु बाल्यकाल से ही कठिनाइयों का सामना करते करते उसे राजनीति का पर्याप्त अनुभव हो गया था। अतः उसने दूरदर्शिता से काम लिया और सोचा कि यदि उसे भारत पर एकछत्र राज्य स्थापित

करना है और उस पर शान्तिपूर्वक राज्य करना है तो उसे हिन्दुओं के प्रति उदारता का व्यवहार करना होगा और राजपूतों को अपना मित्र बनाना होगा। तभी वह अपने इन राजपूत मित्रों की सहायता से अपने शत्रुओं को पराजित कर सकता है और वह अपने वश में रख सकता है। अतः उसने इस नीति पर अमल किया और एकता तथा शान्ति को अपने शासन का मुख्य सिद्धांत बनाकर सब क्षेत्रों में आशातीत सफलता प्राप्त की।

## एकता तथा शान्ति के उपाय

**सामाजिक दशा:—** उस समय देश में हिन्दू तथा मुसलमान विशेषकर दो ही जातियाँ थीं। इन जातियों में पारस्परिक संघर्ष था। हिन्दुओं के प्रति मुस्लिम शासकों का व्यवहार अधिकतर कठोर रहता था। अतः हिन्दू जाति मुसलमानों को घृणा की दृष्टि से देखा करती थी। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के रीति-रिवाजों में तथा धार्मिक सिद्धांतों में भी बड़ा अन्तर था। अतः ये जातियाँ परस्पर मिलकर नहीं रह सकती थीं। इसके अतिरिक्त मुसलमानों में भी तुर्की, ईरानी, अफगानी तथा मुगल अनेकों कबीलों के लोग थे। इनमें सामाजिक दृष्टि से एकता नहीं थी। इधर शिया तथा सुन्नी मुसलमानों का पारस्परिक मतभेद बहुत तीव्र था।

**राजनैतिक दशा:—** राजनैतिक क्षेत्र में भी देश में एकता नहीं दिखाई देती थी। समस्त देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। इसके अतिरिक्त धर्म प्रभावित शासन प्रणाली होने के कारण हिन्दुओं को राज्य में उच्च पद प्रदान नहीं किये जाते थे जिससे वे मुसलमान शासकों को सदैव विदेशी समझते रहे और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते रहे।

अकबर ने अपनी उदारता तथा परिस्थिति से वशीभूत होकर देश में सामाजिक तथा राजनैतिक एकता स्थापित की और लौकिक राज्य को जन्म दिया। सामाजिक क्षेत्र में एकता स्थापित करने के लिए उसने निम्नलिखित उपाय किये:—

**सामाजिक एकता के उपाय:—**

(१) उसने मनुष्य-मनुष्य में, जाति-जाति में तथा समाज-समाज में फैली विषमता को दूर किया।

(२) उसने विजित जाति के मनुष्यों को गुलाम बनाने की प्रथा को बन्द किया और यह घोषणा करा दी कि सब मनुष्य आपस में बराबर हैं, कोई भी दूसरे का गुलाम नहीं है।

(३) उसने हिन्दुओं से जो तीर्थ यात्रा कर वसूल किया जाता था, उसे बन्द कर दिया।

(४) उसने जजिया कर भी बन्द कर दिया जो हिन्दुओं से वसूल किया जाता था।

(५) उसने राजपूतों में प्रचलित कन्या वध की कुरीति को बन्द करने का प्रयत्न किया।

(६) हिन्दुओं में प्रचलित सती प्रथा पर भी उसने रोक लगा दी। अब किसी भी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती सती होने पर विवश नहीं किया जा सकता था।

(७) अकबर ने शुद्ध आचरण तथा बलशाली सन्तान की ओर भी अपना ध्यान दिया। अतः उसने हिन्दू जाति के उद्धार के लिये बाल-विवाह की प्रथा पर नियन्त्रण लगा दिया।

(८) अकबर ने हिन्दू समाज के कल्याण के लिये विधवा विवाह की प्रथा को प्रोत्साहन दिया।

(९) उसने अग्नि परीक्षा, बलि प्रथा, मद्यपान, वैश्यावृत्ति आदि कुरीतियों का भी अन्त किया।

(१०) अकबर ने मुस्लिम समाज के मतभेदों को भी दूर करने का प्रयत्न किया। उसने शिया-सुन्नी के आपसी मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न किया। उसने सभी मुसलमानों को समान समझा और सभी सम्प्रदायों के रीति-रिवाजों को ग्रहण किया।

**राजनैतिक एकता के उपाय:**—सामाजिक एकता स्थापित करने के साथ-साथ अकबर ने राजनैतिक एकता भी स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसके लिये उसने निम्नलिखित उपाय किये:—

(१) उसने हिन्दू मुसलमानों का भेदभाव न करके योग्यता के आधार पर हिन्दुओं को भी उच्च पद प्रदान किये। राजा टोडरमल, बीरबल तथा मानसिंह उसके विश्वासपात्र उच्च पदाधिकारी थे।

(२) उसने धर्म अप्रभावित राज्य (लौकिक राज्य) की स्थापना की और धर्म रंग, जाति आदि का कोई भी भेदभाव न किया, बल्कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों और अन्य धर्म के मनुष्यों को भी योग्यता के अनुसार राज्य में पद प्रदान किये।

(३) अकबर ने राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़े। इससे हिन्दुओं के मस्तिष्क से द्वेष की भावना निकल गई और इसने पुरानी घृणा एवं विषमता को मिटा दिया। उन समस्त हिन्दू स्त्रियों को जो सम्राट के अन्तरंग में रहा करती थीं, आदर की दृष्टि से देखा जाता था और सम्राट अकबर उनसे बड़ा प्रेम करता था। उनको अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार जीवन व्यतीत करने, उत्सव मनाने तथा आचरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

(४) उन राजपूत राजाओं को, जो वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा अकबर के सम्बन्धी बने राज्य में बड़े-बड़े ओहदे प्रदान किये गये और उनके साथ भाई का सा बर्ताव किया।

(५) अकबर ने एकसी संस्कृति, एक से रीति-रिवाज तथा एकसी वेशभूषा एवं एक राष्ट्रभाषा स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप उसके

शासन काल में राष्ट्रीय भावना का जन्म हुआ जिसके परिणामस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में खूब उन्नति हुई।

**साँस्कृतिक एकता के लिये उपाय :**—अकबर ने सांस्कृतिक क्षेत्र में भी एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसने हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को ही लेखन तथा कविता कला की ओर बढ़ने का प्रोत्साहन दिया। मुस्लिम कवियों को हिन्दी में कविता करने का प्रोत्साहन मिला जिससे हिन्दू लोग मुसलमानों के और समीप आ सकें। अब्दुर्रहीम खानखाना ने इस क्षेत्र में अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। अकबर ने एक अनुवाद विभाग भी स्थापित किया जिसने अनेक पुस्तकों का अनुवाद भिन्न-भिन्न भाषाओं में किया। फारसी साहित्य के साथ साथ हिन्दी, उर्दू तथा बंगला साहित्य की भी खूब उन्नति हुई। हिन्दू कवियों तथा विद्वानों को भी राज्य की ओर से वैसी ही सहायता एवं आश्रय मिलता था जितना मुस्लिम साहित्यकारों को। अकबर ने भिन्न भिन्न देशों से संगीतज्ञ, शिल्पकार तथा चित्रकारों को बुलवाया और भारत में सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। उसके दरबार में सभी जातियों के कलाकार मौजूद रहते थे और उन्हें अपना अपना कौशल दिखाने का पूर्ण अवसर दिया जाता था।

**धार्मिक एकता के उपाय :**—अकबर ने धार्मिक क्षेत्र में भी एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। अकबर स्वभाव से ही जिज्ञासु प्रकृति का मनुष्य था। अतः सत्य की जानकारी के लिये वह भिन्न भिन्न आचार्यों से मिलकर उनकी बातें तथा वाद-विवाद सुना करता था। सन् १५७५ ई० में उसने फतहपुर सीकरी में एक इबादतखाना बनवाया जहाँ भिन्न भिन्न धर्मों के आचार्य वाद-विवाद किया करते थे। इन धर्मों के अच्छे अच्छे सिद्धान्तों को लेकर उसने दीनइलाही धर्म चलाया जिसका उद्देश्य हिन्दुओं तथा मुसलमानों के आपसी मत-भेदों को दूर करना तथा उनमें मेल उत्पन्न करना था। परन्तु उसने किसी भी व्यक्ति को इस धर्म को मानने के लिये बाध्य नहीं किया बल्कि सबको धार्मिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की।

## शान्ति के उपाय

विभिन्न क्षेत्रों में एकता स्थापित करने के साथ अकबर ने देश में शान्ति स्थापित करने के लिये एक सुदृढ़ शासन की स्थापना की और निम्नलिखित कार्य किये :—

(१) **संगठित सेना की स्थापना :**—अकबर ने अपने शत्रुओं का दमन तथा विद्रोहियों का अन्त करने के लिये एक विशाल और सुसंगठित सेना की स्थापना की जो साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों में शान्ति स्थापित रखती थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये सम्राट ने अपने पास एक निजी सेना भी रखी थी।

(२) **गुप्तचर विभाग की स्थापना :**—इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये अकबर सम्राट ने गुप्तचर विभाग की स्थापना की थी जो उसके साम्राज्य में होने वाली

घटनाओं की सूचना सम्राट के पास पहुँचाता था और शान्ति स्थापना में सहायता प्रदान करता था।

(३) पुलिस का प्रबन्ध :—अपराधियों की रोकथाम तथा अपराधियों का पता लगाने एवं राज्य में शान्ति स्थापित रखने के लिये पुलिस का भी प्रबन्ध था। प्रत्येक जिले में एक एक "फौजदार" नियुक्त था जिसका कार्य अपने जिले में शान्ति स्थापित रखना था। शहर में शान्ति स्थापित रखने के लिये 'कोतवाल' होता था। गांवों में इस कार्य के लिये 'दारोगा' नियुक्त थे।

(४) उचित न्याय व्यवस्था :—अपने साम्राज्य में शान्ति स्थापित रखने तथा अपराधियों को उचित दण्ड देने के लिये अकबर ने एक स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष न्यायपालिका का भी प्रबन्ध किया था। न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी काजी-उल-कुजात कहलाता था। प्रत्येक न्यायालय में तीन अधिकारी होते थे—काजी, मुफ्ती और मीर अदल। काजी मामले की जाँच करता था, मुफ्ती कानून की व्याख्या करता था और मीर अदल मुकदमें का फैसला सुनाता था। मुकदमों का फैसला कुरान के नियमों के अनुसार होता था परन्तु दीवानी के मुकदमों में हिन्दुओं के रीति-रिवाजों का ख्याल रक्खा जाता था। ग्रामों में छोटे छोटे मुकदमों का फैसला ग्राम पंचायतें ही कर लिया करती थीं। सबके साथ न्याय समान रूप से होता था और उसमें छोटे बड़े, गरीब-अमीर या जात-पात का कोई भेद भाव नहीं किया जाता था।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि अकबर ने अपने शासन-प्रबन्ध के क्षेत्र में एकता तथा शान्ति स्थापित रखने का भरसक प्रयत्न किया और यही उसके शासन के मुख्य सिद्धान्त थे।

---

**प्रश्न १०—अकबर के दरबार के प्रभावशाली व्यक्तियों का संक्षेप में परिचय दीजिए।**

**Q. 10. Give a brief life sketch of the important personages of Akbar's court.**

**उत्तर**—यद्यपि अकबर सम्राट स्वयं शिक्षित न था परन्तु वह विद्वानों का बड़ा आदर-सत्कार करता था। उसके दरबार में नवरत्न रहा करते थे जिनमें अब्दुर्रहीम खानखाना, अब्बुल फजल, फैजी, तानसेन, मानसिंह, टोडरमल तथा बीरबल के नाम उल्लेखनीय हैं। उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है:—

## अब्दुर्रहीम खानखाना

अब्दुर्रहीम खानखाना अकबर के संरक्षक एवं मामा बैरमखाँ का पुत्र था। उसका बाल्यकाल बड़े ही लाड-प्यार से व्यतीत हुआ था। अकबर की भी उस पर विशेष अनुकम्पा रहती थी।

बचपन से ही वह बड़ा वीर था। अतः बड़ा होधे पर अकबर ने उसे 'खानखाना' की उपाधि से विभूषित किया और धीरे धीरे वह एक योग्य लेखक, कवि, सैनिक तथा महान् विजेता बन गया।

## अब्दुर्रहीम खानखाना की विशेषताएं

(१) अनुवादक के रूप में :—अब्दुर्रहीम फारसी भाषा का बड़ा विद्वान् था। उसने 'बाबर नामा' का अनुवाद तुर्की भाषा से फारसी भाषा में किया।

(२) कवि के रूप में :—अब्दुर्रहीम हिन्दी भाषा का भी बड़ा अच्छा ज्ञाता था। उसके हिन्दी के दोहे हिन्दी साहित्य में एक उच्च स्थान रखते हैं। वह विश्व-बधुत्व का समर्थक था और सूफी मत से बहुत प्रभावित था। उसके दोहों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

दुर दिन परे 'रहीम' कहि भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को जो न होय हितहानि।।
"रहिमन" राज सराहिये, ससि सम सुखद जो होई।
कह बापुरो भानु है, तप्यो खोई।।

× × × × ×

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बांटन वारे को लगे, ज्यौं मेंहदी को रंग।।
दीन सवन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय।।

(३) सेना-नायक के रूप में—अब्दुर्रहीम खानखाना एक महान सेनानायक भी था। उसने गुजरात के शासक "मुजफ्फरशाह" को कई बार पराजित किया था। दक्षिण तथा सिन्ध की विजय में भी उसने अपनी वीरता का परिचय दिया था।

(४) मृत्यु—अकबर की मृत्यु के पश्चात् अब्दुर्रहीम का पतन होना शुरू हो गया। जहाँगीर ने उसकी सेवाओं को कोई महत्व नहीं दिया। सन् १६२७ ई० में उसका देहान्त हो गया।

## अब्बुलफजल

प्रारम्भिक जीवन—अब्बुलफजल शेख मुबारक का पुत्र था। उसका जन्म सन् १५५१ ई० में हुआ था। बचपन से ही उसके विचारों में उदारता, सहिष्णुता एवं सहनशीलता आदि गुण मौजूद थे। वह कट्टर धार्मिक विचारों का खण्डन किया करता था। सन् १५७३ ई० में वह अकबर के सम्पर्क में आया। उसने उसे २००० के मनसबदार का पद प्रदान किया।

सेनानायक के रूप में—अब्बुलफजल एक उच्च कोटि का सेनापति भी था। अकबर ने उसे दक्षिण विजय का काम सौंपा था जिसमें उसे पर्याप्त सफलता मिली थी।

लेखक के रूप में—वीर सेनापति होने के साथ-साथ अब्बुलफजल एक बहुत बड़ा विद्वान भी था। उसने "आइनेअकबरी तथा "अकबरनामा" दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे।

मृत्यु—शहजादा सलीम अब्बुलफजल से बड़ी ईर्ष्या रखता था। अतः जब वह दक्षिण विजय करके आगरा लौट रहा था तो मार्ग में सलीम ने वीरसिंह बुन्देला नामक व्यक्ति से सन् १६०२ ई० में उसका वध करा दिया। अकबर को उसकी मृत्यु से बड़ा दुख हुआ और शोकातुर होकर उसने कहा, "यदि सलीम को बादशाह बनना था, तो मुझ को मार देता। उसने अब्बुलफजल को मार कर क्या लिया।"

## शेख फैजी

**प्रारम्भिक जीवन एवं उत्कर्ष**—शेख फैजी भी शेख मुबारक का पुत्र था और अब्बुलफजल का बड़ा भाई था। स्वतन्त्र विचारों के कारण उसको भी अकबर ने अपना विश्वासपात्र बना लिया था। वह एक उच्च कोटि का कवि था और राजकवि का पद उसको प्राप्त था। उसने 'लीलावती' ग्रंथ का अनुवाद फारसी भाषा में किया था। एक बार उसको राजदूत बनाकर बुरहानपुर भी भेजा गया था।

**मृत्यु**—सन् १५९५ में उसकी मृत्यु हो गई।

## तानसेन

**प्रारम्भिक जीवन तथा उत्कर्ष**—तानसेन का जन्म ग्वालियर प्रदेश में हुआ था। वहीं पर उसने अपनी शिक्षा पाई थी और गायन विद्या में प्रवीणता प्राप्त की थी। तानसेन की इस प्रसिद्धि को सुनकर अकबर ने उसे अपने राजदरबार में बुला लिया था। यहाँ पर तानसेन की ख्याति और भी दूर दूर तक फैल गई। कहते हैं कि एक बार "बैजू बावरा" नामक संगीतज्ञ ने गायन विद्या में तानसेन को नीचा दिखा दिया था' फिर भी संगीत-शास्त्र को तानसेन ने एक नवीन जीवन एवं ज्योति प्रदान की थी।

मृत्यु—सन् १५८९ ई० में वह परलोक सिधार गया।

## राजा मानसिंह

**प्रारम्भिक जीवन**—मानसिंह आमेर (जयपुर) के कछवाहा राजपूत राजा भगवानदास का पुत्र और राजा भारमल (बिहारीमल) का पौत्र था। राजा बिहारीमल ने अपनी पुत्री का विवाह सम्राट अकबर से कर दिया था। अतः इस सम्बन्ध के कारण राजा भगवानदास और मानसिंह दोनों ही अकबर के बड़े विश्वासपात्र व्यक्ति बन गये थे और उन्हें मनसबदारी के उच्च पद प्राप्त थे।

**उत्कर्ष तथा कार्य**—अकबर की छत्रछाया में रहकर मानसिंह ने बड़ी जल्दी उन्नति की। उसने बंगाल में उस्मान खां तथा काबुल में मिर्जा हकीम का विद्रोह सफलतापूर्वक दबाया। इस सफलता के परिणामस्वरूप वह पहले काबुल तथा बाद को बंगाल का गवर्नर भी नियुक्त किया गया। हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप को पराजित करना भी उसी का कार्य था।

**मानसिंह का पतन**—राजा मानसिंह एक बहुत ही महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। अकबर के शासन काल में उसको काफी सम्मान एवं आदर का पद प्राप्त था। परन्तु सम्राट अकबर के अन्तिम दिनों में उसका मान एवं सत्कार न रह सका। कारण यह था कि मानसिंह अकबर की मृत्यु के पश्चात् सलीम को बादशाह नहीं देखना चाहता था। वह यह चाहता था कि उसका भानजा खुसरो (सलीम का लड़का) शासक बने। अतः इसी उद्देश्य से उसने एक षड़यन्त्र भी रचा। इस षड़यन्त्र में 'मिर्जा अजीज कोका' ने भी मानसिंह का साथ दिया क्योंकि खुसरो अजीज कोका का दामाद था। किन्तु सलीम की सावधानी एवं होशियारी के कारण यह षडयन्त्र सफल न हो सका। सलीम जहाँगीर के नाम से शासक बन गया और मानसिंह का पतन होना शुरू हो गया।

मृत्यु–सन् १६११ ई० में उसका देहान्त हो गया।

## राजा टोडरमल

**प्रारम्भिक जीवन तथा उत्कर्ष**—राजा टोडरमल का जन्म अवध प्रान्त में हुआ था। हिसाब किताब रखने में वह शुरू से दक्ष था। शेरशाह के शासन काल में भूमि का उचित प्रबन्ध करके वह अपनी योग्यता एवं अनुभव का परिचय दे चुका था। सन् १५७७ ई० में वह अकबर का वजीर बना और सन् १५८२ ई० में दीवान के पद पर नियुक्त हुआ। अकबर की सेना में दीवान के पद पर कार्य करते हुए उसने भूमि का बड़ा अच्छा प्रबन्ध करके दिखाया। सारी भूमि की नाप करवाई। फिर उसे पैदावार के हिसाब से उसे चार भागों—पौलज, पड़ौती, चाचर और बंजर—में विभक्त किया। इसके पश्चात् भूमि की औसत उपज का अनुमान लगाकर भूमिकर उपज का $\frac{1}{3}$ भाग निश्चय किया। भूमि प्रबन्ध के इस कार्य में टोडरमल को बड़ी सफलता मिली। इससे सरकार तथा किसान दोनों को बड़ा लाभ हुआ।

मृत्यु–सन् १५८९ ई० में उसका देहान्त हो गया।

## राजा बीरबल

**प्रारम्भिक जीवन तथा उत्कर्ष**—अकबर के शासन काल में बीरबल का नाम अपने चुटकलों तथा हाजिर-जवाबी के लिये सदैव प्रसिद्ध रहेगा। अपने इन गुणों के कारण ही वह अकबर का परम मित्र बन गया था। उसका जन्म सन् १५२८ में "कालपी" में हुआ था। सम्राट अकबर ने उससे प्रसन्न होकर उसे नगरकोट, कांगड़ा व बाद को कालिंजर की जागीर दे दी थी और उसे राजा की उपाधि से विभूषित किया था। सम्राट ने उसके रहने के लिये फतहपुर सीकरी में एक महल भी बनवा दिया था।

बीरबल एक कुशल सेनापति भी था। अकबर ने उसे युसुफजाइयों के विद्रोह को दबाने के लिये भेजा था। परन्तु यहीं पर युद्ध करते-करते सन् १५८६ ई० में वह वीरगति को प्राप्त हो गया था।

———

# ५

## (जहाँगीर १६०५–१६२७)

## (JAHANGIR 1605—1627)

---

प्रश्न १– जहाँगीर के जीवन चरित्र तथा उसके शासन काल की मुख्य घटनाओं का उल्लेख कीजिये।

Q. 1. Describe the career and main events of the reign of Jahangir.

**उत्तर—प्रारम्भिक जीवन—** अकबर महान् की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र जहाँगीर उसके राज्य का स्वामी बना। उसके प्रारम्भिक जीवन का संक्षेप में परिचय नीचे दिया है :—

(१) **जन्म:**—जहाँगीर का जन्म १५६९ ई० में आमेर के राजा बिहारी मल की पुत्री के गर्भ से हुआ था। इसके पहले अकबर के जितने बच्चे उत्पन्न हुये थे उनका अल्प समय में ही देहान्त हो गया था। अत: पिता की अनेक मिन्नतों, प्रार्थनाओं तथा तीर्थ यात्राओं के उपरान्त फतहपुर सीकरी के प्रसिद्ध सन्त शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से यह पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसी सन्त के नाम पर इस बच्चे का नाम 'सलीम' रक्खा गया था।

(२) **शिक्षा:**— सलीम की शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व बैरम खां के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना को सौंपा गया। अब्दुर्रहीम के संरक्षण में सलीम ने तुर्की भाषा, हिन्दी भाषा तथा कविता करने की कला का प्रचुर मात्रा में ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसने फारसी भाषा भी सीख ली। इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान में भी राजकुमार की बड़ी रुचि थी। चित्रकला में उसकी विशेष अनुरक्ति थी। सैनिक शिक्षा के लिये अकबर ने उसके वास्ते अलग से योग्य शिक्षकों को नियुक्त किया। अब वह एक कुशल योद्धा भी बन गया। उसे शिकार खेलने का भी बड़ा शौक था।

(३) **विवाह:**-१५ वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर सन् १५८५ ई० में सलीम का विवाह आमेर के राजा भगवानदास की कन्या मानबाई के साथ हो गया। उससे एक पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्र का नाम खुसरो रक्खा गया। इस विवाह के अलावा जहाँगीर ने अन्य अनेक स्त्रियों से भी विवाह किया था।

रानी जोधाबाई से राजकुमार खुर्रम तथा 'साहिबे कमाल' से राजकुमार परवेज उत्पन्न हुये थे।

(४) सलीम का विद्रोह:—युवावस्था प्राप्त होने पर अपने पिता के जीवन काल में ही सलीम बादशाह बनने की इच्छा करने लगा। अकबर दक्षिण विजय के लिए गया हुआ था। अतः सलीम ने सम्राट की अनुपस्थिति में विद्रोह कर दिया और इलाहाबाद में अपना स्वतन्त्र दरबार करने लगा। उसने अपने नाम की मुद्रायें भी ढलवानी शुरू कर दी। अपने सहायकों को उसने बड़ी-बड़ी जागीरें तथा सम्मानित पद देने आरम्भ कर दिये। जब अकबर को इन सब बातों की सूचना मिली तो उसने शीघ्र ही उत्तर की ओर प्रस्थान किया। उसने अब्दुलफजल को भी अपनी सहायता के लिये दक्षिण से बुलवाया। किन्तु सलीम ने मार्ग में ही उसे वीरसिंह बुन्देला के हाथों मरवा दिया। इससे अकबर को बड़ा दुख हुआ और उसने सलीम को दण्ड देने का निश्चय किया। किन्तु अपनी माता के बीमार पड़ जाने के कारण वह ऐसा न कर सका। इसके पश्चात् अकबर ने सलीम को खूब डाट फटकार कर क्षमा कर दिया क्योंकि अब सम्राट के अन्तिम दिन निकट आ रहे थे।

(५) सलीम के विरुद्ध षडयन्त्र:—सम्राट के अन्तिम दिनों में राजा मानसिंह तथा अजीज कोका ने मिलकर सलीम को उत्तराधिकार से वंचित रखने लिये तथा। उसके स्थान पर उसके पुत्र खुसरो को सिंहासन पर बिठाने के लिये षड़यन्त्र रचा खुसरो अजीज कोका का दामाद और राजा मानसिंह का भानजा था। अतः इन दोनों दरबारियों का खुसरो को शासक बनाने में अपना व्यक्तिगत स्वार्थ था। परन्तु दूसरे दल के सरदारों के विरोध के कारण यह षड़यन्त्र सफल न हो सका। दूसरी ओर मरते समय सम्राट अकबर ने सलीम को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

(६) सलीम का सिंहासनारोहण:—२४ अक्तूबर सन् १६०५ ई० को २६ वर्ष की अवस्था में सलीम जहाँगीर के नाम से राज सिंहासन पर बैठा।

## जहांगीर का शासन काल (१६०५ से १६२७ तक)

जहांगीर की नीति तथा दरबारियों से सम्बन्ध:—गद्दी पर बैठने के पश्चात् जहांगीर ने अपने पिता की उदार सुलहकुल नीति का अनुसरण किया। उसने हिन्दुओं तथा मुसलमानों, मित्रों तथा शत्रुओं सभी को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। जनता को खुश करने के लिए उसने बहुत से कर उठा लिये। प्रमुख अमीरों को उसने ऊँचे ऊँचे पद दिये। मानसिंह एवं अजीज कोका जैसे व्यक्तियों को भी जिन्होंने उसके विरुद्ध षड़यन्त्र रचा था, उसने क्षमा कर दिया। अपनी न्यायप्रियता प्रदर्शित करने के लिये बादशाह ने अपने महल के बाहर एक सोने की जंजीर लटकवा दी और उसमें एक घंटी बंधवा दी जिससे कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी जजीर खींचकर बादशाह के सम्मुख अपनी फरियाद रख सके और न्याय पा सके।

## शासन काल की प्रमुख घटनायें

(१) **खुसरो का विद्रोह**:—जहाँगीर का बड़ा लड़का खुसरो बड़ा ही होनहार रूपवान, बलवान, चरित्रवान एवं लोकप्रिय शहज़ादा था। यह राजा मानसिंह का भानजा तथा अजीज कोका का दामाद था। अतः इन दोनों सरदारों ने जहाँगीर को शासनाधिकार से वंचित रक्खा, उसके स्थान पर खुसरो को बादशाह बनाने के लिए षड़यन्त्र रचा था, परन्तु उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता न मिल सकी थी। अतः जब जहाँगीर तख्त पर बैठा तो उसने खुसरो को आगरा के किले में कैद कर लिया। परन्तु वह वहाँ से अपने दादा अकबर का मकबरा देखने के बहाने किले से भाग निकला और लाहौर पहुंचकर सिक्खों के 'गुरु 'अर्जुनसिंह" से आशीर्वाद प्राप्त किया और विद्रोह कर दिया। उसने लाहौर का घेरा डाल दिया और नगर का एक द्वार भी जला दिया। परन्तु लाहौर के गवर्नर दिलावर खाँ ने उसे लाहौर नगर में प्रवेश न करने दिया। उसी समय जहांगीर के आने की सूचना पाकर वह उत्तर पश्चिम की ओर भाग गया। जहाँगीर ने उसका पीछा किया और युद्ध में हराकर उसे अन्धा कर दिया और कैदखाने में डाल दिया। कुछ समय पश्चात् पुत्र-प्रेम से विह्वल होकर जहाँगीर ने उसकी आँखों का इलाज कराकर उसे बिल्कुल ठीक करा दिया। सन् १६२२ ई० में शहज़ादा खुर्रम ने षड़यन्त्र द्वारा उसका काम तमाम करा दिया।

(२) **जहाँगीर की विजय :—**

(क) **बंगाल का विद्रोह**:—सर्वप्रथम जहाँगीर को बंगाल के सूबे में अफगानों के विद्रोह को दबाना पड़ा जो उस्मान खाँ के नेतृत्व में हुआ था। उस्मान खाँ युद्ध करते हुए रण क्षेत्र में मारा गया, परन्तु अफगानों के साथ जहाँगीर ने उदारता का व्यवहार करके उन्हें अपना मित्र बना लिया।

(ख) **मेवाड़ विजय**— अकबर ने अपनी विशाल सेना की सहायता से मेवाड़ पर तो अपनी पताका फहरादी थी परन्तु वह महाराणा प्रतापसिंह को अपनी आधीनता स्वीकार न करा सका था। महाराणा प्रताप की मृत्यु के उपरान्त उसके लड़के **अमरसिंह** ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध जारी रक्खा। आरम्भ में तो जहाँगीर को अमर सिंह के विरुद्ध सफलता न मिल सकी, परन्तु अन्त में शहजाहा खुर्रम के मेवाड़ में पहुँच जाने के कारण अमरसिंह को सन्धि करनी पड़ी। जहांगीर ने चित्तौड़गढ़ का किला अमरसिंह को वापिस कर दिया परन्तु उसे उसकी मरम्मत कराने का अधिकार न मिला। राणाअमर सिंह के पुत्र कर्णसिंह को जहाँगीर ने दरबार में पांच हजारी के मनसब का ओहदा दिया। यही नहीं, बल्कि इस विजय की खुशी में जहांगीर ने लाल किले में झरोखे के नीचे राणा अमरसिंह तथा कर्णसिंह की पूरे साइज की मूर्तियाँ हाथियों पर स्थापित करा दीं।

(१) **अहमदनगर की विजय**:—इसके पश्चात् जहाँगीर ने दक्षिण भारत की ओर ध्यान दिया। दक्षिण भारत में अहमद राज्य उसके

साम्राज्य से मिला हुआ था जो कि अभी तक स्वतन्त्र था। वहाँ पर "मलिक अम्बर" नामक व्यक्ति राज्य कर रहा था। उसमें उच्च कोटि के सैनिक तथा प्रशासकीय गुण थे। आरम्भ में शहजादा परवेज को मुगल सेना के साथ भेजा गया परन्तु उसे सफलता न मिल सकी। अन्त में शहजादा खुर्रम को भेजा गया। उसने मलिक अम्बर को दो बार युद्ध में पराजित किया। इससे अहमदनगर राज्य के अधिकतर भाग पर मुगलों का अधिकार हो गया परन्तु मलिक अम्बर जब तक जीवित रहा वह अपने राज्य की स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करता रहा। जहांगीर ने खुर्रम की सफलता पर प्रसन्न होकर उसे शाहजहां की उपाधि प्रदान की।

(घ) **अन्य विजयें**:—अहमदनगर की विजय के पश्चात् जहांगीर न कांगड़ा पर विजय प्राप्त की। इसके उपरांत काश्मीर के गवर्नर दिलावर के द्वारा जहांगीर ने "किस्तवार" पर भी अपना आधिपत्य जमा लिया।

## अन्य घटनायें

(१) नूरजहां से शादी।
(२) नूरजहां का जहाँगीर की नीति पर प्रभाव।
(३) शहजादा खुर्रम का विद्रोह।
(४) महाबत खां का विद्रोह।
(५) कन्धार का हाथ से निकलना।
(६) जहाँगीर की मृत्यु तथा उत्तराधिकार के लिये युद्ध।

उपरोक्त सभी घटनाओं के लिये प्रश्न २ का उत्तर पढ़िये।

## जहांगीर का चरित्र

जहाँगीर के चरित्र तथा व्यक्तित्व के विषय में इतिहासकारों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। उसके चरित्र का अध्ययन करने पर हमें निम्नलिखित विशेषतायें परिलक्षित होती हैं।

(१) **विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण**:—यूरोपीय विद्वानों ने जहांगीर को क्रूर, निर्दयी, दुष्ट और विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण कहा है। डा० विन्सेन्ट स्मिथ ने जहांगीर के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उसे "कोमलता तथा क्रूरता, न्यायप्रियता तथा भक्कीपन, शिष्टता तथा बर्बरता और बुद्धिमत्ता तथा लड़कपन का प्रबल सम्मिश्रण" बतलाया है। परन्तु इस प्रकार के कथनों में वास्तविकता का अभाव है। उसके चरित्र का अध्ययन करने पर हम इस नतीजे पर पहुंचे कि यद्यपि कभी कभी दण्ड देने में वह बड़ा कठोर हो जाता था और व्यर्थ में रक्तपात कर बैठता था लेकिन ये बातें क्षणिक आवेश की होती थीं। उसे खूनखराबी का शौक नहीं था। वह तो स्वभाव से बड़ा ही उदार और दानशील था।

(२) **साहित्य-प्रेम** :—जहांगीर साहित्य-प्रेमी था। तुर्की तथा फारसी दोनों भाषाओं का वह बड़ा अच्छा ज्ञाता था। उसने अपनी आत्मकथा स्वयं लिखी थी

जो "तुजके जहाँगीरी" के नाम से प्रसिद्ध है। उसे कविता करने तथा गजले लिखने का भी शौक था। परन्तु मद्यपान ने उसका काव्य प्रतिभा को कुण्ठित कर दिया था। वह विद्वानों तथा साहित्यकारों का आश्रयदाता था।

**(३) कला-प्रेम:**—जहांगीर को चित्रकला से बड़ा प्रेम था। उसकी क्षत्रछाया में इस कला की बड़ी उन्नति हुई। उसके शासन काल में बहुत सी इमारतों का भी निर्माण हुआ जिसमें एतमातुद्दोला का मकबरा दर्शनीय है।

उसका प्रकृति प्रेम भी वर्णनीय है। वह यात्रा के कष्ट को सहन करके बसन्त ऋतु में काश्मीर का प्राकृतिक सौंदर्य देखने जाया करता था।

उसे बाग लगवाने का भी बड़ा शौक था। काश्मीर तथा लाहौर में उसने कई बाग लगवाये थे।

**(४) धार्मिक नीति:**—जहाँगीर में धार्मिक कट्टरता की भावना न थी। सभी धर्मों के साथ उसका सहिष्णुता का व्यवहार रहता था। वह अपने न्याय के लिये भी प्रसिद्ध था। न्याय के सम्मुख छोटे बड़े सब बराबर थे और धर्म के नाम पर कोई पक्षपात नहीं होता था।

**(५) शासक के रूप में:**—जहां तक शासन प्रबन्ध का प्रश्न है, जहाँगीर ने उसी शासन पद्धति को अपनाया जो उसके पिता अकबर ने स्थापित की थी। उसका शासन बड़ा उदार था। न्यायप्रियता उसमें उच्च कोटि की थी। जब तक उसका स्वास्थ्य ठीक रहा, उसने अपने अफसरों को प्रजा पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करने दिया।

**(६) राजनीतिज्ञ के रूप में:**—राजनैतिक मामलों में बड़ा ही सरल तथा सीधा साधा व्यक्ति था। उसमें दूरदर्शिता एवं चालाकी या धोकेबाजी न थी। न उसमें महत्वाकाँक्षा थी और न अधिकार लिप्सा ही। वह सबको प्रसन्न रखने का प्रयास करता था।

**(७) सैनिक के रूप में:**—जहाँ तक एक अच्छे सैनिक के गुणों का प्रश्न है, हम यह कह सकते हैं कि न तो जहाँगीर महत्वाकांक्षी ही था और न महान विजेता ही। मेवाड़ तथा अहमदनगर के अतिरिक्त उसने और कोई महत्वपूर्ण विजय न की। कन्धार उसके हाथ से निकल गया जिससे मुगलों की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा। परन्तु अपने पिता के विशाल साम्राज्य को उसने सुरक्षित अवश्य रक्खा।

**(८) चरित्र की कमजोरियां:**—जहाँगीर के चरित्र में कुछ खराबियां भी थीं जिनका साम्राज्य पर अच्छा प्रभाव न पड़ा। उसे शराब पीने की बुरी लत थी। शराब के साथ साथ वह अफीम भी खाता था। नूरजहाँ से शादी कर लेने के उपरान्त उसने धीरे २ शासन प्रबन्ध से अपना हाथ खींचना शुरू कर दिया और अन्त में सभी अधिकार उसको सौंप दिये। वह सदैव शराब के नशे में चूर पड़ा रहता था और राज्य में क्या घटनायें घट रहीं हैं, उनकी उसे परवाह न थी। वह तो यह कहा करता था कि "मैंने अपना राज्य अपनी प्यारी बेगम के हाथ दो प्याले शराब

तथा एक प्लेट शोरवे के लिये बेच दिया है।" जहांगीर की इस ढील एवं गलत नीति का साम्राज्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। कन्धार हाथ से निकल गया, खुर्रम ने विद्रोह किया और महावत खाँ ने भी विद्रोह करके स्वयं जहांगीर को बन्दी बना लिया था।

जफर खां ने उसके विषय में लिखा है, "जहांगीर एक महान् शासक और अत्यधिक शक्तिशाली था। यदि वह "नूरजहां दल" के प्रभाव में न आया होता तो अपने पिता के समान महान् शासक बन जाता।"

---

**प्रश्न २—नूरजहाँ के जीवन का संक्षेप में वर्णन कीजिये। जहाँगीर के समय में उसका तत्कालीन राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा ?**

**Q. 2. Describe in brief the early life of Nur-Jahan. Estimate the significance of the palitical influence exercised by her in the affairs of her time.**

**(१) नूरजहाँ का प्रारम्भिक जीवन:**—जहांगीर के राज्य काल में नूरजहाँ की कहानी एक बड़ी मनोरंजक कहानी है। इस असाधारण रमणी के समान साहस और राजनीतिज्ञता का परिचय संसार की बहुत कम स्त्रियों ने दिया है। आधुनिक खोज के अनुसार उसके प्रारम्भिक जीवन का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है। उसका पिता **मिर्जा गयासबेग** तेहरान का निवासी था। गरीबी के कारण गयासबेग ने हिन्दुस्तान में आने का विचार किया और जीविका की खोज में अपनी गर्भवती स्त्री के साथ हिन्दुस्तान की ओर चला। जब वे **कन्धार** पहुंचे तो उसकी स्त्री ने एक कन्या को जन्म दिया जिसका नाम **मेहरुन्निसा** रक्खा गया। आपत्तियों से आहत गयास की मुसीबतों में इस नवजात कन्या ने और भी वृद्धि कर दी। इस परिवार की दुर्दशा पर तरस खाकर एक धनी व्यापारी **मलिक मसऊद** ने जिसके साथ वे हिन्दुस्तान आ रहे थे, इनकी सहायता की। इस व्यापारी का मुगल दरबार में कुछ प्रभाव था। उसने अकबर बादशाह से परिचय कराके गयास को एक अच्छी नौकरी दिला दी। अपनी योग्यता से उन्नति करता हुआ वह १५९५ से तीन सौ का मनसबदार हो गया और उसे काबुल का दीवान बना दिया गया। नौकरी में गयास की प्रतिभा खूब चमकी।

**(२) अलीकुली खाँ के साथ विवाह :**—मेहरुन्निसा सुन्दरता में अद्वितीय थी। वह अपनी माता के साथ महल में जाया करती थी। सलीम उसके रूप पर विमुग्ध हो गया था और उसके साथ अपना विवाह करना चाहता था, परन्तु अकबर इस विवाह के पक्ष में न था। अतएव सम्राट की इच्छानुसार १७ वर्ष की अवस्था में मेहरुन्निसा का विवाह अलीकुली के साथ कर दिया गया। अलीकुली खाँ उच्च वंश का व्यक्ति न था। उसका जन्म ईरान में हुआ था। भाग्य के परिवर्तन ने उसे

भारत में शरण लेने के लिये वाध्य किया और यहाँ उसको एक सैनिक पद मिल गया था। अलीकुली खाँ को एक शेर का शिकार करने के उपलक्ष में शहज़ादा सलीम ने प्रसन्न होकर उसको **शेर अफगन** की उपाधि प्रदान की। वाद में जब जहाँगीर गद्दी पर बैठा, शेर अफगन एक जागीरदार के रूप में बंगाल भेज दिया गया।

**(३) शेर अफगन का वध:**—इस समय बंगाल में असन्तोष फैला हुआ था। अफगान जिन्हें अपनी खोई हुई राजशक्ति फिर प्राप्त करने की आशा थी, चारों ओर से इकट्ठा होकर सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने लगे थे। बादशाह को सूचना मिली कि शेर अफगन की प्रवृत्ति भी विद्रोह की ओर है। अतः उसने सूबेदार **कुतुबुद्दीन** को शेर अफगन को दरबार में भेज देने की आज्ञा भेजी। सूबेदार ने मूर्खता-पूर्वक उसे कैद करने का प्रयत्न किया। इस अपमान से शेर अफगन का खून उबल पड़ा और कुतुबुद्दीन के आदमियों से घिरे होने पर भी उसने उसे अपनी तलवार से जख्मी कर दिया। इस पर सूबेदार के आदमियों ने शेर अफगन की जीवन लीला समाप्त कर दी।

**(४) नूरजहाँ के साथ जहांगीर का विवाह:**—शेर अफगान के वध के पश्चात् मेहरुन्निसा अपनी पुत्री के साथ दरबार में भेज दी गई। वहाँ वह **राजमाता सुल्ताना सलीमा बेगम** के सुपुर्द कर दी गई। चार वर्ष पश्चात् सन् १६११ में मीना बाजार में जहाँगीर उसके रूप को देखकर मोहित हो गया। काल की गति के साथ उसका शोक भी कम होता गया और वह जहाँगीर के साथ शादी करने को तैयार हो गई। मई के अन्त में नियमानुसार उसका विवाह हो गया और वह नूरजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

**(५) क्या शेर अफगन के वध में जहांगीर का हाथ था**—यह एक बड़ा विवाद-ग्रस्त प्रश्न है कि शेर अफगन की हत्या में जहाँगीर का हाथ था या नहीं। **डा० बैनीप्रसाद** ने इस हत्या की कहानी को विदेशी इतिहास लेखकों के मस्तिष्क की उपज बतलाया है और मत के अनुमोदन में निम्नलिखित तर्क उपस्थित किये हैं।

(क) तत्कालीन किसी भी इतिहासकार ने जहांगीर पर शेर अफगन की हत्या करने का दोष नहीं लगाया है और न विदेशी यात्री ही इसका समर्थन करते हैं जो राज-परिवार की अप्रिय वातों को लिपिबद्ध करने के लिये सदा तैयार रहते थे। कैप्टिन हाकिन्स, सर टामसरो और विलियम फिन्च इत्यादि विदेशी यात्री जहांगीर के दरबार में आये, परन्तु शेरअफगन के वध के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है।

(ख) दूसरे नूरजहा स्वयं इतने उच्च चरित्र की स्त्री थी कि अगर उसको जरा भी शेरअफगन के वध में जहाँगीर के हाथ का सन्देह हो जाता तो वह कभी भी बाद में जहाँगीर से शादी करने को तैयार न होती।

(ग) यह सन्देह बिलकुल निर्मूल है कि मेहरुन्निसा के प्राप्त करने के लिए जहाँगीर ने कुतुबुद्दीन को बंगाल भेजा था। वास्तव में यह बात है कि जहाँगीर

तथा राजा मानसिंह के सम्बन्ध अच्छे न थे क्योंकि मानसिंह खुसरो के समर्थक थे। अतएव खुसरो के विद्रोह के असफल हो जाने पर मानसिंह को बंगाल से हटाना और अपने विश्वासपात्र कुतुबुद्दीन को रखना बादशाह के लिये स्वाभाविक ही था।

(घ) यह सम्भव है कि शेरअफगन पर लगाया गया विद्रोह का लाँछन ठीक न हो परन्तु इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि बंगाल षड्यन्त्र, विद्रोह तथा राजद्रोह का केन्द्र था। ऐसी दशा में साहसी शेर अफगन पर जिसने एक बार सलीम का साथ छोड़ दिया था, कड़ी दृष्टि रखना और इस दूषित वायुमंडल से इसे हटाना आवश्यक था। परन्तु कुतुबुद्दीन जिस तरह शेर अफगन को गिरफ्तार करना चाहता था वह उसकी गलती थी। परन्तु इस गलती के लिए जहांगीर को दोषित नहीं ठहराया जा सकता। उसने कुतुबुद्दीन को सिर्फ यह लिखा था कि शेर अफगन को दरबार में भेज दो। गिरफ्तार करके शेर अफगन को भेजने का प्रयास कुतुबुद्दीन का बिलकुल गलत था। इसी प्रयास ने इतना बड़ा झगड़ा खड़ा कर दिया कि दोनों कुतुबद्दीन और शेर अफगन एक दूसरे को मारने के प्रयत्न में मर गये।

परन्तु डाक्टर ईश्वरी प्रसाद, बेनी प्रसाद के विचारों से सहमत नहीं हैं। उनको अवश्य सम्राट जहाँगीर पर सन्देह होता है। अतएव उन्होंने यह तर्क उपस्थित किये हैं:—

(१) जहांगीर का अपने विवाह के सम्बन्ध में मौन रहना, जो उसके जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी, अवश्य सन्देह उत्पन्न करती है।

(२) यह बात समझ में नहीं आती कि मेहरुन्निसा दरबार में क्यों भेजी गई जब उसका पिता राजधानी में रहता था और राज्य का एक बड़ा कर्मचारी था। उसकी राजभक्ति में किसी को सन्देह नहीं था और वह अपनी संकटग्रस्त पुत्री को निःसन्देह शरण दे सकता था। सम्राट ने इस विधवा और उसकी पुत्री को शाही हरम में राजमाता के सुपुर्द रखने का असाधारण कार्य क्यों किया? इसका सबसे अधिक संभावित कारण यही जान पड़ता है कि जहाँगीर उससे प्रेम करता था।

अब प्रश्न यह उठता है कि जहाँगीर के हाथ में नूरजहाँ आ जाने पर भी चार वर्ष पश्चात् उसने विवाह क्यों किया? इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि पति की दयनीय मृत्यु के बाद नूरजहाँ के दुखी हृदय में कम से कम कुछ समय तक प्रेम और आनन्द के विचार नहीं आ सकते थे। दूसरा यह कि शायद बादशाह नूरजहाँ से जल्द ही विवाह करके शेर अफगन की मृत्यु के विषय में सन्देह उत्पन्न कराना नहीं चाहता था। डच लेखक 'डी लेट' लिखता है जब नूरजहाँ कुआंरी थी तभी जहाँगीर उससे प्रेम करता था। किन्तु वह शेर अफगन की वाग्दत्ता हो चुकी थी, इसलिए उससे विवाह करने की अकबर ने आज्ञा नहीं दी। इन सब बातों पर ध्यान देने से शेर अफगन की मृत्यु में जहाँगीर का हाथ होने का सन्देह होता है। किन्तु इस बात का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है।

(५) नूरजहां का चरित्र—जहांगीर के साथ विवाह होने के समय नूरजहां करीब ३५ वर्ष की थी, किन्तु इस अवस्था में भी वह अपूर्व सुन्दरी थी। उसकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वह जटिल समस्याओं को बिना किसी कठिनाई के समझ जाती थी। उसे कविता का बड़ा शौक था और वह स्वयं बहुत अच्छी कविता करती थी। उसमें सौंदर्य के प्रति स्वाभाविक प्रेम था। उसने मुगल दरबार की शोभा और सुन्दरता को बहुत बढ़ा दिया। वस्त्राभूषण के लिए उसकी रुचि आदर्श मानी जाती थी। उसने कई नये ढंग के आभूषण निकाले।

नूरजहां में पर्याप्त शारीरिक बल तथा साहस था। वह जहांगीर के साथ शिकार खेलने जाया करती थी। उसने कई बार बाघ का शिकार किया। वह विपत्ति में कभी अपने कर्तव्य को नहीं भूलती थी। संकटमय परिस्थिति में वह साहस तथा अपनी शक्तियों का अच्छा परिचय देती। जैसा कि महाबत खां द्वारा जहांगीर के कैद किये जाने पर उसका साहस अच्छी तरह प्रकट हुआ था। घमासान युद्ध में उसे हाथी पर बैठकर शत्रुओं पर तीरों की बौछार करते देखकर अनुभवी सेनापति तथा सैनिक भी चकित रह जाते थे। वह बड़ी परिश्रमी थी और राज्य प्रबन्ध के सब कार्यों की स्वयं देखभाल करती थी। परन्तु राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के लिये वह कभी कभी षड़यन्त्र भी किया करती थी। उसमें उदारता, क्षमाशीलता और दया की कमी न थी। वह दीन दुखियों की बहुत सहायता करती थी और अनाथ मुसलमान लड़कियों के विवाह के लिये धन दिया करती थी। अपने पिता तथा भाई पर उसका बहुत प्रेम था। उसके प्रभाव से वे राज्य के उच्चतम पदों तक पहुँच गए थे। बादशाह को भी सच्चे हृदय से प्रेम करती थी और उसके लिये अपने प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार रहती थी। बादशाह पर उसका प्रभाव असीम था जो उसके हाथ का खिलौना हो गया था। जब तक उसके हाथों में राजसत्ता थी उसने सभी चीजों पर अपना दृढ़ अनुशासन रक्खा और सत्ता हस्तांतरित होने पर वह एक वैरागिन की भांति सभी वस्तुओं से पूर्णतः उदासीन भी हो गई।

## नूरजहां का राजनैतिक प्रभाव—

(क) नूरजहां का उत्कर्ष काल—अपूर्व रूपवती, गुणवती, साहसी तथा शक्तिमान् जीवन साथी को पाकर जहांगीर विलासी और अकर्मण्य सा हो गया। अतएव ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया जहांगीर की विलासप्रियता और राज्य के कार्यों की ओर से उदासीनता बढ़ती गई, और उसी अनुपात में नूरजहां की शक्ति और प्रभुत्व बढ़ता गया। नूरजहां के प्रभुत्व के प्रथम दस वर्ष को उसके उत्कर्ष का काल माना जाता है। इस काल में उसे अपने पिता एतमादुद्दौला का सहयोग और परामर्श प्राप्त था जिसने मुगल दरबार की सेवा में ही अपने बाल सफेद किए थे। नूरजहां को अपने इस कार्य में उसकी बुद्धिमती तथा दूरदर्शी माता अस्मत बेगम की

भी सहायता मिली। उसके इन बूढ़े माता पिता ने अपनी योग्यता तथा अनुभव से अपनी पुत्री की सहायता की और उसे कभी पथ-भ्रष्ट न होने दिया। ये दोनों नूरजहां की महत्वाकांक्षाओं पर भी नियन्त्रण रखते थे। साथ ही उसके भाई आसफखां ने भी उसकी सफलता में काफी सहायता पहुँचाई। जब आसफखाँ की पुत्री अर्जमन्द बानू बेगम (मुमताज महल) का विवाह शाहजादा खुर्रम के साथ हो गया तो नूरजहां को खुर्रम का भी सहयोग मिलने लगा। इस प्रकार इन चार व्यक्तियों ने नूरजहां के कार्यों में हाथ बटाकर उसकी सहायता की और समस्त देश में सुख, शान्ति और सुव्यवस्था कायम रक्खी। वास्तव में, यह नूरजहां के चरम उत्कर्ष का काल था। वह प्रायः झरोखा में दर्शन देती और राज्य के उच्च अधिकारियों को आदेश भी दिया करती थी। प्रायः राज्यादेश भी उसके नाम से निकला करते थे और उसके नाम पर सिक्के भी ढाले जाते थे। उसके चारों समर्थक, जो राज्य के स्तम्भ बने हुये थे, सरकारी नौकरियों का वितरण किया करते थे। परन्तु सारी सत्ता अपने हाथों में आने पर भी नूरजहां ने न तो कभी जहाँगीर को अप्रसन्न ही किया और न उसके ऊपर अनुशासन करने का ही प्रयत्न किया। यही कारण है कि नूरजहाँ ने कभी जहाँगीर का विश्वास न खोया।

(ख) अशान्ति और कलह का काल—नूरजहां के प्रभुत्व का दूसरा काल सन् १६२२ से १६२७ ई० तक चलता है जिसमें घोर अशान्ति और कलह का बोलवाला था। इस काल में नूरजहाँ के माता-पिता का देहान्त हो गया था और नूरजहाँ तथा खुर्रम में संघर्ष प्रारम्भ हो गया था। प्रारम्भ से ही नूरजहाँ अपने दल के व्यक्तियों पर विशेष कृपा और उदारता दिखलाती आ रही था जिससे पुराने दरबारियों और अमीरों में घोर असन्तोष था। इस असन्तुष्ट दल का नेता महावत खाँ था। महावत खाँ जहाँगीर को नूरजहाँ के चगुल से मुक्त कराना चाहता था और उसने सम्राट को यह परामर्श भी दिया था, परन्तु जहाँगीर ने इसके लिये कोई भी प्रयत्न न किया। फलतः महावत खाँ ने खुसरो का पक्ष लेना शुरू किया और उसे राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का प्रयत्न करने लगा। उधर नूरजहाँ खुर्रम के उत्तराधिकारी का समर्थन कर रही थी। सन् १६१६ ई० में षड़यन्त्र द्वारा खुसरो आसफअली के नियन्त्रण में दे दिया गया और अन्त में खुर्रम के सुपुर्द कर दिया गया। खुर्रम ने जेल में ही १६२२ ई० में अपने भाई और प्रतिद्वन्द्वी का अन्त करा दिया। परन्तु इस राजनैतिक हत्या से महावत के विरोध का अन्त नहीं हुआ। दूसरी ओर नूरजहां और खुर्रम में भी झगड़ा हो गया। इसका प्रधान कारण यह था कि खुर्रम नूरजहां के अनियन्त्रित अधिकार तथा नियन्त्रण से अलग रहना चाहता था, क्योंकि वह स्वयं प्रतिभाशाली और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। फलतः स्वार्थों के इस संघर्ष में नूरजहां के लिये दो मार्ग थे—या तो वह स्वयं राजनीति से अलग हो जाय, या खुर्रम को उत्तराधिकार से वंचित करदे। नूरजहाँ ने दूसरा मार्ग अपनाया और खुर्रम को उत्तराधिकार से वंचित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया। उसने

शेर अफगन से उत्पन्न अपनी पुत्री 'लाडली बेगम' का विवाह जहांगीर के सबसे छोटे पुत्र शहरयार से कर दिया और अब उसके ही उत्तराधिकार की चेष्टा करने लगी।

(१) खुर्रम का विद्रोह—नूरजहां और खुर्रम के स्वार्थों के संघर्ष ने खुर्रम को विद्रोह की प्रेरणा प्रदान की। नूरजहाँ खुर्रम को राजधानी से दूर रखना चाहती थी। अतः जब खुर्रम कन्धार पर आक्रमण करने वाली सेना का सेनापति बनाया गया तो खुर्रम ने वहाँ जाने से इन्कार कर दिया। जब खुर्रम को दक्षिण से अपनी सारी सेना वापिस दरबार में भेजने का आदेश मिला तो उसने इस आदेश का भी पालन न किया और जब धौलपुर की जागीर जिसे खुर्रम चाहता था शहरयार को दे दी गई तो खुर्रम ने विद्रोह कर दिया जो बड़ी कठिनाई के साथ शान्त हुआ। खुर्रम के इस विद्रोह का उत्तरदायित्व बहुत कुछ अंशों में नूरजहाँ पर ही है।

(२) महावत खाँ का विद्रोह—खुसरो की मृत्यु और खुर्रम की तौहीन होने पर नूरजहां के हृदय में अपने अयोग्य दामाद शहरयार के लिये राजगद्दी प्राप्त करने की आशा फिर प्रबल हुई। उसका एक प्रतिद्वन्द्वी परवेज था जिसका सहायक साम्राज्य का सबसे वीर सेनापति महावत खां था। प्रारम्भ से ही महावत खाँ नूरजहाँ के राजनैतिक दल का घोर विरोधी था। खुर्रम का विद्रोह शान्त हो जाने पर जब महावत खां की सेवाओं की आवश्यकता न रही तो नूरजहाँ ने उसकी शक्ति तथा प्रभाव छीन लेने की इच्छा से शाही फौज का सेनापतित्व छोड़कर सूबेदार के रूप में बंगाल जाने का हुक्म दिया, जिसका उसे पालन करना पड़ा।

नूरजहाँ इतने से ही संतुष्ट न हुई। उसने महावत खां पर बंगाल में राज्य का रुपया हजम कर जाने का अपराध लगाया और उससे जवाब तलब किया। उस पर दूसरा एक बड़ा ही अन्यायपूर्ण दोष यह लगाया कि उसने बादशाह की स्वीकृति के बिना ही ख्वाजा उमर नक्शबन्दी के पुत्र के साथ अपनी पुत्री का विवाह कैसे पक्का कर लिया। उसके भावी दामाद का बड़ा अपमान किया गया। इसके बाद महावत खां ने उसे जो सम्पत्ति दी थी, उने भी जब्त कर ली। अब महावत खाँ क्षुब्ध हो उठा और बदला लेने की तीव्र अभिलाषा उसमें जाग्रत हुई। अब वह करीब पाँच हजार राजपूतों के साथ दरबार की ओर चल पड़ा और अवसर पाकर उसने लाहौर से काबुल जाते समय जहाँगीर को झेलम नदी के किनारे पर कैद कर लिया। परन्तु अपनी योग्यता, धैर्य, साहस और कूटनीति से नूरजहाँ ने बड़ी मुसीबतों के पश्चात् जहांगीर को महावत खां के हाथों से छुटकारा दिला दिया और महावत खां को विवश होकर दक्षिण की ओर जाना पड़ा। इस प्रकार महावत खां का विद्रोह भी नूरजहाँ और उसके परस्पर संघर्षों का ही फल था।

(३) कन्धार का साम्राज्य से अलग होना—ईरान के शाह अब्बास ने सन् १६२२ में कन्धार पर घेरा डाल दिया। यद्यपि कन्धार के लिए पर्याप्त सेना संगठित हुई, परन्तु नूरजहाँ तथा खुर्रम के पारस्परिक संघर्ष के कारण मुगल शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। इस प्रकार कन्धार मुगल साम्राज्य से सदैव के लिए अलग हो गया।

(४) उत्तराधिकार का युद्ध—जब सन् १६२७ ई० में जहाँगीर की मृत्यु हो गई तो नूरजहाँ ने अपनी सत्ता की स्थिरता के लिए अन्तिम परन्तु असफल प्रयत्न किया। उसने अपने दामाद शहरयार को सम्राट घोषित कर दिया। परन्तु शहरयार के प्रतिद्वन्द्वी खुर्रम को महाबत खां और आसफ खां की सहायता प्राप्त थी। फलतः इस संघर्ष में नूरजहां को झुकना पड़ा। उसका सोलह वर्ष का प्रभुत्व समाप्त हो गया और उसने अठारह वर्षों का अपना शेष जीवन राजनीति से अलग शान्तिपूर्वक व्यतीत किया। खुर्रम ने अपनी विजयोपरान्त उसका सम्मान किया और उसे दो लाख रुपयों की वार्षिक पेन्शन नियत कर दी। सन् १६४५ ई० में उसका स्वर्गवास हो गया।

इस प्रकार, नूरजहाँ का राजनैतिक प्रभाव साम्राज्य के लिए हितकर सिद्ध न हुआ। उसकी सत्ता प्राप्त करने की अभिलाषा सगे सम्बन्धियों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार, राज्य के हितों की उपेक्षा, राजदरबार के षडयन्त्र, कलह और रक्तपात, शाहजहाँ खुसरो की हत्या इत्यादि ऐसे कार्य थे जिनसे मुगल गौरव को धक्का लगा। महाबत खाँ जैसे स्वामि-भक्त सेनापति को उसकी ही नीति के फलस्वरूप विद्रोह करना पड़ा। नूरजहाँ के ही षड़यन्त्रों के कारण कन्धार साम्राज्य से अलग हो गया जिससे विदेशों में मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा।

---

# शाहजहाँ (१६१७-१६८५)

## SHAH JAHAN (1627 To 1685 A. D.)

प्रश्न १—शाहजहाँ के जीवन-चरित्र तथा उसके महत्वपूर्ण कार्यों पर प्रकाश डालिये।

Q. 1. Describe the career and achievements of Shah Jahan.

### प्रारम्भिक जीवन

उत्तर—(१) जन्म :—शाहजहां का प्रारम्भिक नाम खुर्रम था। वह जहाँगीर का तीसरा पुत्र था। उसका जन्म ५ जनवरी १५९२ को लाहौर में मेवाड़ के राजा उदयसिंह की पुत्री "जोधाबाई" के उदर से हुआ था। उसका पालन-पोषण उसकी दादी सुल्ताना बेगम ने किया था। अकबर भी उससे बड़ा प्रेम करता था।

(२) शिक्षा :—राजकुमार खुर्रम की शिक्षा के लिये बड़े योग्य अध्यापकों को रक्खा गया था। थोड़े ही दिनों में उसने तुर्की तथा फारसी दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। बौद्धिक शिक्षा के साथ साथ उसे सैनिक शिक्षा में भी दक्ष बना दिया गया। इस प्रकार वह धनुर्विद्या, घुड़सवारी करना, तलवार चलाना तथा निशाना लगाने में पारंगत हो गया।

(३) उत्थान :—खुर्रम बड़ा ही होनहार था। अतः वह बड़ी जल्दी उन्नति करता गया। १९ वर्ष की अवस्था में ही (१६११ ई०) उसे १०,००० जात तथा ५,००० सवार का मनसब का पद मिल गया था। सन् १६१२ ई० में उसका विवाह आसफ खां की पुत्री "अन्जुमन्द बानू बेगम" के साथ हो गया जो कि आगे चलकर मुमताजमहल के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस विवाह का राजनैतिक महत्व बहुत बड़ा है। इससे खुर्रम को अपने उत्थान में बड़ी सहायता मिली। अब वह नूरजहां के गुट में आ गया और नूरजहां तथा उसका भाई आसफ खां उसे दिन प्रतिदिन ऊंचा उठाने का प्रयत्न करने लगे। सन् १६६४ ई० में खुर्रम ने मेवाड़ के सिसौदिया वंश को नत मस्तक किया। सम्राट इससे बड़ा खुश हुआ और उसे १५००० जात तथा ८००० सवार का मनसब प्रदान किया। अहमदनगर राज्य के शासक मलिक अम्बर को पराजित करने तथा उसे सन्धि करने पर विवश करने के उपलक्ष में जहाँगीर ने उसे शाहजहाँ की उपाधि से विभूषित किया और अब उसका मनसब २०,००० जात और १०,००० सवार का हो गया। सन् १६१८ ई० में वह गुजरात का

शासक बना दिया गया। कुछ दिनों पश्चात् दक्षिण की दशा फिर बिगड़ने लगी और मलिक अम्बर ने अपने खोये हुए राज्य पर फिर से अधिकार जमा लिया। अतः सन् १६२१ ई० में शाहजहां ने फिर मलिक अम्बर को सन्धि करने पर विवश किया। अब शाहजहां अपनी उन्नति के चरम उत्कर्ष पर पहुंच गया था। राज्य में उसे सबसे ऊँचा पद प्राप्त था और मुगल साम्राज्य की सबसे बड़ी सेना का वह सेनापति था।

(४) शाहजहां का विद्रोह :—शाहजहां बहुत ही महत्वाकाँक्षी व्यक्ति था और अपने भाइयों में सबसे अधिक योग्य था। ज्यों ज्यों जहांगीर का स्वास्थ गिरने लगा, उत्तराधिकार का प्रश्न जटिल होता चला गया। ऐसे समय में शाहजहां राजधानी से दूर नहीं रखना चाहता था। उधर नूरजहाँ अपने दामाद शहरयार (जहांगीर का सबसे छोटा पुत्र) को सम्राट बनाने पर उतारू थी। ऐसी विकट परिस्थिति में सन् १६२२ ई० में सम्राट ने शाहजहां को फारस के शाह के विरुद्ध कन्धार पर पुनः मुगल सत्ता स्थापित करने का आदेश दिया। नूरजहाँ के कुचक्रों से सशंकित होकर उसने कन्धार जाने से इन्कार कर दिया। नूरजहां ने उसके विरुद्ध जहांगीर के खूब कान भरे। अतः विवश होकर शाहजहां ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। परन्तु मुगल सेना ने उसे कई स्थानों पर बुरी तरह से पराजित किया। इसलिये विवश होकर उसने अपने पिता के सम्मुख आत्म-सर्पण कर दिया। नूरजहाँ ने शाहजहां को सम्राट से तुरन्त क्षमा करा दिया क्योंकि अब वह महावत खां तथा परवेज की बढ़ती हुई शक्ति से बड़ी भयभीत हो रही थी।

(५) सिंहासन पर बैठना—सन् १६२७ ई० में जहांगीर परलोक सिधार गया। उस समय शाहजहाँ दक्षिण में था। अतः नूरजहाँ ने तुरन्त अपने दामाद शहरयार को सम्राट घोषित कर दिया और लाहौर पर अधिकार कर लिया। उधर आसफ खाँ ने तुरन्त शाहजहां को दक्षिण से बुला लिया। दोनों पक्षों में राजगद्दी के लिये युद्ध हुआ। शहरयार पराजित हुआ। उसे बन्दी बनाकर अन्धा कर दिया गया। अपने शेष भाइयों को भी शाहजहाँ ने तलवार के घाट उतार दिया। अब वह सन् १६२८ ई० में शासक बन बैठा।

## शाहजहां के शासन काल की मुख्य घटनायें

(१) खानजहां लोदी का विद्रोह (१६२८)—खानजहां लोदी दक्षिण का प्रधान सेनापति एवं राज्यपाल था। वह अफगान था और मुगलों से उसे स्वाभाविक घृणा थी। अतः अहमदनगर के शासक के साथ मिलकर उसने सन् १६२८ ई० में मुगल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। परिस्थिति की भीषणता को समझकर शाहजहां स्वयं मुगल सेना लेकर इस विद्रोह को दबाने के लिये दक्षिण पहुँचा। भय के कारण खानजहां लोदी एक स्थान से दूसरे स्थान को और सैनिक सहायता के लिये भागने लगा। अन्त में वह बीजापुर के सुल्तान की शरण में पहुँचा। परन्तु कुछ कारणों से

उसे वहाँ से कोई सहायता न मिल सकी। अब खानजहां लोदी बुन्देलखण्ड के सरदारों को विद्रोह के लिये फुसलाने को वहां गया। परन्तु उसके भाग्य ने यहां भी उसका साथ न दिया। बुन्देलखण्ड के सरदारों ने उल्टा उसका विरोध किया और सन् १६३० ई० ने कालिन्जर के किले के निकट वह युद्ध करता हुआ मारा गया। इस प्रकार खानजहां का विद्रोह समाप्त हो गया।

**(२) बुन्देलों का विद्रोह (१६२८)**–दूसरा विद्रोह जुझारसिंह बुन्देला ने किया जो वीरसिंह बुन्देला का पुत्र था। वीरसिंह बुन्देला जहांगीर का परम मित्र था। सन् १६२७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र जुझारसिंह उसकी जागीर का मालिक बना। कुछ समय पश्चात् शाहजहां और जुझारसिंह में अनबन हो गई। अनबन का कारण शाहजहां की यह आज्ञा थी कि जुझारसिंह के पिता ने अनुचित रीति से जो सम्पत्ति प्राप्त की है उसकी जांच की जाय। जुझारसिंह ने इस आज्ञा को अपना अपमान समझा और ओरछा में शाहजहां के खिलाफ विद्रोह कर दिया। शाहजहां ने महावत खां की अध्यक्षता में एक विशाल सेना इस विद्रोह को दबाने के लिये भेजी। युद्ध में जुझारसिंह पराजित हुआ और उसने शाहजहां से क्षमा याचना की। उसे हर्जाने के रूप में एक बड़ी रकम देनी पड़ी। इस प्रकार बुन्देलों का पहला विद्रोह शान्त हो गया।

परन्तु सन् १६३५ ई० में जुझारसिंह ने फिर विद्रोह कर दिया। इस बार शाहजहां ने औरंगजेब को मुगल सेना लेकर भेजा। आतंकित होकर जुझारसिंह दुर्ग छोड़कर अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ भाग खड़ा हुआ। शाही सेना ने उसका पीछा किया। अन्त में उसने गोंड के जंगलों में शरण ली। परन्तु गोंडों ने उसे पकड़ कर उसका वध कर दिया। इस प्रकार बुन्देलखण्ड के सबसे अधिक धन सम्पन्न तथा ऐश्वर्यपूर्ण राजपूत राज्य का अन्त हो गया।

**(३) नौरोज का उत्सव (१६२८ ई०)** :—राजसिंहासन पर बैठने के वर्ष ही शाहजहां ने रज्जब के महीने में नौरोज का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। इस अवसर पर मुमताज महल को ५० लाख, जहांआरा बेगम को २५ लाख, रोशनआरा को ५ लाख और सब राजकुमारों को पाँच पाँच लाख रुपये मिले। आसफ खां का मनसब बढ़ाकर ९००० जात तथा ९००० सवार का कर दिया गया। अन्य सरदारों को भी बहुमूल्य इनाम दिये गये।

**(४) दक्षिण और गुजरात में अकाल (१६३० ई०)**:–सन् १६३० ई० में दक्षिण, गुजरात तक खानदेश के प्रदेशों में भयंकर अकाल पड़ा। हजारों आदमी भूखों मर गये। मिर्जा अमीन कजवीनी, जिसने लोगों की हृदय विदारक दशा को अपनी आँखों से देखा था, लिखता है, "भूख की यन्त्रणा न सह सकने के कारण माँ बेटे का मांस भक्षण कर जाती थी।" योरोपियन विद्वान **पीटर मन्डी** ने लिखा है कि "मुर्दे के मारे सड़कें तथा गलियां बंद हो गई थीं।" इस दुर्भिक्ष के पश्चात भयंकर महामारी फैली जिसने गाँव के गाँव वीरान कर दिये।

बादशाह ने दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता के लिये बुरहानपुर, अहमदनगर और सूरत में लोगों को मुफ्त भोजन बंटवाया। बुरहानपुर और अहमदाबाद में जनता की सहायता के लिये धन बाँटा गया। खालसा जमीन की मालगुजारी में से ७० लाख रुपये माफ कर दिये गये। परन्तु साम्राज्य के सब साधन भूख तथा बीमारी से पीड़ित प्रजा को कोई विशेष लाभ न पहुँचा सके और ये प्रदेश लगभग वीरान एवं नष्ट ही हो गये।

(५) **पुर्तगाल वालों के साथ युद्ध—१६३१ ई०—३२ ई०**—इस भयंकर अकाल के पश्चात शाहजहाँ का ध्यान पुर्तगालियों की ओर आकृष्ट हुआ जिनका मुख्य केन्द्र हुगली था। ये लोग व्यापार के साथ-साथ भारतीयों को ईसाई धर्म की शिक्षा देते थे और स्त्रियों तथा बच्चों को पकड़कर उन्हें दास बना लेते थे। एक बार उन्होंने मुमताज महल की दो दासियों को भी पकड़ लिया। इस पर शाहजहाँ को बड़ा क्रोध आया। उसने बंगाल के सूबेदार 'कासिम खाँ' को हुगली का घेरा डालने तथा पुर्तगीजों को समूल नष्ट कर देने की आज्ञा दी। हुगली का घेरा तीन माह तक जारी रहा। धूर्त पुर्तगालियों ने आत्म-समर्पण करने का भाव प्रकट किया और एक लाख रुपया बतौर दण्ड देने को तैयार हो गये, परन्तु छिपे-छिपे अपनी सेनाओं को संगठित करके मुगलों पर गोलाबारी करने को भी तैयार हो गये। परन्तु वे बुरी तरह मौत के घाट उतार दिये गये। उनके लगभग १०,००० मर्द, औरतें और बच्चे मारे गये। लगभग ४८००० कैद कर लिये गये। कैदियों को इस्लाम धर्म या आजीवन कैद या गुलामी में से एक को चुन लेने को कहा गया। इस प्रकार पुर्तगालियों की ज्यादतियों का अन्त किया गया।

(६) **शाहजहाँ की विजय:—**

(क) **दक्षिण भारत की विजय:**—इसके लिये प्रश्न नं० ३ का उत्तर पढ़िये।

(ख) **मध्य एशिया पर आक्रमण:**—शाहजहाँ बड़ा महत्वाकांक्षी था। वह मध्य एशिया में भी अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसलिए उसने सन् १६४६ ई० में बल्ख तथा बुखारा पर कुछ समय के लिये अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु उसकी ये विजय अधिक दिनों तक टिकाऊ न सिद्ध हो सकीं और अन्त में शाही सेना को धन तथा जन दोनों की ही हानि उठा कर वापिस लौटना पड़ा।

(ग) **कन्धार का मामला:**—शाहजहाँ की सबसे बड़ी इच्छा यह थी कि वह कन्धार को पुनः जीतकर अपने साम्राज्य में मिला ले। उन दिनों कन्धार का सैनिक एवं व्यापारिक महत्व अधिक था। इसके अलावा कन्धार का गवर्नर 'अलीमर्दान खाँ' अपने स्वामी फारस के शाह से असन्तुष्ट था। अतः परिस्थिति से लाभ उठाकर शाहजहाँ ने कन्धार पर घेरा डालने की आज्ञा दी। अलीमर्दान खाँ मुगलों से मिल गया और कन्धार आसानी से मुगलों के अधिकार में सन् १६३८ ई० में आ गया।

परन्तु फारस का शाह कन्धार के मामले पर शान्त बैठने वाला न था अवसर पाकर सन् १६४८ ई० में फारस की सेनाओं ने जाड़े के मौसम में कन्धार पर आक्रमण कर दिया और ५७ दिन के संघर्ष के पश्चात् उस पर अपना पुनः अधिकार जमा लिया। इसके पश्चात् शाहजहाँ ने कन्धार को फिर से जीतने के लिये दो बार प्रयत्न किये परन्तु मुगल सेनाओं को निराश होकर ही वापिस लौटना पड़ा। इस घटना से मुगल साम्राज्य की शान को बड़ा धक्का लगा।

(७) **शाहजहाँ के अन्तिम दिन** :—सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ बीमार हो गया उसके अन्तिम दिन सुख से व्यतीत न हो सके। उसके चार पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं—पुत्र दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद; पुत्रियां—जहांआरा और रोशन आरा। अतः पिता की बीमारी का समाचार सुनकर चारों भाइयों में उत्तराधिकार के लिये युद्ध होने लगा। इस युद्ध में अन्तिम विजय औरंगजेब को प्राप्त हुई। वह आगरे के किले में अपने पिता को कैद कर स्वयं सम्राट बन बैठा। अपने जीवन के शेष वर्ष सन् १६६६ ई० तक शाहजहाँ को इसी कैद में बिताने पड़े। उसकी मृत्यु के पश्चात् वह भी अपनी प्यारी बेगम मुमताज महल के पास ताज महल में ही दफना दिया गया।

(८) **शाहजहां का चरित्र तथा उसके कार्यों का मूल्यांकन**:-शाहजहाँ मुगल सम्राटों में सबसे महान् सम्राट था। उसके शासन काल को मुगल काल का स्वर्ण युग कहा जाता है। वह एक महान सैनिक तथा सेनानायक था। उसने अपनी सैनिक योग्यता एवं प्रतिभा का परिचय अपने पिता और अपने शासन काल में दिया था। वह एक महान भवन निर्माता भी था। देहली और आगरे की अनेक इमारतें आज भी उसकी महत्ता को दर्शा रही हैं। वह एक महान शासक और प्रबन्धक था। न्याय के मामले में वह जरा भी पक्षपात नहीं करता था और अपने बड़े से बड़े कर्मचारी को भी सख्त से सख्त दण्ड देने में जरा भी संकोच नहीं करता था। किन्तु धार्मिक दृष्टि से वह एक धर्म विचलित मुसलमान था। उसने बनारस के इलाके के ७६ मन्दिर नष्टभ्रष्ट करा दिये थे। एक प्रकार से औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति का आरम्भ उसी के काल में हो चुका था।

डा० स्मिथ ने उसके विषय में लिखा है, "शाहजहाँ के दरबार की शान शौकत, उसके साम्राज्य की विशालता और समृद्धि, उसके द्वारा निर्मित इमारतों की अपूर्व सुन्दरता इत्यादि कार्यों से आधुनिक इतिहासकारों की आँखें चौंधिया गईं और वे उसके अनेक अत्याचारों को भुलाकर उसका गुणगान करने लगे। पुत्र होने पर भी उसने वर्षों तक विद्रोह किया और अपने पिता के प्रति कर्तव्य विमुख रहा। उसने अपने सारे निकट सम्बन्धी पुरुषों को निर्दयता से मरवा डाला। एक पिता के रूप में भी उसने अपने बड़े पुत्र दारा का अत्यधिक पक्षपात किया। एक मनुष्य के रूप में उसका अपने १४ बालकों की माँ मुमताज महल के प्रति असीम प्यार प्रशंसनीय है परन्तु सन् १६३१ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने के उपरांत वह (शाहजहां)

अपने जीवन के शेष ३५ वर्षों में तो घृणित रूप से विलासिता में डूब गया। ...... राज-काज में वह निर्दय, विश्वासघाती और हृदयहीन था। अपने समकालीन राजाओं से अधिक बुरा नहीं तो उनसा अच्छा भी नहीं रहा होगा। एक सेनानायक के रूप में भी वह कुछ अधिक चतुर नहीं था। कन्धार का छिन जाना और उसके तीनों आक्रमणों की विफलता उसकी अयोग्यता और सैन्य संचालन की ज्ञान शून्यता की द्योतक है।............"

---

प्रश्न २—क्या यह कहना सत्य है कि शाहजहां का समय मुगल-काल का स्वर्ण युग था।

**Q. 2. How far in your opinion is it justified to call the reign of Shah Jahan as the Golden period of the Mughal Age.**

उत्तर—इतिहासकारों में इस प्रश्न पर बड़ा मतभेद है कि शाहजहाँ का काल स्वर्ण-युग था अथवा नहीं। जो आलोचक शाहजहां के काल को स्वर्ण-युग नहीं मानते वे अपने मत के अनुमोदन में निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं—

(१) शाहजहां का व्यक्तित्व अत्यन्त गिरा हुआ था। उसका व्यवहार अपने पिता के साथ अच्छा न था। उसने कई बार सिंहासन प्राप्त करने के लिये विद्रोह किया। अपने भाइयों के साथ भी उसने बड़ा बुरा और नृशंसता का व्यवहार किया। सिंहासन प्राप्त करने के लिये उसने अपने भाईयों तथा अन्य सम्बन्धियों का रक्तपात किया था। अपनी सन्तान पर भी उसका प्रेम एकसा न था। दाराशिकोह तथा जहांआरा पर वह विशेष प्रेम तथा कृपा रखता था। इससे उसकी अन्य सन्तानों को ईर्ष्या तथा द्वेष उत्पन्न हो गया और वे प्रायः एक दूसरे के विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगे जिसका परिणाम उत्तराधिकार का युद्ध हुआ और इसका साम्राज्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। शाहजहाँ बड़ा ही चरित्रभ्रष्ट तथा विलास-प्रिय सम्राट था और सदैव कामान्ध रहता था। मुमताज महल के मरने के बाद उसके चरित्र का ऐसा पतन हुआ कि वह खराब से खराब पाप करने में भी संकोच नहीं करता था।

(२) राज्य के कार्यों में भी शाहजहां का व्यक्तित्व ऊंचा न था। डाक्टर स्मिथ के विचार में यह निर्दयी, धोखेबाज तथा बेईमान था। न वह महान् सेनापति था और न इसमें सेना के संगठन करने तथा उसे कुशल बनाने की क्षमता थी। अतएव उसकी सेना विशाल होते हुये भी अयोग्य रही और कोई प्रशंसात्मक कार्य न कर सकी। उसकी मध्य एशिया की नीति-सर्वथा असफल रही और कन्धार के हाथ से निकल जाने के कारण मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा।

(३) शाहजहां के न्याय के सम्बन्ध में डा० स्मिथ ने लिखा है कि उसका दण्ड विधान बड़ा ही बर्बर, क्रूर, नृशंस था। वह एक स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश

शासक की तरह न्याय करता था। न वह व्यक्तियों का ध्यान रखता था और न उसमें दया का लवलेश था।

(४) शाहजहां के आलोचकों का कहना है कि इस काल में साधारण जनता का जीवन अत्यन्त दुखी था। बर्नियर लिखता है कि स्थानीय अधिकारियों का रिआया पर ऐसा प्रबल एकाधिकार था कि उनके द्वारा सताई हुई प्रजा कहीं प्रार्थना नहीं कर सकती थी। पीटरमंडी सूबेदारों को बड़ा अत्याचारी तथा निर्दयी बतलाता है जो रिआया के साथ हृदयहीनतापूर्ण व्यवहार करते थे। पटने के शासक अब्दुल्ला खाँ ने पीटरमंडी के साथ दुर्व्यवहार किया था। वह तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारी सरकारी माल हजम कर जाते थे। मंडी में बनारस में एक आदमी को मन्दिर गिरा देने की राजाज्ञा न मानने के कारण एक पेड़ से एड़ी बांध कर लटकाया हुआ देखा। उसने सन् १६३२-३३ में फतहपुर सीकरी के पास सूबेदार द्वारा ढाई-तीन सौ मनुष्यों को सूली पर लटकाए जाते देखा। चुंगी जगह-जगह ली जाती थी और देश में चोर बहुत रहते थे। यात्रा में लूट लिये जाने का डर रहता था और देश में सरायों का अभाव था। बर्नियर भी सूबेदारों को अत्याचारी शासक बतलाता है जिनके अत्याचारों के विरुद्ध प्रजा कहीं फरियाद नहीं कर सकती थी। यह सत्य है कि वाक्येनवीस नियुक्त किये गये थे जिनका कर्तव्य सम्राट को सूबेदारों के कारनामों की खबरें देना था, किन्तु ये वाक्येनवीस सूबेदारों से मिल जाते थे और प्रजा पर खूब अत्याचार होते रहते थे।

इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत अकाल तथा युद्धों के कारण नष्ट भ्रष्ट हो गया था और उत्तरी भारत की फिजूलखर्ची का शिकार बना था। शाहजहाँ की विलासप्रियता तथा उसकी मूल्यवान इमारतों के कारण जो धन व्यय हुआ था उसका किसानों तथा व्यापारियों और व्यवसायियों पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ा था वास्तव में साधारण जनता का रक्त शोषण करके ही सुन्दर भवनों का निर्माण हुआ था और सम्राट तथा उसके अमीरों की विलासप्रियता ने प्रजा को निर्धन बना दिया था। सरकार की फिजूलखर्ची के कारण राष्ट्र का दिवाला निकल गया और साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया। इस प्रकार सैनिक, आर्थिक, शासन, न्याय, सामाजिक सभी दृष्टिकोणों से शाहजहां का शासन काल गौरवहीन था।

(५) शाहजहां में धार्मिक कट्टरता भी बहुत थी। उसने हिन्दुओं पर तीर्थ कर भी लगाया। जो तीर्थ यात्री प्रयाग जाते थे उनसे सरकार सवा छः रुपया वसूल करती थी। मृत हिन्दुओं की हड्डियों को गंगा में डालने के लिये भी कर देना पड़ता था। उसने बनारस के इलाके में ७६ मन्दिर बिलकुल नष्ट भ्रष्ट करा दिए। इस प्रकार शाहजहाँ ने अकबर और जहांगीर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति को त्याग कर अपनी हिन्दू प्रजा पर धर्म के नाम पर अत्याचार करने शुरू कर दिये थे।

जो विद्वान शाहजहां के काल को स्वर्ण युग बतलाते हैं निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं:—

(१) यह सत्य है कि शाहजहां ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया था और षड़यन्त्र रचा था परन्तु नूरजहां की कूटनीति तथा तत्कालीन परिस्थितियों ने ही उसे ऐसा करने पर मजबूर किया था। यह भी सत्य है कि अपने भाइयों तथा सम्बन्धियों का रक्तपात करके वह सिंहासन पर बैठा था, परन्तु उस युग के लिये यह कोई नई बात न थी। शाहजहाँ स्वभाव से रक्तपिपासु नहीं था और सिंहासन पर बैठने के पश्चात् कोई रक्तपात उसने नहीं किया। अपने परिवार से उसको बड़ा प्रेम था उसने अपने साम्राज्य का प्रबन्ध अपने चारों पुत्रों में विभक्त कर दिया था और सभी को अपनी योग्यता दिखलाने का समान अवसर प्रदान किया था। इस प्रकार शाहजहाँ पर जो व्यभिचार के आक्षेप लगाये गए हैं वे निराधार और निर्मूल हैं।

(२) शाहजहां का काल शान्ति और सुव्यवस्था का काल था। इसमें सन्देह नहीं की इस काल में दो चार विद्रोह हुये परन्तु ये विद्रोह सम्राट के अत्याचार अथवा शासन की दुर्व्यवस्था के कारण नहीं हुये थे वरन् ये महात्वाकाँक्षी व्यक्तिओं के विद्रोह थे जो अपने को स्वतन्त्र बनाना चाहते थे। केवल पुर्तगालियों का विद्रोह इस प्रकार का न था। परन्तु पुर्तगालियों का अत्याचार पराकाष्ठा को पहुँच गया था। सम्राट इन सब के दमन करने में सफल हुआ था। वास्तव में उत्तराधिकार के युद्ध के पहले सम्राट की सत्ता को चुनौती देने का किसी को साहस न हुआ।

(३) इस काल में किसी विदेशी शक्ति के आक्रमण का भी भारत को भय न था। यद्यपि मध्य-एशियाई नीति में स्थायी सफलता न मिली और कन्धार हाथ से निकल गया परन्तु भारत की राजनीति पर इसका विशेष प्रभाव न पड़ा। शाहजहाँ ने जो साम्राज्य अपने पिता से प्राप्त किया था उसे पूर्ण रूप से सुरक्षित रक्खा और दक्षिण की ओर उसकी सीमा की वृद्धि भी की।

(४) इस काल में व्यापार की भी बड़ी उन्नति हुई। भारत का पश्चिमी एशिया में और भारत तथा यूरोप में व्यापार की बड़ी उन्नति हुई।

(५) शाहजहाँ के समय में देश धन-धान्य से पूर्ण था। कृषि की उन्नति की पूरी व्यवस्था की गई और राज्य की आय बढ़ गई। केवल भूमि से ही सरकार को ४५ करोड़ रुपए की आमदनी थी। यह कहना बिल्कुल निर्मूल है कि प्रजा निर्धन थी क्योंकि दरिद्र तथा निर्धन प्रजा से इतना धन प्राप्त नहीं किया जा सकता था। अपार धन इमारतों तथा शान-शौकत की वस्तुओं पर व्यय करने पर भी सोने, चाँदी तथा जवाहरात को छोड़कर लगभग २॥ करोड़ रुपए राजकोष में रह गए थे।

(६) शाहजहाँ के दरबार तथा उसके नगर उसके बनाये हुए भव्य भवन उसके काल को अत्यन्त गौरवपूर्ण तथा ऐश्वर्यशाली बना देते हैं। केवल तख्त ताऊस तथा ताजमहल उसके शासन काल को स्वर्ण-युग बनाने के लिए काफी हैं। इस प्रकार दिल्ली तथा आगरे की इमारतों ने शाहजहाँ की कीर्ति को अमर बना दिया।

इस स्थान पर हम शाहजहां की बनवाई हुई इमारतों पर कुछ थोड़ा सा प्रकाश संक्षेप में डालना अति आवश्यक समझते हैं।

**तख्त ताऊस** :—शाहजहाँ बड़े शान-शौकत का बादशाह था। उसने अपने बैठने के लिये तख्त ताऊस बनवाया। इस सिंहासन में ८६ लाख रुपये के उत्कृष्ट रत्न एक लाख तोले सोने के साथ जड़े गये थे। यह सिंहासन ३½ गज लम्बा, २½ गज चौड़ा और ५ गज ऊँचा था। इसके चंदोवे के बाहरी हिस्से में माणिक लगे हुए थे और भीतरी भाग में मीनाकारी की हुई थी जिसमें रत्न लगे थे। यह चंदोवा १२ खम्भों पर स्थित था जिनमें ऊपर से नीचे तक पन्ने जड़े हुए थे। हर एक खम्भे पर दो रत्न जटित मोर बने हुए थे और हर दो मोर के बीच लाल, हीरा, पन्ना और मोती से जड़ा हुआ एक वृक्ष बना हुआ था। समूचा सिंहासन रत्नों से जगमगाता रहता था। यह सिंहासन सात वर्षों में बनकर तैयार हुआ था और इसमें एक करोड़ से अधिक रुपये व्यय हुए थे।

**ताजमहल** :—शाहजहाँ की इमारतों में ताजमहल संसार प्रसिद्ध है जो उसने अपनी प्यारी बेगम मुमताजमहल की स्मृति में बनवाया था। समकालीन लेखक अब्दुल हमीद लाहौरी के कथनानुसार यह १२ वर्षों में बनकर तैयार हुआ और इसमें ५० लाख रुपये व्यय हुए थे। ट्रेवर्नियर ने लिखा है कि यह २२ वर्ष में बनकर तैयार हुआ था और ३ करोड़ रुपये व्यय हुए थे।

**आगरे के किले में इमारतें** :—शाहजहां ने आगरे के किले में भी कई इमारतें बनवाईं जिनमें **मुसम्मन बुर्ज** और **मोती मस्जिद** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मुसम्मन बुर्ज संगमरमर की एक सुन्दर इमारत है जो बहुमूल्य पत्थरों से अलंकृत है। वृद्ध सम्राट ने अपने पुत्र द्वारा बन्दी होकर यहीं अपनी जीवन लीला समाप्त की थी। इन इमारतों के अतिरिक्त शाहजहां ने इस किले में **झरोखा-ए-आम, झरोखा-ए-खास** और **दौलतखाना-खास** भी बनवाये जो देखने में बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं।

**दिल्ली की इमारतें** :—शाहजहाँ ने यमुना नदी के किनारे अपने लिये एक राजधानी की नींव डाली जिसका नाम उसने शाहजहांनाबाद रक्खा। दस वर्षों में यह नगर बनकर तैयार हुआ। इस नगर में उसने शाहबुर्ज, रंगमहल, मुमताजमहल, **दीवाने आम** और **दीवाने-खास** बनवाये। दीवाने-खास शाहजहां की इमारतों में सबसे अधिक अलंकृत है। इसकी दीवारों पर ये शब्द आज भी अंकित हैं :—

"अगर फिरदौस बररुए जमीनस्त।
हमीनस्त हमीनस्त हमीनस्त॥"

अर्थात् यदि इस पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है। इस दीवाने खास में संगमरमर की बनी हुई जल की नालियां हैं जिनसे इमारतों की शोभा और भी बढ़ गई है।

दिल्ली की जामा मस्जिद भी जो भारत की बड़ी से बड़ी मस्जिदों में से एक है, शाहजहां ने ही बनवाई थी जो लाल पत्थर की बनी है और जिसके बनने में १० लाख रुपये तथा ६ वर्ष लगे थे।

इन इमारतों के बनने से शाहजहां का नाम भारतीय इतिहास में अमर हो गया है और उसका काल स्वर्ण युग कहलाने के सर्वथा योग्य है।

(७) साहित्य तथा कला कौशल में भी शाहजहां के काल में बड़ी उन्नति हुई। इतिहास, दर्शन, गद्य-पद्य सभी प्रकार के साहित्य की इस काल में उन्नति हुई। फारसी तथा अरबी दोनों भाषाओं में उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखे गये। संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि की भी उन्नति हुई।

(८) शाहजहां बड़ा ही न्यायप्रिय शासक था। वह बुद्धिमान, अनुभवी तथा उच्च चरित्र वाले व्यक्तियों को न्यायाधीश के पद पर नियुक्त करता था। वह अपनी प्रजा की शिकायतों को दूर करने का अधिक से अधिक प्रयत्न करता था और इस बात का ध्यान रखता था कि सभी को समान रूप से न्याय प्राप्त हो। वह अपने अफसरों पर कड़ी निगाह रखता था और जो अपने कर्तव्यों का पालन ठीक तरह न करते थे उन्हें वह कठोर दण्ड देता था। जो लोग घूस लेते थे वे दण्ड पाते थे और चोरों को भी क्षमा नहीं किया जाता था। एक दिन महकमा लगान के कागजात की जाँच करते हुये सम्राट ने देखा कि एक मौजे की मालगुजारी में कई हजार की बढ़ती हो गई थी। उसने फौरन अपने दीवान सादुल्ला खां को बुलाकर इस बढ़ती का कारण पूछा। दीवान ने जवाब दिया कि नदी के पथ में परिवर्तन हो जाने से गांव में कुछ जमीन आ मिली थी जिससे गाँव की उपज बढ़ गई थी। सम्राट ने पूछा कि यह जमीन खालसा थी या माफी। दीवान ने बतलाया कि माफी थी। यह सुनकर सम्राट बहुत बिगड़ा और ज्यादती करने वाले फौजदार को पदच्युत कर दिया और जो अधिक वसूली हुई थी उसे लौटा दिए जाने की आज्ञा दे दी। एक दूसरे अवसर पर कुछ नाटक खेलने वाले आदमियों ने सम्राट के सामने एक नाटक का अभिनय किया जिसमें गुजरात के सूबेदार के अन्याय तथा दुष्टता पर प्रकाश डाला था। बादशाह अचम्भित होकर चिल्ला उठा—

"क्या संसार में ऐसे अत्याचार करने वाले मनुष्य भी हो सकते हैं" ? और मामले की जांच करने के पश्चात् उस सूबेदार को आजन्म कैद रक्खे जाने का दण्ड दिया और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। इन बातों से यही सिद्ध होता है कि शाहजहां बड़ा न्यायप्रिय बादशाह था और न्याय के मामले में वह अपने बड़े से बड़े अफसर को भी क्षमा नहीं करता था।

(९) शाहजहाँ का काल मुगल साम्राज्य की चरमोन्नति का काल था। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी दृष्टिकोणों से देश उन्नति के शिखर पर पहुँचा। मुगल साम्राज्य का पतन शाहजहाँ के काल में नहीं वरन् औरंगजेब के काल में आरम्भ हुआ था।

(१०) अनेक विद्वानों के कथन से भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शाहजहाँ का शासन काल स्वर्ण-युग था। खाफी खाँ, ट्रैवर्नियर, सर विलियम हण्टर, स्टैनली पूल तथा एलफिन्सटन सभी इस बात पर सहमत हैं कि यह काल अत्यन्त धन सम्पन्न था। अतएव इसे स्वर्णयुग कहना उचित है।

---

**प्रश्न ३—सन् १६५८ ई० तक की मुगलों की दक्षिण की नीति का वर्णन कीजिये।**

**Q. 3. Give an account of the Deccan policy of the Mughals upto 1658 A. D.**

उत्तर—(१) **सोलहवीं शताब्दी में दक्षिण की दशा**—जिस समय बाबर तथा उसके पौत्र अकबर द्वारा उत्तरी भारत में मुगल साम्राज्य का निर्माण हो रहा था, दक्षिण में **विजयनगर** का हिन्दू साम्राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था। परन्तु कृष्णदेव राय की मृत्यु (१५२९) के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों की दुर्बलता और अदूरदर्शिता से दक्षिण के मुस्लिम राज्यों को प्रोत्साहन मिला। दक्षिण में हिन्दू मुस्लिम राज्यों का यह संघर्ष तालीकोट के युद्ध (सन् १५६५ ई०) में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। इस युद्ध ने दक्षिण के इन राज्यों के भाग्यों का निर्णय कर दिया। विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य की सत्ता धूल में मिल गई और इसका पुराना गौरव, शक्ति तथा सम्मान फिर से न लौट सके। उधर दक्षिण के मुस्लिम राज्य आपस में लड़कर अपनी शक्ति का विनाश करने लगे। इन मुस्लिम राज्यों में अहमदनगर, बीदर, बीजापुर और गोलकुण्डा प्रधान थे।

सोलहवीं शताब्दी में दक्षिण में पुर्तगालियों की शक्ति भी प्रबल हो रही थी। उन्होंने दक्षिणी भारत के पश्चिमी और दक्षिणी-पूर्वी तट पर अपनी ताकत बढ़ा ली थी। गोलकुण्डा तथा बीजापुर ने सन् १५७० ई० में उनके उपनिवेशों को छीनने की कोशिश की परन्तु वे सर्वथा असफल रहे। दक्षिण का अधिकांश समुद्री व्यापार उन्हीं के हाथ में था। ऐसा प्रतीत होता था कि शीघ्र ही दक्षिण में उनकी ताकत काफी बढ़ जायगी। परन्तु सहसा १५८० ई० में योरुप में पुर्तगाल के पतन ने उनकी सारी इच्छाओं को समाप्त कर दिया।

(२) **अकबर की नीति**—मुगलों में अकबर प्रथम बादशाह था जिसने दक्षिण के विषय में अच्छी तरह सोच विचार किया। दक्षिण में एक स्वतन्त्र शक्ति का स्थित होना उसके लिये तथा उसकी विजयी सेना के लिये असन्तोष का कारण सिद्ध हुआ। यह अधिक धन और शक्ति का इच्छुक था और साथ साथ दक्षिण में अपनी दृढ़ सत्ता स्थापित करके अपने ईसाई मित्रों को समुद्र में ढकेल देना चाहता था।

(क) अहमदनगर के साथ युद्ध—सबसे पहले अकबर अहमदनगर की ओर बढ़ा जहाँ पर चारों ओर अव्यवस्था फैली हुई थी। राज्य के लिये कई दल आपस में युद्ध कर रहे थे और जिस दल की प्रभुता थी उसे अकबर की सहायता की आ: थी। अकबर ने शाहजादा मुराद और अब्दुर्रहीम को सन् १५९३ में अहमदनगर भेजा। चांद बीबी ने वीरतापूर्वक अपनी राजधानी की रक्षा की। अन्त में सन् १५९६ ई० में सन्धि हो जाने पर अहमद नगर के राजा ने बादशाह को बरार का प्रान्त दे दिया। परन्तु यह सन्धि स्थायी न हो सकी। बरार की सीमा के विषय में एक बड़ा झगड़ा खड़ा हो गया। शाहजादा दानियाल और अकबर दक्षिण की ओर बढ़े। सन् १५९९ में दौलताबाद पर अधिकार कर लिया। अहमदनगर का उस समय तक घेरा पड़ा रहा जब तक चांद बीबी की हत्या नहीं करदी गई और सन् १६०० ई० में नगर पर सरलतापूर्वक अधिकार हो गया। अहमदनगर की विजय के पूर्व खानदेश ने मुगल सत्ता स्वीकार करने में अपनी अस्वीकृति दे दी थी। इसलिए अकबर उसके विरुद्ध युद्ध करने के लिये बढ़ा और बुरहानपुर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। एक वर्ष तक घोर युद्ध के बाद सन् १६०१ में असीरगढ़ के किले पर भी विजय प्राप्त हो गई। इन विजयों के बाद बरार, खानदेश और अहमदनगर तीनों सूबों को नए रूप से संगठित किया गया। और शाहजादा दानियाल उनका वायसराय नियुक्त हुआ। मई सन् १६०१ में अकबर आगरा लौट आया।

(३) जहाँगीर की दक्षिण नीति—१६०५ ई० में गद्दी पर बैठते ही जहांगीर ने दक्षिण की ओर ध्यान दिया। उसने अहमदनगर के राज्य को पूर्णरूप से वश में करना चाहा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे एक असाधारण राजनीतिज्ञ तथा युद्ध विशारद व्यक्ति 'मलिक अम्बर' का सामना पड़ा जो अहमदनगर राज्य का मन्त्री तथा सेनापति था। अहमदनगर के राज्य में उसे बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उसने शासन प्रबन्ध में कई सुधार किये थे। उसने निजामशाही राज्य की सैनिक शक्ति बढ़ा ली और दक्षिण भारत में एक नई पद्धति का आविष्कार किया। उसी ने पहले-पहल मराठों को गोरिल्ला युद्ध-प्रणाली की शिक्षा दी। मलिक अम्बर ने करीब २० वर्ष तक मुगल सैनिकों को परेशान रक्खा।

आरम्भ में जहाँगीर ने १२००० सैनिकों के साथ खानखाना को दक्षिण भेजा। इस दल को सफलता न मिलते देखकर बादशाह ने खानजहाँ लोदी की अध्यक्षता में एक और सेना भेजी। मलिक अम्बर ने इन दोनों सेनाओं को पराजित कर दिया। सन् १६११ ई० में मुगलों की सेनाओं ने खानजहाँ की अध्यक्षता में फिर दक्षिण पर आक्रमण किया। किन्तु मलिक अम्बर के मराठा सवारों ने उन्हें बुरी तरह पराजित करके गुजरात की ओर भगा दिया। इसके पश्चात् बादशाह ने खानखाना को फिर दक्षिण भेजा। इस बार मलिक अम्बर पराजित हुआ लेकिन इससे शत्रु का बल न घटा।

अब दक्षिण की चढ़ाई का अध्यक्ष खुर्रम बनाया गया। परन्तु खुर्रम ने केवल इतना ही किया कि अपनी विशाल सेना के द्वारा चारों ओर भय उत्पन्न कर दिया और इस प्रकार एक सन्धि करली। १५ लाख की भेंट के साथ आदिलशाह स्वयं राजकुमार खुर्रम के पास उपस्थित हुआ और उसने मलिक अम्बर द्वारा जीते गये प्रदेशों को लौटा देने की प्रतिज्ञा की। बादशाह ने इस सन्धि को मान लिया और वह इस सफलता से बहुत प्रसन्न हुआ। राजकुमार खुर्रम को शाहजहां की उपाधि दी गई और उसका मनसब ३०,००० जात और २०,००० सवार का कर दिया गया और राजधानी में पहुँचने पर उसका बड़ा सम्मान हुआ।

परन्तु जब खुर्रम ने नूरजहाँ के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर विद्रोह किया और दक्षिण की ओर चला गया तो मलिक अम्बर ने अनुकूल अवसर पाकर उसका स्वागत किया। खुर्रम के विद्रोह को दबाने के लिये पहले महाबत खाँ और फिर खानजहाँ लोदी भेजा गया। इसी बीच में सन् १६२६ ई० में मलिक अम्बर की मृत्यु हो गई। इस महान् राजनीतिज्ञ की मृत्यु के बाद सुयोग्य उत्तराधिकारी 'हामिद खाँ' ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध जारी रक्खा। मुगल सेनापति खानजहाँ लोदी ने हामिद खां से एक बड़ी रकम रिश्वत में लेकर बालाघाट का सारा प्रदेश उसे सौंप दिया। इस प्रकार जहाँगीर की दक्षिणी नीति बुरी तरह असफल रही। अपार धन-जन की वर्षों तक क्षति हुई और न तो साम्राज्य का विस्तार ही हुआ और न उसके गौरव की ही वृद्धि हुई।

(४) शाहजहाँ की दक्षिण नीति—शाहजहाँ ने अपने शासन के प्रारम्भ से ही दक्षिण में सबल नीति का प्रारम्भ किया। साम्राज्य विस्तार के साथ इसकी नीति धर्म-प्रभावित भी थी। दक्षिण के सुल्तान शिया धर्म के पालक थे और शाहजहाँ ने अकबर और जहांगीर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति का परित्याग कर राजनीति में धर्म को प्रधानता दी। साथ ही वह दक्षिण के सुल्तानों की कमजोरियों और उनकी पारस्परिक शत्रुता और द्वेषभाव से भी परिचित था। अतः उसने इन राज्यों का अन्त करने का निश्चय कर लिया।

(क) अहमदनगर —अभी तक अहमदनगर के राज्य का अन्त नहीं हुआ था। अहमदनगर के वजीर फतह खाँ ने शाहजहाँ से मिलकर दस वर्षीय राजकुमार हुसेनशाह को अहमदनगर की गद्दी पर बिठाया। दक्षिण-विजय की कामना से सन् १६३२ ई० में शाहजहां स्वयं दक्षिण की ओर चल पड़ा और उसने दौलताबाद के किले पर घेरा डाल दिया। इस प्रसिद्ध दुर्ग पर शाहजी भौंसला (शिवाजी के पिता) अधिकार जमाना चाहता था और बीजापुर से उसने सैनिक सहायता भी प्राप्त की थी। बीजापुर की सेना एक गहरी लड़ाई के बाद हरा दी गई और किले का एक बुर्ज सुरंग लाकर उड़ा दिया गया। एक वर्ष तक लड़ाई जारी रही और अन्त में किले पर मुगल साम्राज्य का झण्डा फहराने लगा। बालक सुल्तान हुसेनशाह ग्वालियर के किले में आजीवन कारावास में डाल दिया गया और अहमदनगर की निजामशाही

सल्तनत का अन्त कर दिया गया। इस प्रकार अहमदनगर के राज्य का अन्त हो गया।

(ख) बीजापुर और गोलकुण्डा—अब शाहजहां ने बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तानों से अपनी आधीनता स्वीकार करने तथा नजराना खिराज की मांग की और साथ ही उनसे यह आश्वासन भी मांगा कि वे अहमदनगर के सम्बन्ध में किसी प्रकार की सहायता या हस्तक्षेप नहीं करेंगे। साथ ही उसने युद्ध की तैयारी भी आरम्भ कर दी। अतः भयभीत होकर गोलकुण्डा के सुल्तान 'अब्दुल्ला कुतुबशाह' ने शाहजहां की आधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु बीजापुर का सुल्तान इतनी सरलता से अधीन होने के लिये प्रस्तुत न था। मुगल सेनायें तीन ओर से बीजापुर की ओर चल पड़ीं। मुगल सेना ने रास्ते में भीषण उत्पात किया और बीजापुरियों ने भी असीम वीरता और त्याग से राजधानी की रक्षा की। युद्ध से थककर दोनों ही दलों ने सन्धि की बातचीत प्रारम्भ की। आदिलशाह ने शाहजहाँ की आधीनता के साथ खिराज भी देना स्वीकार किया। उसने गोलकुण्डा के मामले में हस्तक्षेप न करने और शाहजी की किसी प्रकार की सहायता न करने का आश्वासन दिया। इनके बदले में उसे अहमदनगर के राज्य का कुछ भूभाग भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार दक्षिण की विजय के पश्चात् १६३६ ई० में शाहजहां ने अपने पुत्र औरङ्गजेब को दक्षिण के प्रदेश—खानदेश, बरार, तेलंगाना और अहमदनगर सौंप दिये। सन् १६३६ से १६४४ तक तथा १६५३ से ५७ ई० तक औरंगजेब ने दक्षिण के प्रान्तों का शासन प्रबन्ध बड़ी ही योग्यता एवं सफलता के साथ किया। उसने अपने शासन के प्रथम वर्ष में ही शाहजी से अहमदनगर के सभी किले छीन लिये।

(ग) औरङ्गजेब की गोलकुण्डा पर चढ़ाई—औरंगजेब को अपने आन्तरिक प्रबन्धों से ही सन्तोष न था। वह धर्म, धन तथा साम्राज्य विस्तार इन तीनों ही कारणों से प्रेरित होकर गोलकुण्डा तथा बीजापुर की स्वतन्त्रता को समाप्त करना चाहता था। युद्ध का कारण ढूंढना सरल था। गोलकुण्डा ने कई वर्षों से अपना वार्षिक खिराज अदा नहीं किया था। उधर गोलकुण्डा ने कर्नाटक जीत कर अपने राज्य का विस्तार कर लिया था और इसके बदले में मुगलों को कोई रकम न भेजी थी। किन्तु युद्ध आरम्भ होने का असली कारण सुल्तान का अपने मन्त्री 'मीर जुमला' के प्रति दुर्व्यवहार था जिसने अपने स्वामी के क्रोधानल से बचने के लिये मुगलों की शरण मांगी थी।

औरंगजेब ने इन बहानों का आश्रय लेकर सन् १६५६ ई० में आक्रमण कर दिया और शीघ्र ही उसने गोलकुण्डा पर घेरा डाल दिया। दुर्बल तथा असहाय सुल्तान ने धन और उपहारों द्वारा मुगलों को सन्तुष्ट करना चाहा, परन्तु औरंगजेब की दृष्टि समस्त सल्तनत पर लगी थी और उसके इस उद्देश्य की पूर्ति में कोई सन्देह नहीं था। परन्तु दाराशिकोह और जहांआरा के प्रभाव से शाहजहां ने गोलकुण्डा का घेरा उठा लेने का आदेश दिया। इसलिये मजबूर होकर औरंगजेब ने सन्धि कर ली। सुल्तान को क्षमा कर दिया गया। उसने लड़ाई का हर्जाना तथा रंगोर

का जिला दिया तथा अपनी पुत्री का विवाह औरङ्गजेब के पुत्र 'शहजादा मुहम्मद' के साथ कर दिया और गुप्त रीति से औरंगजेब को आश्वासन दिया कि वह अपने दामाद शहजादा मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करेगा।

(घ) बीजापुर की चढ़ाई—औरंगजेब का ध्यान अब बीजापुर की ओर आकृष्ट हुआ। ४ नवम्बर १६५६ ई० में 'मुहम्मद आदिलशाह' की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र 'अली आदिलशाह द्वितीय' १८ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा। उसके गद्दी पर बैठते ही राज्य में अशान्ति फैलने लगी। औरंगजेब ने फौरन शाहजहां से बीजापुर पर आक्रमण करने की स्वीकृति प्राप्त करली। मीर जुमला को इस युद्ध में शहजादा औरंगजेब का सहायक बनाया गया। शाहजहां की इच्छा केवल बीजापुर को विजय करने की थी, अपने साम्राज्य में मिला लेने की नहीं। परन्तु औरंगजेब तो केवल बादशाह की आज्ञा चाहता था। इसलिए स्वीकृति मिल जाने पर मीर जुमला और औरंगजेब की सम्मिलित सेनाओं ने 'बीदर' पर घेरा डाल दिया और एक महीने के अन्दर उसे विजय कर लिया। अब मुगलों ने राज्य में चारों ओर लूट खसोट और भीषण उत्पात शुरू कर दिया। उन्होंने 'कल्याणी' पर भी घेरा डाल दिया और तीन महीने में उस पर भी अधिकार कर लिया। अब औरंगजेब के लिए बीजापुर का मार्ग साफ था। परन्तु इसी बीच में दारा के प्रभाव से जो औरंगजेब की इस सफलता को सहन नहीं कर सकता था, शाहजहाँ ने युद्ध बन्द करने का आदेश दिया और गोलकुण्डा की भांति बीजापुर भी मुगल साम्राज्य में शामिल होते होते बच गया। सन् १६५७ ई० में सन्धि द्वारा मुगलों को बीजापुर से बीदर, कल्याणी और परेंदा के प्रसिद्ध किले और युद्ध के खर्च के लिए एक करोड़ रुपया प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् शीघ्र ही शहाजहां की बीमारी के कारण उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिये युद्ध प्रारम्भ हो गया और औरंगजेब को उत्तरी भारत की ओर चला जाना पड़ा। इस प्रकार कुछ समय के लिए गोलकुण्डा और बीजापुर को मुगलों का भय जाता रहा।

---

प्रश्न ४—शाहजहां के पुत्रों में जो उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ उसका संक्षेप में विवरण लिखिए। तुम्हारे विचार में औरंगजेब की सफलता के क्या कारण थे?

**Q. 4.** Briefly describe the chief events of the war of succession between the sons of Shah Jahan. What were, in your opoinion, the chief causes of Aurangjebe's success?

उत्तर—शाहजहां सितम्बर १६५७ ई० में बीमार पड़ा और चिकित्सकों को उसके बचने की कोई आशा न रही। अतः उसकी मृत्यु के विषय में अनेक प्रकार की अफवाहें फैलने लगीं।

उत्तराधिकार के लिये युद्ध मुगल सम्राटों में एक प्रकार की प्रथा सी बन गई थी। हुमायूं, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ सभी को सिंहासन प्राप्त करने के लिए अपने विरोधियों से युद्ध करना पड़ा था। इसलिये शाहजहाँ के पुत्रों में भी युद्ध होना जरूरी था। उसके चार पुत्र थे—दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद। सन् १६५७ ई० में दारा ४३ वर्ष का, शुजा ४१ वर्ष का, औरंगजेब ३९ वर्ष का और मुराद ३३ वर्ष का था। चारों भाइयों को नागरिक और सैनिक दोनों प्रकार के शासन कार्यो का अनुभव था। दारा पंजाब का, मुराद गुजरात का, औरङ्गजेब दक्षिण का और शाहशुजा बंगाल का राज्यपाल था।

उत्तराधिकार के युद्ध का वर्णन करने से पहले हम इन चारों भाइयों के चरित्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालना अति आवश्यक समझते हैं।

दारा—दारा बड़ा योग्य व्यक्ति था, परन्तु उसकी प्रकृति तेज और आचरण हठी था। धार्मिक क्षेत्र में उसके विचार बड़े उदार थे। उसने उपनिषदों का अनुवाद फारसी भाषा में करवाया। मुसलमान उसे नास्तिक समझते थे। वह अपने पिता का बड़ा विश्वासपात्र पुत्र था। यद्यपि वह पंजाब का गवर्नर नियुक्त था, परन्तु हर समय अपने पिता के पास राजधानी में ही रहा करता था। उसमें एक सच्चे शासक के गुणों का अभाव था। वह अभिमानी था और दूसरों के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश नहीं करता था। वह एक अच्छा सैनिक भी नहीं था। वह सदैव चापलूस पसन्द व्यक्तियों से घिरा रहता था।

शुजा—शाहशुजा बंगाल का गवर्नर था। वह आराम और विलास का दास था। इनसे उसकी मानसिक और शारीरिक शक्तियां कमजोर पड़ गई थीं। उसकी रुचि शिया मत की ओर अधिक थी। लेनपूल के कथनानुसार "शुजा का ज़नाना (रनिवास) ही उसकी महत्वाकांक्षाओं की कैद बन गया।"

औरंगजेब—औरङ्गजेब शाहजहाँ के पुत्रों में सबसे योग्य था। वह बड़ा चतुर और धार्मिक वृत्ति का पुरुष था। वह एक उच्च कोटि का सेनापति था और गुजरात तथा दक्षिण का राज्यपाल रहने के कारण उसे प्रशासन का भी बड़ा अनुभव था। बर्नियर के विचार में वह एक मंजा हुआ शासक और महान् सम्राट था जिसमें निपुणता और अद्वितीय विद्वत्ता विद्यमान थी। इरविन के अनुसार "उसका जीवन सादा और परिश्रमी था, जीवन में शायद ही उसने कभी अवकाश मनाया हो।" हन्टर के अनुसार, "उसका जीवन आदर्श होता यदि उसे अपने राह से हटाने के लिये उनका पिता न होता, हत्या करने के लिये कोई भाई न होता और दमन तथा अत्याचार करने के लिये प्रजा में हिन्दू न होते।"

मुराद—मुराद शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र था। वह एक साहसी तथा वीर योद्धा था वह बड़ा विलासी, शराबी तथा बुद्धिहीन था। वह इतना बुद्धू था कि उसे बड़ी सरलता से धोखा दिया जा सकता था। बर्नियर कहता है, "उसका प्रत्येक क्षण यही सोचते बीतता था कि वह किस प्रकार की नई रंगीनी में

मस्त हो, किस प्रकार की शराब पिये और किस प्रकार युद्ध क्षेत्र में अपना जौहर दिखाये।"

**सिंहासन के लिये युद्ध**––ज्योंही शाहजहाँ की चिन्ताजनक बीमारी का समाचार राजकुमारों ने सुना वे सिंहासन प्राप्त करने की तैयारियां करने लगे। शाहशुजा और मुराद दोनों ने ही शाही उपाधि धारण कर ली और अपने-अपने नाम के सिक्के चालू कर दिये। औरंगजेब यह सब कुछ बड़ी सावधानी के साथ देखता रहा। उसकी बहिन रोशनआरा सब घटनाओं की सूचना उसे भेजती रही। इसके पश्चात् उसने मुराद से वार्ता आरम्भ की। दोनों के बीच सन्धि की शर्तों के अनुसार पंजाब, काबुल, काश्मीर और सिन्ध में मुराद की और भारत के शेष भाग पर औरंगजेब की अधीनता होगी। इस समझौते के पश्चात् दोनों की सेनायें आगरे की ओर बढ़ीं और मालवा में दिपालपुर के बाहर परस्पर मिल गईं।

आरम्भ में सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह की आधीनता में शाहशुजा का सामना करने के लिये एक सेना भेजी गई जिसने फरवरी १६५८ ई० में बहादुर **गढ़ के युद्ध में** शाहशुजा को बुरी तरह पराजित किया। इसके पश्चात दारा शिकोह ने जसवन्तसिंह और कासिम खाँ को औरंगजेब तथा मुराद के विरुद्ध युद्ध करने के लिये भेजा। अप्रैल मास में **धरमत** नामक स्थान पर युद्ध हुआ जिसमे औरंगजेब तथा मुराद को विजय प्राप्त हुई। अब दारा स्वयं अपने भाइयों के विरुद्ध आगे बढ़ा। उसने सुलेमान शिकोह तथा जयसिंह की विजयी सेना के वापिस लौटने की भी प्रतीक्षा नहीं की। इसके अतिरिक्त दुर्भाग्य से जिस सेना का नेतृत्व दारा कर रहा था, उसकी सहानुभूति उसकी अपेक्षा औरंगजेब के साथ अधिक थी। इन परिस्थितियों में २९ मई, १६५८ ई० को **सामूगढ़ का युद्ध** हुआ। युद्ध बड़ा भयंकर हुआ। आरम्भ में युद्ध का रुख दारा के पक्ष में था। परन्तु उसका हाथी घायल हो गया और वह मूर्खता से हाथी से उतर घोड़े पर सवार हो गया। जब उसकी सेना ने दारा का हाथी न देखा तो उसने यह समझ लिया कि दारा मारा गया। डा० स्मिथ के अनुसार 'केवल इसी घटना ने युद्ध के परिणाम को बदल दिया।" दारा की सेना मैदान छोड़कर भाग गई और मैदान मुराद तथा औरंगजेब के हाथ रहा।

अब औरंगजेब आगरा पहुँचा। दारा उसके पहले ही लज्जित होकर बिना अपने पिता से मुलाकात किये ही अपने बाल बच्चों को लेकर दिल्ली की ओर चला गया। औरंजेब ने आगरे के किले का घेरा डाल दिया। पहले तो शाहजहाँ औरंगजेब के सामने नतमस्तक होने के लिये तैयार न हुआ परन्तु अन्त में विवश होकर उसे ऐसा करना पड़ा। औरंगजेब ने सम्राट के सब अधिकार छीन लिये और उसे राज-प्रासाद में बन्दी बना कर रख दिया।

शाहजहाँ को बन्दी बनाने के उपरान्त औरंगजेब ने मुराद से छुटकारा पाने का प्रयत्न किया। उसने उसे एक दावत दी और उसमें उसे खूब शराब पिलाई।

सोते समय उसे कैद करके रातों रात ग्वालियर के किले में भेज दिया। वहाँ वह तीन साल तक बन्दी गृह में पड़ा रहा। इसके उपरान्त उसका वध कर दिया गया।

अब औरंजेब ने दारा का पीछा किया। दारा अपनी रक्षा के लिये दिल्ली से लाहौर, लाहौर से मुल्तान, और मुल्तान से सक्कर की ओर भाग रहा था। अन्त में वह दादर पहुँचा। वहाँ के शासक ने दारा के साथ विश्वासघात किया और उसे कैद कर औरंगजेब के हवाले कर दिया। औरंगजेब ने दारा को एक बड़े ही निकृष्ट वेश में एक नंगे हाथी पर बिठाकर सारे नगर में घुमाया और फिर उसका वध करा दिया।

अब औरंगजेब के भाइयों में केवल शाहशुजा बचा था। अक्टूबर १६५८ में उसने 'खनवा' के युद्ध में शुजा को भी पराजित कर दिया। पराजित होकर शुजा मुंगेर की ओर भाग गया। मीर जुमला ने उसका पीछा किया। कई स्थानों पर पराजित होकर वह ढाका भाग गया। मीर जुमला ने वहाँ भी उसका पीछा किया। अब वह अराकान भाग गया। वहाँ के सरदारों ने उसका वध कर दिया।

इस प्रकार अब निर्विरोध औरंगजेब सिंहासन पर बैठ गया सन १६५९ में बड़े समारोह के साथ दिल्ली में उसका राज्याभिषेक हुआ

## उत्तराधिकार युद्ध में औरंगजेब की सफलता के कारण

उत्तराधिकार के इस युद्ध में औरंगजेब की सफलता के निम्नलिखित कारण थे :—

(१) औरंगजेब अपने सब भाइयों में सब से महान सेनापति एवं कुशल शासक था। कूटनीति में उसका कोई मुकाबिला नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त वह कट्टर मुसलमान था। अतः सभी कट्टर मुसलमान सरदारों की शुभकामनायें एवं सहायता प्राप्त थी।

(२) दारा के मुसलमान साथी उसके साथ विश्वासघात करते थे। इसके विपरीत औरंगजेब की ओर से मुसलमान दृढ़ निश्चय और उत्साह से लड़ते थे। वे औरंगजेब को सुन्नी कट्टर पंथी का प्राणदाता समझते थे।

(३) दारा किसी भी प्रकार औरंगजेब का जोड़ नहीं था। औरंगजेब दारा से राजनीति, सैन्य संचालन और शासन कला सभी क्षेत्रों में कहीं अधिक सिद्धहस्त था। इसके अतिरिक्त सामूगढ़ के युद्ध में दारा ने सबसे बड़ी गलती यह की कि वह हाथी से उतर कर घोड़े पर चढ़ गया और उसकी सेना ने उसे मरा समझ लिया। इसके अतिरिक्त दारा को मुराद और औरंगजेब से युद्ध करने के लिये आगे न बढ़कर अपने पुत्र सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह की विजयवाहिनी की प्रतीक्षा करनी चाहिये थी। यदि उसने इस सेना की प्रतीक्षा करली होती तो उसकी सैनिक शक्ति बढ़ जाती और उसकी विजय की सम्भावना भी अधिक हो जाती।

(४) औरंगजेब की सफलता का एक कारण शाहजहां की निर्बलता और मूर्खता भी थी। उसने अपनी मृत्यु के समाचार को फैलने से रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उसने जैसे ही मुराद तथा औरंगजेब की सेनाओं की प्रगति सुनी थी, उसे मुगल सेना का नेतृत्व करके इनको पराजित कर देना चाहिए था। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि यदि शाहजहां युद्ध स्थल पर पहुँच जाता तो औरंगजेब के बहुत से समर्थक उसका साथ छोड़ देते, क्योंकि ऐसी अवस्था में राज्य प्राप्ति के लिए युद्ध की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। परन्तु दुर्भाग्य से यह सब कुछ न हो सका।

(५) औरंगजेब का तोपखाना दारा के तोपखाने से कहीं अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ। मूर्खतावश दारा अपने तोपखाने से भी आगे बढ़ आया जिससे उसका तोपखाना बेकार हो गया।

(६) दारा की सेनाओं के मुसलमानों तथा राजपूतों में एकता नहीं थी। इस लिये वे कभी भी मिलकर दृढ़तापूर्वक युद्ध नहीं कर सके। औरंगजेब ने दारा की अपेक्षा अधिक सावधानी तथा चतुराई से काम लिया। उसने अपनी सेना का कुछ भाग सुरक्षित रख लिया और उसका प्रयोग उस समय किया जब कि दारा की सेना थक चुकी थी।

(७) दारा के अतिरिक्त औरंगजेब के दो भाई और शेष थे—मुराद और शुजा—वे किसी भी प्रकार योग्यता एवं कार्य कुशलता में औरंगजेब का मुकाबला नहीं कर सकते थे। मुराद को तो औरंगजेब ने दारा को पराजित करने के उद्देश्य से अपनी तरफ मिला लिया था। और जब उसका उल्लू सीधा हो गया तो उसने मुराद को खूब शराब पिला कर कैद कर लिया और रातों रात ग्वालियर के किले में बन्दी रूप में भेज दिया जहां तीन वर्ष पश्चात् उसका वध कर दिया गया।

जहां तक शुजा का प्रश्न है, औरंगजेब ने मीर जुमला की सहायता से उसे भी कई स्थानों पर पराजित किया। अन्त में पराजित होकर वह अराकान भाग गया। जहां अराकानियों ने उसका वध कर दिया।

इस प्रकार उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब को ही सफलता मिली और वही सम्राट बना।

———

# औरंगजेब १६५८–१७०७

# (AURANGZEB 1658—1707 A. D.)

प्रश्न—औरंगजेब के शासन काल की मुख्य घटनाओं का उल्लेख कीजिये और उसके चरित्र की समीक्षा कीजिए।

Q. I. Describe the main events of the reign of Aurangzeb and give an estimate of his character.

## औरंगजेब का शासन काल (१६५८ से १७०७ तक)

उत्तर—औरंगजेब शाहजहां तथा मुमताजमहल के १४ वालकों में छटा पुत्र था। उसका जन्म सन् १६१६ ई० में अहमदावाद तथा मालवा प्रान्तों की सीमा पर स्थित 'धूद' नामक स्थान पर हुआ था। अपने भाइयों में वही सबसे योग्य तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। अपनी योग्यता का परिचय वह अपने पिता के शासन काल में कई बार दे चुका था। सन् १६५७ ई० में जब उसका पिता शाहजहाँ सख्त बीमार पड़ा तो उत्तराधिकार के युद्ध में अपने तीनों भाइयों को पराजित करके तथा उनको अपने मार्ग से सदैव के लिए हटाकर वह सन् १६५८ ई० में सिंहासन पर बैठा।

## औरंगजेब के शासन काल की प्रमुख घटनाएं

औरंगजेब के शासन काल की मुख्य घटनायें ये थीं—(i) हिन्दू विरोधी नीति तथा उसके परिणाम (ii) राजपूतों के साथ सम्बन्ध (iii) उत्तरी-पूर्वी सीमा नीति (iv) उत्तर-पश्चिमी सीमा नीति तथा (v) दक्षिणी नीति तथा उसके परिणाम।

अब हम उसकी प्रत्येक नीति तथा घटना पर अलग अलग प्रकाश डालेंगे।

### (i) हिन्दू विरोधी नीति तथा उसके परिणाम

औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। अतः उसने अपने पूर्वजों की उदारता और सहिष्णुता की नीति को त्याग दिया और अत्यन्त कठोर तथा असहिष्णुता की नीति का आलिंगन किया। उसने हिन्दुओं पर तरह तरह के अत्याचार किये, उनके मन्दिरों को नष्ट कराकर उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाईं और मूर्तियों को तुड़वाकर या तो कसाइयों को माँस तोलने के लिए दे दिया या उन्हें दिल्ली की जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर पद-दलित होने के लिए डलवा दिया

इस प्रकार उसने अहमदाबाद में चिन्तामणि का मन्दिर उड़ीसा के मन्दिर, मथुरा का केशवराय का मन्दिर, बनारस का विश्वनाथ का मन्दिर तथा सोमनाथ का दूसरा मन्दिर नष्ट करा दिये।

यह नहीं बल्कि उसने हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृति को नष्ट करने का भी प्रयत्न किया। उसने हिन्दुओं की शिक्षण संस्थाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया, उन्हें आर्थिक सहायता देनी बन्द कर दी और उनमें धार्मिक शिक्षा देनी बन्द करादी।

उसने हिन्दुओं पर जजिया कर भी लगाया और जब उन्होंने इसका विरोध किया तो उन पर पागल हाथी चलवा दिया गया।

औरंगजेब ने हिन्दुओं को सरकारी नौकरी से भी वंचित करना शुरू कर दिया। माल विभाग के हिन्दू कर्मचारियों पर बेईमानी का दोष लगाकर उन्हें नौकरी से अलग कर दिया और उनके स्थान पर मुसलमान कर्मचारियों को नियुक्त किया। जब मुसलमान कर्मचारियों से माल विभाग का काम न संभला तो विवश होकर उसे मुसलमान कर्मचारियों के नीचे हिन्दुओं की नियुक्ति करनी पड़ी।

इतना ही नहीं, बल्कि औरंगजेब ने हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिये प्रोत्साहन भी दिया। ऐसे व्यक्तियों को खूब इनाम दिया जाता था, जजिया से बरी कर दिया जाता था और सरकारी नौकरी मिलती थी।

धार्मिक क्षेत्र में उसके इन अत्याचारों के परिणामस्वरूप जगह २ पर विद्रोह हुए जिनमें मुख्य निम्नलिखित थे।

(१) मथुरा में गोकुल जाट का विद्रोह।

(२) सतनामियों का विद्रोह।

(३) सिक्खों का विद्रोह। सिक्खों पर तो औरंगजेब के और भी अधिक अत्याचार हुए थे। उसने सिक्खों के गुरु तेगबहादुर की हत्या करादी और गुरु गोविन्द सिंह के दोनों पुत्रों को दीवार में चिनवा दिया था।

(४) राजपूतों का विद्रोह।

(५) दक्षिण में मराठों का उदय।

इन सब विद्रोहों को विस्तार में पढ़ने के लिए प्रश्न न० ४ का उत्तर देखिये।

## (ii) राजपूतों के साथ सम्बन्ध

औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता की नीति के फलस्वरूप राजपूत भी, जिन्होंने लगभग १०० वर्षों तक मुगल साम्राज्य की सच्चे हृदय से सेवा की थी, उसके शत्रु बन गये और मुगल साम्राज्य से उनका संघर्ष होने लगा।

(१) मारवाड़ के साथ संघर्ष:—मारवाड़ के राजा जसवन्त सिंह ने औरंगजेब की काफी सहायता की थी। सन् १६७९ ई० में राजा की मृत्यु हो

गई। उसके कोई पुत्र न था। अतः औरंगजेब ने उसके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु थोड़े दिन पश्चात् ही जसवन्त सिंह की विधवा रानी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम "अजीत सिंह" रक्खा गया। औरंगजेब चाहता था कि अजीत सिंह का पालन-पोषण मुगल दरबार में किया जाये। किन्तु मारवाड़ के स्वामिभक्त मन्त्री वीर दुर्गादास ने इसका तीव्र विरोध किया और मुगलों से युद्ध छिड़ गया। दुर्गादास की सहायता से जसवन्त सिंह की रानियाँ अजीतसिंह को लेकर जोधपुर पहुँच गईं और मेवाड़ के राणा राजसिंह की सहायता से मारवाड़ की स्वतन्त्रता की रक्षा करने की कोशिश की गई। जब औरंगजेब ने मारवाड़ पर चढ़ाई की तो दुर्गादास ने डटकर मुकाबिला किया और औरंगजेब अन्त तक मारवाड़ को विजय न कर सका। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र बहादुरशाह ने अजीत सिंह को मारवाड़ का राजा स्वीकार करके युद्ध का अन्त कर दिया।

(२) **मेवाड़ के साथ युद्ध**—मारवाड़ राज्य को सहायता देने के कारण मेवाड़ का राणा राजसिंह भी औरंगजेब का शत्रु हो गया। अतः अवसर पाकर उसने शहजादा अकबर को मेवाड़ के विरुद्ध युद्ध करने को भेजा। परन्तु शहजादा राजपूतों से मिल गया। इसलिये औरंगजेब को स्वयं मेवाड़ आना पड़ा और उसने राणा को सन्धि करने पर विवश किया। इसी समय राणा की मृत्यु हो गई। अतः औरंगजेब ने उसके उत्तराधिकारी जयसिंह को राजा मान लिया और उसके साथ उदारता का व्यवहार किया।

(३) **अकबर का विद्रोह**:—जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है मेवाड़ पर आक्रमण करने के बजाय औरंगजेब का पुत्र अकबर राजपूतों से मिल गया था। औरंगजेब ने उस समय चालाकी से काम लिया। उसने अकबर को एक पत्र लिखा जिसमें उसकी बड़ी प्रशंसा की गई और उसे इस बात पर बधाई दी कि उसने चालाकी से राजपूतों से मिलकर उनकी बरबादी का बड़ा अच्छा उपाय सोचा है। दुर्भाग्यवश यह पत्र राजपूतों के हाथ लग गया। इससे उन्हें अकबर पर शक हो गया। अतः विवश होकर अकबर को अपने प्राणों की रक्षा के लिये वहाँ से भागना पड़ा। अब वह मरहठा सरदार शम्भा जी के पास पहुँचा। किन्तु यहां से भी उसे भागना पड़ा। अब वह फारस के शाह के पास पहुँचा। वहीं पर उसने अपने जीवन के शेष दिन बिताये।

## (iii) उत्तरी पूर्वी सीमा नीति

औरंगजेब को अपने शासन काल के आरम्भ में ही उत्तरी-पूर्वी सीमा की समस्या को सुलझाना पड़ा। आसाम में **अहोम लोगों** ने अपनी राजसत्ता स्थापित कर ली थी। उधर मुगल सीमा भी कामरूप तक पहुँच गई थी। अतः अहोम लोगों का मुगलों से संघर्ष होना अनिवार्य सा हो गया था।

**अहोम लोगों के विरुद्ध कार्यवाही**—सन् १६५८ ई० में कूच विहार के अहोम राजा ने मुगल साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया और कामरूप की राजधानी गोहाटी

पर भी अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। अतः सन् १६६० ई० में जब मीर जुमला बंगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ, उसने अहोम लोगों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की। उसने कूच बिहार पर आक्रमण करके आसानी से उसे तथा आसाम को विजय कर लिया। बहुत दिनों तक युद्ध चलता रहा। अन्त में अहोम राजा को सन्धि करनी पड़ी। उसे बहुत सा धन मुगलों को लड़ाई के हर्जाने के रूप में देना पड़ा। उसने मुगलों को वार्षिक कर देने का भी वचन दिया और कुछ जिले उनके हवाले कर दिये। परन्तु मुगलों की यह विजय स्थायी सिद्ध न हो सकी। कुछ ही वर्ष बाद अहोम राजा ने कामरूप पर फिर अपना अधिकार जमा लिया।

## iv. उत्तर-पश्चिमी सीमा नीति

भारत के उत्तर पश्चिम में बड़ी ही असभ्य तथा युद्ध प्रेमी जातियाँ निवास करती थीं। मुगलों का सदैव इनसे युद्ध चलता रहता था। अतः औरंगजेब को भी इन जातियों से लोहा लेना पड़ा।

**(१) युसुफजाई कबीले का विद्रोह**—सन् १६६७ ई० में युसुफजाई कबीले के लोगों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। ये लोग सिन्धु नदी को पार करके हजारा जिले में तथा अटक और पेशावर जिले तक लूटमार करने लगे थे। अतः इन लोगों के विद्रोह को शान्त करने लिये औरंगजेब ने अपनी सेनायें भेजीं। मुगल सेनापति 'मुहम्मद अमीन खां' ने विद्रोहियों की बुरी तरह पराजित कर वहां पर शान्ति स्थापित की।

**(२) अफरीदी कबीले का विद्रोह**—सन् १६७२ ई० में अफरीदियों ने अपने नेता "अकमल खाँ" के नेतृत्व में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। काबुल के मुगल सूबेदार ने इस विद्रोह को शान्त करने का प्रयत्न किया परन्तु वह असफल रहा। अकमल खां ने उसे बुरी तरह परास्त करके उसके सम्पूर्ण परिवार को बंदी बना लिया। मुगलों को इस युद्ध में धन तथा जन की बड़ी क्षति उठानी पड़ी और इस पर भी शत्रु का विद्रोह शान्त न किया जा सका।

**(३) खटक कबीले का विद्रोह**– अफरीदियों की विजय से पठान कबीलों का उत्साह बहुत बढ़ गया और खटक नामक कबीले ने भी विद्रोह कर दिया। ये लोग अफरीदियों से मिलकर मुगल सेना पर आक्रमण करने लगे। औरंगजेब ने सुजात खां तथा जसवन्त सिंह को इस विद्रोह को दबाने के लिये भेजा। सैनिक शक्ति के साथ औरंगजेब ने कूट नीति का भी आश्रय लिया और धन, जागीरें तथा पद देकर बहुत से अफगान सरदारों को अपनी तरफ मिला लिया। इस प्रकार के संघर्ष तथा प्रयत्नों के पश्चात् खटक कबीले का विद्रोह शान्त हुआ।

औरंगजेब को अपनी इस उत्तरी पश्चिमी सीमा नीति में अपार धन व्यय करना पड़ा, उसकी सैनिक शक्ति पर भी बड़ा आघात लगा और उधर दक्षिण में शिवाजी को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिल गया।

## (४) दक्षिण भारत की समस्या

औरंगजेब बड़ा ही महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी था। अपने शासन काल के प्रथम २५ वर्ष उसने उत्तरी भारत को पूर्णतः अपने अनुशासन में लाने में व्यतीत किये थे। उसके पश्चात् उसकी दृष्टि दक्षिणी भारत की ओर गई। इन दिनों दक्षिण भारत में तीन प्रधान शक्तियां थीं—बीजापुर, गोलकुण्डा तथा मराठे। बीजापुर तथा गोलकुण्डा की रियासतें शियामत के मानने वाली थीं। अतः वह इन रियासतों को परास्त कर मुगल साम्राज्य में मिलाना चाहता था और मरहठों की बढ़ती हुई शक्ति को वह रोकना चाहता था।

औरंगजेब ने किस प्रकार चढ़ाई करके बीजापुर तथा गोलकुण्डा राज्यों की स्वतन्त्रता का विनाश किया और उन्हें अपने साम्राज्य में मिलाया तथा उसका मराठों से किस प्रकार संघर्ष हुआ उसके लिये प्रश्न नं० ३ का उत्तर पढ़िये।

## औरंगजेब का चरित्र तथा पर्यवेक्षण

यह बात पूर्णतः निर्विवाद है कि औरंगजेब जीवन के कई पहलुओं में एक आदर्श पुरुष था। वह अपने जीवन में पवित्र और स्वभाव से सादा था। उसके समकालीन उसे "शाही चोगा पहने हुए दरवेश" कहा करते थे। वह विलासिता से पूर्णतः शून्य और अमीरों के न्यून से न्यून आरामों के प्रति भी उदासीन था। इस प्रकार उसका जीवन बड़ा सादा था। कुरान की नकल करके उसकी प्रतिलिपियाँ वह मक्का भेजा करता था और उनकी आमदनी से अपना तथा अपने परिवार का खर्च चलाया करता था। उसकी पत्नियों की संख्या चार से कम थी और वह उनके प्रति सर्वथा सच्चा रहा। वह बहुत कम भोजन करता था, केवल तीन घण्टे सोता था और मदिरा पान बिल्कुल नहीं करता था। रंगीन वस्त्र, हीरा-जवाहरत वह बहुत कम प्रयोग करता था। उसका चरित्र बड़ा निर्मल था। उसका बादशाही आदर्श बड़ा उच्च था। वह कहा करता था, "सम्राटों को आराम और सुस्ती वर्जित है, क्योंकि इसी कारण साम्राज्य नष्ट हो जाते हैं।"

वह मुगलवंश का एक महान सम्राट था। उसकी शारीरिक शक्ति उच्च कोटि कोटि की थी। सेनापतित्व के गुणों में युवावस्था में ही उसने बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली थी। उसके रणकौशल को देखकर बड़े-बड़े सेनापति दाँतों तले अंगुली दबाते थे और उसके युद्ध आयोजन की शक्ति को देख प्रशंसा किये बिना न रहते थे। उसकी स्मरण शक्ति भी आश्चर्यजनक थी। वह एक बार देखा हुआ चेहरा अथवा सुना हुआ शब्द नहीं भूलता था। उसकी शारीरिक शक्तियां अन्तिम समय तक अक्षुण्ण बनी रहीं। जीवन के अन्तिम दिनों में वह थोड़ा सा बहरा और दाहिने पैर से कुछ लंगड़ा अवश्य हो गया था। राजनीति में वह असाधारण रूप से दक्ष था। किसी भी प्रकार के षड्यन्त्रों अथवा गुप्त चालों से उसे जीतना असम्भव था। वह लेखनी और तलवार दोनों का ही दक्ष आचार्य था। वह एक बहुत बड़ा विद्वान भी था। इस्लाम की धार्मिक पुस्तकें, नीतिशास्त्र, अरबी, आईन और फारसी

साहित्य का उसे अच्छा ज्ञान था । कुरान उसे जबानी याद था । कविता करने का भी उसे शौक था । परन्तु नृत्य, गान एवं कला के प्रदर्शन में उसे कोई रुचि न थी । मुस्लिम कानून का सबसे बड़ा ग्रन्थ 'फतवाये-आलमगीरी' इसी की संरक्षता एवं राज्यकाल में लिखा गया था ।

औरंगजेब अपने धर्म का भी बड़ा पाबन्द था । वह नमाज रोजा, हज्ज, जव्यात आदि के बारे में कुरानशरीफ के नियमों का अक्षरशः पालन करता था । रमजान के महीने में वह रोजा रखता था । इसकी हज्ज करने की भी बड़ी इच्छा थी, परन्तु राजकार्यों के कारण यह पूर्ण न हो सकी ।

इन सब गुणों के अतिरिक्त उसमें कुछ दोष भी थे । उसमें कौटुम्बिक प्रेम बहुत कम था । पिता का बन्दी बनाया जाना तथा भाई व भतीजों की हत्या उनके नाम को सदैव कलंकित करती रहेंगी । यही नहीं, बल्कि वह अपने पुत्रों व पुत्रियों को भी सन्देह की दृष्टि से देखा करता था । उसका बड़ा लड़का सुल्तान मृत्युपर्यन्त वन्दीगृह में पड़ा रहा, मोअज्जम भी आठ वर्ष कैदखाने में ही व्यतीत करने पड़े थे । यही नहीं बल्कि उसकी पुत्री जेबुन्निसा को भी अपने जीवन के अन्तिम दिन सलीम-गढ़ के किले में नजरबन्दी की दशा में व्यतीत करने पड़े थे । स्वभाव का अविश्वासी होने के कारण उसे अगणित कार्य स्वयं ही करने पड़ते थे । अतः असाधारण निपुणता, प्रतिभा और धैर्य होते हुए भी वह सफल न बन सका ।

औरंगजेब के चरित्र का सबसे बड़ा अवगुण उसका धार्मिक पक्षपात, कट्टरता एवं हृदयहीनता थी । इस धार्मिक अत्याचार एवं कट्टरता ने हिन्दुओं, राजपूतों सिक्खों, मराठों तथा शिया मुसलमानों को कट्टर शत्रु बना दिया और इतना गुण सम्पन्न होते हुए भी वह अपने शासन प्रबन्ध में पूर्णतः असफल रहा । यही नहीं बल्कि वह अपने विशाल साम्राज्य के पतन के बीज भी बो गया । यदि उसमें धार्मिक कट्टरता न होती तो मुगल साम्राज्य में उससे प्रतिभाशाली एवं सफल शासक और कोई न होता । एक विद्वान का कथन है कि "एक मुस्लिम राष्ट्र के लिए वह एक आदर्श शासक होता यदि वह केवल मुस्लिम देश का राजा होता ।'' दुर्भाग्यवश वह एक ऐसे देश पर शासन करने में अयोग्य था जिसमें बहुसंख्यक प्रजा गैरमुस्लिम थी ।"

---

**प्रश्न २—मराठों के साथ औरंगजेब का क्या सम्बन्ध था ? वह उन्हें पराजित करने में क्यों असफल रहा ?**

**Q. 2. Give an account of Aurangzeb's relations with the Marathas and show why he failed to subtence them.**

**उत्तर—(१) मराठों का उत्कर्ष**—महाराष्ट्र के विस्तृत पहाड़ी प्रदेश में फैली हुई मराठा जाति को संगठित करने तथा उसे एक राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का

श्रेय बहुत हद तक शिवाजी को ही है। परन्तु पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी के धार्मिक आन्दोलन ने भी इस प्रदेश के निवासियों में नवीन आशा एवं आदर्शों की स्थापना की। असमतल तथा पथरीली भूमि, वर्षा का अभाव तथा उपज की कमी के कारण वहां के निवासियों का जीवन संघर्ष मय बन गया था और आपत्तियों का सामना करने की उनमें पूरी शक्ति उत्पन्न हो गई थी! उनमें आत्म-निर्भरता, साहस, शक्ति तथा सामाजिक समानता के भाव पर्याप्त मात्रा में मौजूद थे। **सन्त एकनाथ, तुकाराम, रामदास और वामन पण्डित** आदि ने समानता के अतिरिक्त वहां के मनुष्यों में सामाजिक सुधार एवं राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न कर दी थी। इन सन्तों ने स्वधर्म तथा स्वदेश की रक्षा के लिए इनमें प्रेरणा का संचार किया। अब केवल उनमें राजनैतिक संगठन की आवश्यकता थी जिस काम को शिवाजी ने पूर्ण रूप से पूरा किया।

(२) **शिवाजी और औरंगजेब**—शिवाजी अपने देश को विदेशी सत्ता और उसके अत्याचारी हाथों से मुक्त करने के बड़े इच्छुक थे। अपने देश को स्वतन्त्र करने के लिए उन्होंने हर प्रकार से प्रयत्न किया। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा और वातावरण ने उनके हृदय में स्वातन्त्र्य प्रेम का भाव उत्पन्न कर दिया था। इस प्रकार उनका उद्देश्य ब्राह्मणों और गउओं की रक्षा और मुगलों को देश से बाहर निकाल कर एक मराठा साम्राज्य स्थापित करना था। अपने इन उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए शिवाजी ने बीजापुर सुल्तान के विरुद्ध युद्ध करके उसके बहुत से किलों पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार अपनी शक्ति बढा लेने के उपरान्त अब शिवाजी ने मुगल साम्राज्य पर भी छापा मारना तथा उसे लूटना शुरू कर दिया। इस पर क्रोधित होकर औरंगजेब ने शिवाजी को गिरफ्तार करने के लिए अपने **शाइस्ता खां** को दक्षिण की ओर भेजा। मुगल सेनापति ने पूना पर अधिकार कर लिया। परन्तु एक रात्रि को शिवाजी ने एक बालक को दूल्हा बना कर ४०० मराठा सिपाहियों को बराती बना कर पूना में शादी का जलूस निकाला और अर्ध रात्रि में उन्होंने इन्हीं आदमियों को ले शाइस्ता खां के निवास स्थान पर हमला किया जिसमें शाइस्ता खां का पुत्र एवं संरक्षक मार डाला गया और शाइस्ता खां भी घायल होकर खिड़की से बाहर कूद कर अपनी जान बचा कर भाग निकला। अब औरंगजेब और भी आग बबूला हो गया। उसने दूसरी सेना राजा जसवन्त सिंह की अध्यक्षता में शिवाजी के विरुद्ध भेजी। परन्तु इस सेना को विशेष सफलता न प्राप्त हो सकी। उधर शिवाजी ने सन १६६४ ई० में राजा की उपाधि धारण की और अपने नाम की मुद्रायें चलानी शुरू कर दीं। दूसरे वर्ष उन्होंने सूरत नगर को लूटा। अब औरंगजेब ने राजा जयसिंह तथा दिलेर खां को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। इन सेनापतियों ने शिवाजी के अनेक किले छीन लिए। इसलिए मजबूर होकर शिवाजी को पुरन्दर में सन्धि करनी पड़ी और जयसिंह के आश्वासन पर वे मुगल दरबार में उपस्थित हुए। मुगल दरबार में शिवाजी का अपमान हुआ और उन्हें आगरे के किले में नजरबन्द कर दिया गया. परन्तु शीघ्र ही शिवाजी धोखा देकर वहां से निकल भागे और रास्ते के

अनेक हिन्दुओं के पवित्र स्थानों के दर्शन करते हुए दक्षिण में पहुँच गए। अब उन्होंने दक्षिण के अनेक स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया और पुनः लूटमार आरम्भ कर दी। औरंगजेब ने विवश होकर १६६६ ई० में उनसे सन्धि कर ली और उन्हें स्वतन्त्र राजा मान लिया। पाँच वर्ष तक शान्ति रही परन्तु बाद को यह शान्ति औरंगजेब के दुष्प्रयत्नों से भग हो गई। शिवाजी ने दूसरी बार सूरत को लूटा, खानदेश पर आक्रमण किया और अनेक शाही किलों पर अधिकार कर लिया। साथ ही उन्होंने मुगलों के विरुद्ध बीजापुर और गोलकुण्डा के सुलतानों की सहायता करनी भी प्रारम्भ कर दी। अब सम्पूर्ण महाराष्ट्र उनके आधीन था और उन्होंने छत्रपति की उपाधि धारण कर ली। उन्होंने अपने राज्य का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया और सन् १६८० ई० में परलोक सिधारे।

**(३) शम्भा जी और औरंगजेब**—शिवाजी के पश्चात उनके पुत्र शम्भाजी राज्य के उत्तराधिकारी हुए। उनके शासन-काल में एक और नवीन घटना हुई जिसने मराठा-मुगल संघर्ष को और तीव्र बना दिया। औरंगजेब का विद्रोही पुत्र अकबर राजस्थान से भागकर शम्भा जी की शरण में आ गया था और इस प्रकार औरंगजेब के विरुद्ध दक्षिण में मराठों, राजपूतों तथा अकबर का संघ बन रहा था जिससे स्थिति दिन पर दिन भयानक होती जा रही थी। अतः इस संघ को भंग करने तथा शाहजादे अकबर को अलग करने के लिए वह सन् १६८२ ई० में एक बड़ी सेना को साथ लेकर दक्षिण की ओर चल पड़ा और फिर अपने जीवन के शेष पच्चीस वर्ष औरंगजेब को दक्षिण में व्यतीत करने पड़े। उसके पुत्र आजम और मुअज्जम ने शम्भा जी के राज्य पर आक्रमण कर दिया, परन्तु उन्हे कोई सफलता न मिली। शम्भा जी में अपने पिता की दृढ़ता और कूटनीतिज्ञता न थी। अतः शहजादा अकबर भी परेशान होकर तथा अपनी रक्षा की पूरी व्यवस्था न देखकर ईरान भाग गया। जब औरंगजेब को बीजापुर तथा गोलकुण्डा से फुरसत मिली तो उसने मराठों पर फिर आक्रमण कर दिया और उनके अनेक किलों पर अधिकार कर लिया। आन्तरिक कलह एवं असन्तोष के कारण शम्भा जी मुगलों का प्रतिरोध करने में असमर्थ रहा। एक बार वह अपने कुछ साथियों सहित कैद भी कर लिया गया। औरंगजेब ने अनेक प्रकार से शम्भा जी का अपमान कर अन्त में उसके सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि वह अपने सारे किले मुगलों को दे दे और अपना छिपा हुआ खजाना तथा मराठों से मिलकर षड्यन्त्र रचने वाले मुगल अफसरों का नाम बतला दे। शम्भा जी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और उल्टे बादशाह को गालियाँ दीं। इस पर शम्भा जी की आँखें निकलवा ली गईं और पन्द्रह दिन की घोर यातनाओं के पश्चात् उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दिये गये और उसका माँस कुत्तों के सामने फेंक दिया गया।

**(४) राजाराम और औरंगजेब**—शम्भा जी की दुखदः मृत्यु के पश्चात् मराठों ने शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम को अपना छत्रपति बनाया और उसके नेतृत्व में युद्ध जारी रक्खा। औरंगजेब ने एक मुगल सेना इश्तकाद खाँ के सेनापतित्व में राजाराम को कैद करने तथा रायगढ़ पर अधिकार जमाने के लिये भेजी। इस सेना

ने मराठों की राजधानी रायगढ़ पर अधिकार करके सम्भा जी के कुटुम्ब के साथ-साथ उसके छोटे पुत्र साहू को भी पकड़ लिया जो उस समय अवस्था में बहुत ही छोटा था। परन्तु राजाराम एक योगी के वेश में निकल भागे और उन्होंने कर्नाटक में जिन्जी के किले में शरण ली। उस समय एक ओर पूर्वी किनारे पर जिन्जी मराठों का उद्योग केन्द्र बन गया और दूसरी ओर पश्चिम में मराठे मन्त्री मुगलों का सामना करने के लिए संगठित होने लगे। इस प्रकार मराठों का केन्द्रीय शासन लुप्त हो गया। परन्तु इससे औरंगजेब की कठिनाइयां और भी अधिक बढ़ गई। उसे अब प्रत्येक मराठा सरदार से युद्ध करना पड़ता था। अब यह राष्ट्र गृह युद्ध न होकर युद्ध हो गया था।

सन् १६९० ई० के बाद मराठे फिर विजयी होने लगे। सन् १६९५ के अन्त तक सन्त जी ने कासिम खां और हिम्मत खाँ नामक दो मुगल सेनापतियों को पराजित किया जो युद्ध में अपने जीवन से हाथ धो बैठे। अगले चार वर्षों में मराठे बराबर मुगल शक्ति का सामना करते रहे और उन्होंने मुगलों के सम्मान को बहुत अधिक धक्का पहुंचाया। मुगलों को केवल एक ही सफलता प्राप्त हो सकी। १६९८ में उनका जिन्जी पर अधिकार हो गया, परन्तु राजाराम सतारा भाग गए जहाँ उन्होंने मुगलों का सामना करने के लिये एक नई सेना का संगठन किया। परन्तु दुर्भाग्य से सन् १७०० में राजाराम की मृत्यु हो गई और उनके मन्त्री ने बादशाह औरंगजेब से सन्धि कर ली। सतारा मुगलों के हाथों में सौंप दिया गया। १७०४ तक मुगलों ने तोरण, पाली, खेलना, कोंडाना और रायगढ़ को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। राजाराम के बाद उनके पुत्र कर्ण को राजसत्ता प्राप्त हुई परन्तु वह भी शासन के तीन सप्ताह बाद मर गया। इसके बाद ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय को गद्दी पर बैठाया जो इस समय लड़का ही था और स्वयं राज्य का संचालन करने लगी।

(५) **ताराबाई और औरंगजेब**—ताराबाई ने सुचारु रूप से शासन का संगठन किया। उसने अपने अफसरों के हृदय पर विजय प्राप्त की और उसके प्रयत्न से मराठों की शक्ति खूब बढ़ने लगी। उसने अपने विजित किलों पर फिर से अधिकार कर लिया और मुगल साम्राज्य पर आक्रमण करके उसे खूब लूटा। इससे बादशाह को बड़ी निराशा हुई। सन् १७०३ में मराठों ने बरार में प्रवेश किया। सन् १७०६ में गुजरात पर आक्रमण किया और बड़ौदा को चारों ओर से घेर लिया। अहमदनगर में भी अब मराठे सरदार खूब लूट मार करने लगे। इस प्रकार जब मुगल शक्ति और मुगल सम्मान दिन प्रतिदिन क्षीण हो रहे थे, ये मराठे स्वतन्त्र थे और औरंगजेब की मृत्यु से सात वर्ष बाद पेशवाओं के नेतृत्व में मराठों का और भी उत्कर्ष हुआ और इस बार उनकी एक दृढ़ नींव स्थापित हुई।

(६) **औरंगजेब की सफलता के कारण**—(१) औरंगजेब की इस घोर विफलता का प्रधान कारण स्वयं उसकी राजनीतिज्ञता का दिवालापन था। यदि

उसने मराठों के साथ प्रेम और सहानुभूति दिखलाई होती तो उसे मराठों के इस घोर प्रतिरोध का सामना न करना पड़ता और सम्भवतः उसे मराठों का सहयोग भी प्राप्त हो गया होता। दूसरी ओर बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतों का अन्त करके भी उसने भूल की। दक्षिण के इन राज्यों से सहयोग करके अधिक संगठित रूप से मराठों का दमन किया जा सकता था और इस प्रकार सफलता की सम्भावना अधिक बढ़ सकती थी। परन्तु धर्मान्ध एवं दुराग्रही और औरंगजेव इन दोनों में से एक भी नीति का अनुसरण न कर सका। (२) महाराष्ट्र के संगठन-कर्त्ता शिवाजी में अपार प्रतिभा थी। उनके द्वारा संगठित समस्त महाराष्ट्र युद्ध स्थल बन गया था। उनके समय में अनुभव प्राप्त सेनापतियों और विशेषकर राजाराम तथा ताराबाई के उत्साह और साहस सराहनीय थे जिसके सामने मुगलों की सारी शक्ति और साधन व्यर्थ सिद्ध हुये। (३) इस युद्ध में दो आदर्शों का संघर्ष था। एक ओर तो साम्राज्यवादी आदर्श था जिसके द्वारा महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता का अपहरण करने का प्रयत्न हो रहा था। इस आदर्श का सहायक एकमात्र सैन्यबल था। दूसरी ओर स्वतन्त्रता की रक्षा का आदर्श था। जिसकी रक्षा अदम्य उत्साह, साहस, सहनशीलता तथा धैर्य से की जा रही थी। इस नैतिक बल के सामने सैन्य बल व्यर्थ सिद्ध हुआ। इसी नैतिक बल के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र के नवयुवकों में आजीवन एवं नव स्फूर्ति का संचार हो रहा था और अपने धर्म तथा देश पर सर्वोच्च न्यौछावर करने के लिए तैयार थे। उन्होंने इस युद्ध को लोक युद्ध का स्वरूप प्रदान किया और वे अपने अस्तित्व की रक्षा में प्राणों की बाजी लगाकर जुट गए। (४) मराठों की छापा मार रण-नीति उनके लिए अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुई। उनके पास न तो मुगलों के समान विशाल सेनाएं थीं और न प्रचुर साधन। अतः मराठा सैनिक मुगलों पर एकाएक छापा मार आक्रमण करते और लूट मार कर अपने किलों, जंगलों या पहाड़ियों में छिप जाते थे। मुगल सेना की विशालता ही उसके लिए घातक सिद्ध हुई। उस पहाड़ी प्रदेश में विशाल सेनाओं का संचालन ठीक तरह नहीं हो सकता था। इसके विपरीत मराठा सेना में घुड़सवारों की अधिकता थी और उनके पास भार कम होता था। इसलिये उनका संचालन अधिक सफलतापूर्वक किया जा सकता था। (५) महाराष्ट्र का प्रदेश उत्तरी भारत से अधिक दूर था। अतः औरंगजेब उनके विरुद्ध अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता था। (६) औरंगजेव की हिन्दू-विरोधी नीति से भयभीत होकर दक्षिण के प्रायः समस्त हिन्दुओं ने मराठों के स्वातन्त्र्य-संग्रामों में सहयोग दिया। फलतः मराठों के विरुद्ध दक्षिण में किसी प्रकार की सहायता प्राप्त करना औरंगजेब के लिए कठिन हो गया। (७) औरंगजेब का अविश्वासी स्वभाव भी उसकी विफलता का कारण बन गया और इस स्वभाव के कारण वह अपने सेनापतियों को प्रायः बदला करता था जिससे किसी स्थायी सैनिक नीति का अनुसरण नहीं हो पाता था। (८) मुगलों में अपने पूर्वजों का उत्साह, साहस और सैनिक कौशल नहीं रह गया

था। अब उनमें घोर विलासिता उत्पन्न हो गई थी। उनकी सेना और हरम दोनों साथ साथ चलते थे। ऐसी स्थिति में उनके लिए सफलतापूर्वक युद्ध करना असम्भव हो गया था।

---

प्रश्न ३—औरंगजेब की दक्षिण-नीति का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए। इस नीति के क्या परिणाम हुए ?

**Q. 3. Explain in brief the Deccan policy of Aurangzeb. What were its results ?**

उत्तर—(१) **औरंगजेब की दक्षिण नीति**—औरंगजेब एक अत्यन्त महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी सम्राट था। वह सम्पूर्ण भारत पर अपनी विजय-पताका फहराना तथा शासन करना चाहता था। अपने शासन काल के प्रथम पच्चीस वर्ष उसने उत्तरी भारत को पूर्णतया अपने अनुशासन में लाने में व्यतीत किए। इसके पश्चात् उसकी दृष्टि दक्षिण भारत की ओर गई। इन दिनों दक्षिण में बीजापुर, गोलकुण्डा तथा मराठे अधिक शक्तिशाली थे। अतएव उसकी नीति के दो प्रधान लक्ष्य थे—(१) बीजापुर और गोलकुण्डा को पराजित करके साम्राज्य में मिलाना तथा (२) मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को नष्ट करना।

(२) **दक्षिण के राज्यों को ध्वस्त करने के कारण**—औरंगजेब बीजापुर तथा गोलकुण्डा के मुस्लिम राज्यों तथा मरहठों की शक्ति का दमन निम्नलिखित कारणों से करना चाहता था—

(१) औरंगजेब अत्यन्त महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी शासक था। अतएव अपने साम्राज्य तथा प्रभाव के बढ़ाने की कामना से वह दक्षिण पर विजय प्राप्त करना चाहता था।

(२) जिस समय औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार था उसने गोलकुण्डा तथा बीजापुर को नतमस्तक कर दिया था परन्तु १६५७ ई० में शाहजहाँ के हस्तक्षेप कर देने के कारण प्राप्त विजय उसके हाथ से निकल गई थी। औरंगजेव इसे कभी न भूल सका और उत्तर से अवकाश मिलने पर उसने अपने दक्षिण के कार्य को पूरा करने का निश्चय किया।

(३) इन दिनों गोलकुण्डा तथा बीजापुर की आन्तरिक दशा बड़ी शोचनीय थी। इसीलिए औरंगजेब का कार्य और भी सरल बन गया।

(४) औरंगजेब की असहिष्णुता तथा धर्मान्धता की नीति हिन्दुओं तक ही सीमित न रही। वह शिया सम्प्रदाय वालों को भी घृणा की दृष्टि से देखता था और उन्हें सच्चे इस्लाम धर्म का विरोधी समझता था। चूंकि गोलकुण्डा तथा बीजापुर के शासक शिया थे अतएव बादशाह उनके अस्तित्व को मिटा देना चाहता था।

(५) इन दिनों महाराष्ट्र की ऐसी दशा थी कि औरंगजेब का उनके विनाश के लिए प्रयत्न करना अनिवार्य था और बीजापुर तथा गोलकुण्डा का अस्तित्व मिटाकर मरहठों की शक्ति का दमन आसानी से किया जा सकता था।

(६) इन दिनों कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिसमें औरंगजेब का दक्षिण की ओर जाना अनिवार्य हो गया। शहजादा अकबर ने औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था और दक्षिण में भागकर उसने शम्भा जी के यहाँ शरण ली थी। दुर्गादास तथा अजीतसिंह ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया था।

(७) दक्षिण के सुल्तानों ने बहुत दिनों से खिराज भी पूरा नहीं भेजा था और बार बार चेतावनी देने पर भी वे उपेक्षा कर रहे थे। अतएव उन्हें सदैव के लिए समाप्त कर देने का औरंगजेब ने निश्चिय किया।

इन सब कारणों से प्रभावित होकर उसने दक्षिण की रियासतों का अन्त करने का दृढ़ निश्चय किया।

(१) **बीजापुर की विजय**—सबसे पहले औरंगजेब ने अपना ध्यान बीजापुर की ओर आकृष्ट किया। सन् १६२७ ई० में आदिलशाह द्वितीय की मृत्यु हो गई थी। अब उसके सरदार उसके चार वर्ष के पुत्र सिकन्दर को गद्दी पर बिठाकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए आपस में लड़ने लगे। इस पारस्परिक युद्ध ने राज्य को और दुर्बल बना दिया।

औरंगजेब ने **दिलेर खाँ** को सेनापति बनाकर दक्षिण भेजा और बीजापुर का घेरा आरम्भ हुआ। परन्तु सेनापति को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। अगले तीन वर्षों में मुगल मराठों से युद्ध करते रहे और बीजापुर की ओर ध्यान नहीं दिया। १६८५ ई० में बीजापुर का घेरा फिर आरम्भ हुआ। जैसे-जैसे समय बीतता गया, मुगलों की दशा खराब ही होती गई। मुगल सेना में अकाल पड़ जाने के कारण औरंगजेब की निराशा और भी बढ़ गई। बादशाह ने आजम को घेरा उठा लेने के लिये लिखा, परन्तु शहजादा दृढ़ रहा। बादशाह ने सहायता के लिये और सेना भेजी और घेरा जारी रहा। अब बादशाह स्वयं बीजापुर पहुँच गया। शाही सेनी की दृढ़ता और खाद्य पदार्थों की कमी के कारण बीजापुरी घबरा उठे और उन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया। बीजापुर मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया और वहां के सुल्तान सिकन्दरशाह की पेन्शन नियत कर दी गई।

(२) **गोलकुण्डा की विजय**—गोलकुण्डा का शासक **अबुलहसन** अपना समय भोगविलास में व्यतीत करता था और शासन का कार्य उसने अपने ब्राह्मण मन्त्री तथा सेनापति के हाथों में छोड़ रक्खा था। जब औरंगजेब को यह समाचार मिला, उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। विधर्मियों को इतना ऊँचा पद देने के कारण अबुलहसन बादशाह की आँखों का काँटा हो गया। इसके अतिरिक्त बीजापुर में प्राकृतिक सम्पत्ति का बाहुल्य था। कुतुबशाह ने सन्धि की शर्तों को पूरा नहीं किया था। युद्ध का व्यय भी अभी तक अदा नहीं हुआ था और दो लाख रुपये की

सालाना भेंट भी पूर्णतः जमा नहीं की गई थी। सुल्तान ने मीरजुमला की कर्नाटक वाली जागीर भी, जिस पर मुगलों का अधिकार होना चाहिये था, हड़प ली थी।

इन सब कारणों से बीजापुर पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् औरंगजेब ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति को गोलकुन्डा में लगा दिया और नगर का घेरा डाल दिया गया। अकाल के कारण सिपाहियों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। इसी समय शाही खेमे में बीमारी फैल गई जिसके फलस्वरूप बहुत से सिपाही और जानवर मर गए। परन्तु औरंगजेब का भाग्य अच्छा था। एक बीजापुरी कर्मचारी ने धन के लालच में किले का फाटक खोल दिया। अब शाही सेना किले में घुस गई और मारकाट शुरू कर दी। अन्त में सुलतान की फौजों ने आत्म-समर्पण कर दिया और गोलकुण्डा मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। अबुलहसन कैद कर दिया गया। उसके लिये ५०,००० रु० सालाना पेन्शन नियत कर दी गई और उसे दौलताबाद के किले में नजरबन्द रखा गया।

**(५) मराठों के साथ संघर्ष**—इसके लिये प्रश्न नं० २ देखिये।

**(६) दक्षिण नीति का परिणाम** औरंगजेब ने अपने जीवन के अन्तिम २० वर्ष दक्षिण भारत में युद्ध करने में व्यतीत किये थे। उसके इन युद्धों के निम्न-लिखित परिणाम हुये—

(१) गोलकुन्डा तथा बीजापुर के शिया राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया और बादशाह की दीर्घकालीन कामना पूरी हो गई।

(२) इन राज्यों के मुगल साम्राज्य में सम्मिलित हो जाने के कारण मुगल साम्राज्य की सीमा बहुत बढ़ गई। इससे शासन का विकेन्द्रीयकरण आवश्यक हो गया और दक्षिण का शासन सूबेदारों को सौंप देना पड़ा जो कालान्तर में अवसर पाकर स्वतन्त्र होने लगे। इसका अनुसरण अन्य लोग भी करने लगे और इस प्रकार मुगल साम्राज्य ध्वस्त होने लगा।

(३) दक्षिण में अधिक दिनों तक रहने के कारण उत्तर में औरंगजेब का अनुशासन तथा नियन्त्रण ढीला पड़ गया और कुव्यवस्था का प्रकोप हो गया।

(४) दक्षिण भारत के इन दीर्घकालीन युद्धों में धन तथा जन की ऐसी क्षति हुई कि शाही खजाना खाली हो गया और मुगल साम्राज्य का दिवाला पिट गया।

(५) इन विनाशकारी युद्धों के कारण दक्षिण की कृषि तथा वहां की आर्थिक व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई।

(६) गोलकुण्डा तथा बीजापुर के अस्तित्व समाप्त हो जाने से मरहठों को अनियन्त्रित रूप से अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिल गया।

(७) औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति ने मरहठों को संगठित किया जिसके परिणामस्वरूप मराठा राष्ट्र का जन्म हुआ। मुगलों तथा मराठों के घातक

संघर्ष ने मरहठों को उच्च कोटि की सैनिक शिक्षा तथा अदम्य उत्साह एवं आत्म-बल प्रदान किया। मरहठों की शक्ति ऐसी बढ़ी की मुगल साम्राज्य के पतन में ये बड़े सहायक सिद्ध हुये।

(८) औरंगजेब के मरहठों के विरुद्ध विफल हो जाने के कारण मुगल साम्राज्य की शान को बड़ा धक्का लगा। अब मुगल सैनिक-शक्ति का गौरव समाप्त हो गया।

(९) दक्षिण के युद्धों में फंस जाने के कारण औरंगजेब फिर राजपूताने की ओर ध्यान न दे सका और मारवाड़ पर वह अपनी विजय पताका न फहरा सका।

(१०) औरंगजेब के दक्षिण युद्धों का सामूहिक परिणाम मुगल साम्राज्य का पतन था। जैसे कि **प्रो० सरकार ने लिखा है कि "औरंगजेब का दक्षिण में अपने साम्राज्य का बढ़ाना ही साम्राज्य के पतन का आरम्भ सिद्ध हुआ। दक्षिण में अधिक दिनों तक व्यस्त रहने के कारण उत्तर का शासन बिगड़ गया और सिक्खों और जाटों को विद्रोह करने का अवसर मिल गया। सरदार तथा जमींदार प्रान्तीय गवर्नर का खुल्लमखुल्ला विरोध करने लगे। राजकोष रिक्त हो गया और साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया कि एक व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण शासन का सम्भालना बहुत कठिन हो गया। मरहठों के विरुद्ध लगातार संघर्ष करने के कारण औरंगजेब का स्वास्थ्य बिगड़ गया। सेना का नैतिक पतन हो गया और राज्य की आर्थिक व्यवस्था ध्वस्त हो गई। इस प्रकार दक्षिण के युद्धों ने औरंगजेब का विनाश कर दिया। यही नहीं मुगल साम्राज्य पर ऐसा घातक आघात लगा कि फिर वह कभी न उठ सका।"**

(७) **औरंगजेब की दक्षिण नीति की आलोचना**—वस्तुतः औरंगजेब की दक्षिण नीति उसकी अदूरदर्शिता एवं मूर्खता की द्योतक है। उसकी धर्मान्धता एवं महत्वाकांक्षा ने उसकी स्वाभाविक प्रतिभा एवं बुद्धिमत्ता पर आवरण डाल दिया था। उसने इस नीति की सर्वथा उपेक्षा की कि—"**जो दक्षिण का शासन करना चाहता है, उसे दक्षिण में रहना भी चाहिए।**" समस्त भारत का एक केन्द्र से शासन करना और सो भी उन दिनों में जब कि यातायात के सरल साधनों का अभाव था, कठिन कार्य था। औरंगजेब की यह महान् भूल थी कि उसने अपनी धर्मान्धता के कारण मराठों की सहायता एव सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया। मराठों को अपना मित्र बनाकर दक्षिण के शिया सुल्तानों पर विजय प्राप्त करना भी सरल हो गया होता और उत्तरी भारत के विद्रोहों का भी दमन किया जा सकता था। इसके विपरीत शिया राज्यों की सहायता करके मराठों को भी दबाया जा सकता था। परन्तु औरंगजेब ने इन दोनों उपायों का परित्याग कर एक स्वतन्त्र तीसरे मार्ग का अवलम्बन लिया जो मुगल-राजवंश एवं मुगल-साम्राज्य दोनों के लिए घातक बन गया।

---

प्रश्न ४—औरङ्गजेब की धार्मिक नीति का उल्लेख कीजिये। मुगल साम्राज्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ा ?

**Q. 4. Describe the religious policy of Aurangzeb. How did it affect the Mughal Empire ?**

उत्तर- (अ) औरङ्गजेब की धार्मिक नीति—औरङ्गजेब अपने पूर्वजों की भांति उदार तथा सहिष्णु न था। अपनी शिक्षा तथा स्वभाव से ही वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। धर्म के सामने वह सिंहासन प्रेम अथवा आराम की चिन्ता नहीं करता था। वह मूर्ति पूजा का विनाश करने के लिये हिन्दुओं के साथ अत्याचार करता था और मस्जिदें बनवाने के लिये उनके मन्दिरों को ध्वस्त किया करता था। धार्मिक उत्सवों पर करों को हटाकर तथा हिन्दू मेलों को बन्द करवा कर उसने राजकोष को बड़ी क्षति पहुंचाई। धार्मिक कट्टरता के कारण ही उसने दक्षिण में निरन्तर संघर्ष किया था। वह दक्षिण के शिया राज्यों के अस्तित्व को मिटाना चाहता था। अपनी उच्च कोटि की धार्मिक कट्टरता के कारण ही उसने जीवन के भोग-विलास को त्याग दिया था और ऐसा प्रतीत होता था मानों उसने सन्यास ले लिया है और एक फकीर की भांति जीवन व्यतीत करता था। पैगम्बर के उपदेशानुसार कि प्रत्येक मुसलमान को कोई न कोई व्यवसाय अवश्य करना चाहिए औरङ्गजेब भी अपने अवकाश का समय टोपियों के सीने में व्यतीत किया करता था जिन्हें उसके अमीर खरीद लिया करते थे। उसे न केवल कुरान पूर्णतः कण्ठस्थ था वरन् उसने इसे दो बार अपनी ही हस्तलिपि में नकल भी किया था और अत्यन्त अलंकृत रूप से बंधवाकर उन हस्तलिपियों को भेंट के रूप में मक्का तथा मदीना भेजा था। सारांश यह है कि अपने धार्मिक कर्तव्यों के पालन में तथा धर्मानुकूल आचरण करने में औरंगजेब ने कोई बात उठा न रक्खी। इस प्रकार अकबर की सहिष्णुता, जहाँगीर की विलासप्रियता तथा शाहजहाँ की शान शौकत का वह घोर विरोधी था।

हिन्दू विरोधी नीति—कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के कारण औरंगजेब का व्यवहार हिन्दुओं के साथ अपने पूर्वजों से बिल्कुल भिन्न था। वह हिन्दुओं को मुसलमान बनाना, उनके मन्दिरों को विध्वंस करना, उनकी मूर्तियों का तुड़वाना तथा उनके साथ भाँति-भाँति के अत्याचार करना अपना परम धर्म समझता था। अतएव उसने हिन्दू विरोधी निम्नलिखित योजनायें कीं—

(१) हिन्दु मन्दिरों का विध्वंस—गुजरात में अपनी सूबेदारी के समय से ही औरंगजेब ने मन्दिरों का विनाश प्रारम्भ कर दिया था। उसने अहमदाबाद में चिन्तामणि के मन्दिर में गौ-हत्या करवाकर उसे मस्जिद में परावर्तित करा दिया था। इस प्रान्त में अनेकों अन्य मन्दिरों को भी विध्वंस करा दिया गया था। सिंहासन पर बैठते ही उसने उड़ीसा प्रान्त के अफसरों को यह आदेश दे दिया था कि वहाँ के सभी मन्दिर नष्ट कर दिए जायें। उसने पुराने मन्दिरों की मरम्मत कराना भी बन्द करा दिया। अपने शासन काल के बारहवें वर्ष में उसने एक आम

आज्ञा निकाल दी कि हिन्दुओं के सभी मन्दिरों को विध्वंस कर दिया जाय और उनके धर्म, उनकी शिक्षाओं तथा उनके रीति-रिवाजों का दमन किया जाय। सम्राट की आज्ञा से सोमनाथ का दूसरा मन्दिर, बनारस का विश्वनाथ का मन्दिर तथा मथुरा का केशवराय का मन्दिर नष्ट कर दिये गये। मथुरा का नाम बदलकर इस्लामाबाद रख दिया गया और बनारस के मन्दिर के स्थान पर गगनचुम्बी मस्जिद बनवाई जो आज भी सभी मन्दिरों के ऊपर अपना सिर उठाये है। १६८० ई० में अम्बर के मन्दिरों को भी नष्ट कर दिया गया। एक विज्ञप्ति द्वारा सम्राट ने नए मन्दिरों का निर्माण निषेध कर दिया। इस प्रकार औरङ्गजेब ने हिन्दुओं के सभी मन्दिरों को नष्ट करने की आयोजना की थी।

**(२) मूर्तियों का विध्वंस**—स्थान-स्थान पर मूर्तियाँ तोड़ी गई और उन्हें लाकर आगरा तथा दिल्ली की मस्जिदों की सीढ़ियों पर डाला गया जिससे मुसलमानों के पैरों द्वारा कुचली जाए।

**(३) हिन्दू पाठशालाओं का विध्वंस**—औरङ्गजेब ने हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृति के नाश करने का भी प्रयत्न किया। बनारस, मुल्तान तथा ठट्टा में हिन्दू पाठशालाओं में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही शिक्षा प्राप्त करते थे। बादशाह ने इन प्रान्तों के शासकों को आदेश दिया कि वे इन शिक्षा मन्दिरों को तुड़वा दें और इस्लाम विरोधी बातों को पढ़ाने पर प्रतिबन्ध लगा दें। मुसलमानों को हिन्दू पाठशालाओं में पढ़ाने से रोक दिया गया और हिन्दुओं द्वारा पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा देने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

**(४) हिन्दुओं पर जजिया कर**—औरङ्गजेब ने जजिया कर को, जिसे अकबर ने हटा दिया था, फिर हिन्दुओं पर लगा दिया। इस कर के लगाने का आर्थिक उद्देश्य भी था। शरअत विरोधी करों को हटा देने से साम्राज्य में आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था जिसको दूर करने का यह कर लगाना एक अच्छा बहाना था।

**(५) चुंगी सम्बन्धी भेद नीति**—अब तक विक्रय की समस्त वस्तुओं पर मुसलमानों को ढाई तथा हिन्दुओं को पांच प्रतिशत चुंगी देनी पड़ती थी। एक आदेश द्वारा बादशाह ने मुसलमानों को इस कर से बिल्कुल मुक्त कर दिया और हिन्दुओं से बराबर लिया जाता था।

**(६) हिन्दुओं को सरकारी नौकरी से वंचित करना**—सन् १६७० ई० में सम्राट ने एक विज्ञप्ति निकाली कि माल विभाग के हिन्दू क्लर्क, दीवान तथा आमिल जो बेईमान हों पद से हटा दिये जाएं और उनके स्थान पर मुसलमान नियुक्त किये जायें। इस विज्ञप्ति द्वारा बहुत से हिन्दू पदाधिकारी पदच्युत कर दिये गए। बेईमान शब्द केवल इन हिन्दू कर्मचारियों को हटाने का एक बहाना था। परन्तु जब सरकारी काम बिगड़ने लगा तो फिर उसने एक आदेश द्वारा इस विभाग में एक हिन्दू और एक मुसलमान के रखने की व्यवस्था की। वस्तुतः औरंगजेब की यह आज्ञा धर्मान्धता तथा अविश्वास प्रवृत्ति की द्योतक है।

(७) **मुसलमान बनाने के लिये पुरस्कार का प्रलोभन**—औरंगजेब अनेकों प्रकार के प्रलोभनों द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का प्रयत्न करता था। जो हिन्दू मुसलमान बन जाते थे उन्हें राज्य में अच्छे अच्छे पद दिये जाते थे। जजिया से मुक्ति, सम्मान सूचक वस्त्र आदि अन्य प्रलोभन थे। ऐसे आदमियों को जागीरें भी मिला करती थीं।

(८) **बलात् धर्म परिवर्तन**—बहुत से लोगों को सम्राट ने जबरदस्ती इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। जाटों के विद्रोह को दमन करने के पश्चात् मथुरा के गोकुल जाट का वंश बलात् मुसलमान बना लिया गया था।

(९) **अन्य प्रतिबंध**—साम्राज्य में स्वतन्त्रतापूर्वक हिन्दू धर्म के प्रचार की आज्ञा नहीं थी। अकबर के समय से प्रचलित झरोखा दर्शन की प्रथा भी बन्द कर दी गई। अपने तीर्थ स्थानों के निकट मेला लगवाने की हिन्दुओं को मनाही थी। होली तथा दीवाली के त्योहार बाजार के बाहर और कुछ प्रतिबन्धों के साथ ही मना सकते थे। राजपूतों को छोड़कर अन्य सभी हिन्दुओं को हाथी, पालकी तथा घोड़ों पर चढ़ने की मनाही थी। दरबारियों को हिन्दू ढंग से अभिवादन करने की आज्ञा न थी। वे केवल 'सलाम वालेकुम' ही कर सकते थे। स्त्रियों को पूजा के लिये साधु सन्तों की समाधि पर जाने की मनाही थी। उसको सती होने से रोकने का भी सरकारी आदेश था।

(१०) **अन्य धर्मों के साथ व्यवहार**—औरंगजेब ने अन्य धर्म वालों के साथ दुर्व्यवहार किया। सिक्खों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त कठोर था। उसने गुरु तेग बहादुर की हत्या करवा दी थी और गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्रों को जिन्दा दीवार में चिनवा दिया था। दक्षिण की शिया रियासतें भी सम्राट की धर्मान्धता की शिकार बनीं।

(आ) **साम्राज्य पर इस नीति का प्रभाव**—औरंगजेब की इस धर्मान्ध तथा असहिष्णु नीति का परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। अकबर ने अपनी उदार धार्मिक नीति द्वारा जिस महान् साम्राज्य की स्थापना की थी वह औरंगजेब की धर्मान्धता से धराशायी होने लगा। इस नीति के दुष्परिणाम के दो मुख्य पहलू—आर्थिक तथा राजनैतिक हैं।

## (१) आर्थिक परिणाम—

औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति के निम्नलिखित आर्थिक परिणाम हुए—

(क) इस्लाम धर्म के प्रचार में बहुत धन व्यय किया गया। इसका राज्य के कोष पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

(ख) मुसलमान व्यापारियों को चुंगी से मुक्त कर देने के कारण राज्य की आर्थिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ा। इस भेद नीति से बेईमानी भी बढ़ गई क्योंकि हिन्दू व्यापारी मुसलमानों से मिलकर अपने माल को मुसलमान का माल बता कर

चुंगी से मुक्ति पा जाने का प्रयत्न करते थे। इससे राज्य को बड़ी आर्थिक क्षति पहुँची।

(ग) हिन्दू मेलों का निषेध कर देने से राज्य की आय घटने लगी।

(घ) यद्यपि जजिया कर लगा देने से राज्य की आय बढ़ गई परन्तु हिन्दू व्यापारी इस कर से भयभीत होकर दक्षिण की ओर चले गये। इनसे शाही सेना की छावनियों में अनाज की कमी हो गई और चारों ओर सभी उद्योग-धन्धे ठप्प होने लगे।

## (२) राजनैतिक परिणाम–

(क) **जाटों का विद्रोह**—औरंगजेब की असहिष्णुता तथा धर्मान्ध नीति के विरुद्ध साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में हिन्दुओं तथा अन्य जातियों ने विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। इनमें मथुरा के जाटों का विद्रोह बड़ा भयानक था। मथुरा का मुगल फौजदार अब्दुल नबी एक धर्मान्ध व्यक्ति था। उसने मथुरा के अनेकों मन्दिर नष्ट किये और उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाई। इससे उस जिले के किसानों की क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। इन जाटों ने गोकुल के नेतृत्व में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया और अब्दुल नबी की हत्या करके कई परगने लूट लिए। विद्रोह को शान्त करने के लिए कई मुसलमान सेनापति भेजे गये। इस विद्रोह को बड़ी नृशंसता के साथ दबाना शुरू किया गया। केशवराय का प्रसिद्ध मन्दिर खुदवाकर फेंक दिया गया। यद्यपि जाटों के नेता गोकुल ने बड़ी वीरता तथा साहस के साथ मुगलों का सामना किया परन्तु अन्त में उसकी पराजय हुई और वह सपरिवार कैद कर लिया गया। उसका बड़ी नृशंसता से वध करवा दिया गया और उसका परिवार बलात् मुसलमान बना लिया गया। परन्तु यह दमनचक्र जाटों के विद्रोह को पूर्णतया शान्त न कर सका। उन्होंने अवसर पाकर फिर कई बार विद्रोह किया।

(ख) **सतनामियों का विद्रोह**—गृहस्थी एवं व्यापारी जीवन व्यतीत करने वाले सतनामियों के विद्रोह का कारण भी उसकी धर्मान्ध नीति ही थी। औरंगजेब ने इस विद्रोही क्षेत्र में घोर दमनचक्र चलाया जिसमें हजारों सतनामी मारे गये और बहुत से भाग गये। नारनौल का प्रदेश जो उनका निवास स्थान था, उनसे खाली करा लिया गया।

(३) **राजपूतों का विद्रोह**—औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति से तंग आकर राजपूतों ने विद्रोह किया। **बुन्देला सरदार चम्पतराय** ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया परन्तु उसे अधिक सफलता प्राप्त न हुई और उसने आत्महत्या कर ली। चम्पत राय के बाद उसके पुत्र छत्रसाल ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। इन दिनों **मालवा तथा बुन्देलखन्ड** की स्थिति बड़ी गम्भीर थी। वहाँ की हिन्दू जनता में मुगलों के विरुद्ध बड़ा असन्तोष फैला था। छत्रसाल ने इस असन्तोष से लाभ उठा कर मुगलों के विरुद्ध आन्दोलन शुरू कर दिया और मुगलों को कई बार हराया और

पूर्वी मालवा में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया और स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करने लगा।

(४) सिक्खों का विद्रोह--अपनी इस नीति के कारण औरंगजेब ने सिक्खों को भी अपना घोर शत्रु बना लिया। फलतः कृषि प्रधान और व्यापारी सिक्खों को विवश होकर गुरू गोविंदसिंह के नेतृत्व में अपना सैनिक संगठन करना पड़ा।

उधर दक्षिण की शिया रियासतों के दमन तथा हिन्दुओं के प्रति धर्मान्ध नीति ने औरंगजेब के लिए मराठों के नेतृत्व में एक ऐसे राज्य और संगठन को जन्म दिया कि मुगल साम्राज्य और उसके प्रतिभाशाली सम्राट दोनों की समाधि दक्षिण में बनी। इन सारी विद्रोही शक्तियों ने मुगल साम्राज्य को इतना जर्जर और शक्तिहीन बना दिया कि स्वयं औरंगजेब के लिए उसके विनाश को रोकना असम्भव हो गया।

———

# ८

## मराठों का उत्कर्ष
## THE RISE OF THE MARATHAS
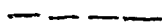
प्रश्न १—शिवाजी का जीवन-चरित्र संक्षेप में लिखिये और उनके कार्यों का मूल्यांकन कीजिये।

Q. 1. Sketch the career of Shivaji and estimate his achievements.

उत्तर- (१) जीवन चरित्र (क) बाल्यकाल और शिक्षा—भारतीय इतिहास में शिवाजी का स्थान अत्यन्त उच्च है। एक महान राष्ट्र-निर्माता तथा स्वराज संस्थापक के रूप में वह एक अमर व्यक्ति हो गये हैं। उनके जीवन का अध्ययन प्रायः तीन भागों में विभक्त करके किया जाता है। पहिला भाग १६३० से १६५६ तक का है जिसमें प्रारम्भिक जीवन से लेकर अफजल खाँ के विध्वंस तक की घटनायें आती हैं। दूसरा भाग १६५० के १६७४ तक का है। इस काल में शिवाजी को मुगलों से संघर्ष करना पड़ा। तीसरा काल १६७४ से १६८० तक का है। इस काल में शिवाजी के राज्याभिषेक से लेकर उनकी मृत्यु तक घटनायें आती हैं।

शिवाजी की जन्म तिथि विवादग्रस्त है। कुछ विद्वानों के अनुसार उनका जन्म ६ अप्रैल सन् १६२७ में शिवनेर के पहाड़ी किले में हुआ था। परन्तु आधुनिक खोजों के अनुसार उनकी जन्म तिथि १६ फरवरी सन् १६३० ई० है। उनके पिता का नाम शाहजी भोंसला और माता का नाम जीजाबाई था। पुत्र जन्म के कुछ ही दिन बाद शाहजी ने जीजाबाई की अवहेलना करके दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया। पति की ओर से निराश होकर जीजाबाई ने अपनी सारी शक्ति पुत्र को योग्य बनाने में लगा दी। वे घण्टों बैठी अपने पुत्र को पुराणों की वीरतापूर्ण कहानियाँ सुनाया करती थीं। बालक इन गाथाओं को सुनकर आवेश में भर जाता था और उसके शिशु हृदय में ऐसे ही शौर्य-पूर्ण कार्य करने की इच्छा प्रबल हो जाती थी।

बड़े होने पर शाहजी ने सुयोग्य दादा कोणदेव को पुत्र का शिक्षक नियुक्त किया। शिवाजी ने लिखना पढ़ना तो नहीं सीखा, परन्तु रामायण, महाभारत तथा शासन प्रबन्ध और युद्ध कला का बहुत सा ज्ञान प्राप्त कर लिया। घुड़सवारी, हथियार चलाना तथा और दूसरी कलाएँ जो सामन्त पुत्र के लिए आवश्यक समझी जाती थीं, उसने सीख लीं। शिवाजी ने अपने गुरु से हिन्दुत्व के उच्चादर्श के साथ निर्भीकता और गो-ब्राह्मण-रक्षण आदि बातें भी सीखीं। शिवाजी अपने काल के महाराष्ट्र के दो लोकप्रिय सन्त तुकाराम और समर्थ रामदास के सम्पर्क में भी आये समर्थ गुरु रामदास का शिवाजी पर अमिट प्रभाव पड़ा। उन्होंने शिवाजी को जाति,

स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा की शिक्षा दी और उनमें मराठों के संगठित करने की भावना उत्पन्न की। फलतः शिवाजी का चरित्र निर्माण उसकी माता जीजाबाई, दादा कोणदेव और समर्थ गुरु रामदास की शिक्षा और आदर्शों पर आधारित हुआ था, बीजापुर दरबार के सम्पर्क में रहने से उसे राज्य की दुर्बलताओं का भी ज्ञान हो गया था और भविष्य में यह उसके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ।

(ख) **प्रारम्भिक विजय**--स्वदेश प्रेम और स्वधर्म की रक्षा तथा हिन्दुत्व की पुनः स्थापना से प्रेरित होकर शिवाजी ने महाराष्ट्र के संगठन का कार्य शुरू किया और सबसे पहले उन्होंने जावली के लोगों को संगठित करके सिंहगढ़ पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके पश्चात् उन्होंने **रेहिन्दा, चंकन, तोरन, पुरन्दर** के किले भी जीत लिए और रायगढ़ का किला उन्होंने स्वयं निर्माण कराया। उनकी इस बढ़ती हुई शक्ति को दबाने के लिये बीजापुर के सुलतान ने १६४८ ई० में उनके पिता शाहजी को बन्दी बना लिया। परन्तु कुछ ही दिनों बाद मुगलों के हस्तक्षेप तथा अन्य आन्तरिक कारणों से शाहजी मुक्त कर दिये गये। शिवाजी अपनी विजय के कार्य को उसी प्रकार चलाते रहे। जावली के दुर्ग तथा प्रदेश पर भी शिवाजी ने विश्वासघात तथा हत्या द्वारा अधिकार कर लिया। यह दुर्ग राजनैतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसके पश्चात उन्होंने **प्रतापगढ़** का प्रसिद्ध किला बनवाया। उत्तरी कोनकन में भी उन्होंने अपनी स्थिति दृढ़ कर ली। थोड़े ही दिनों में दक्षिणी कोनकन भी उनके अधिकार में आ गया और वहाँ के शासन की उन्होंने उचित व्यवस्था कर दी।

(ग) **बीजापुर के साथ संघर्ष**--शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति से बीजापुर का सुल्तान बड़ा परेशान था परन्तु आन्तरिक दुर्बलता एवं औरंगजेब के आक्रमण के कारण वह शुरू में शिवाजी के विरुद्ध कुछ न कर सका। मुगलों का दबाव कम होने पर १६५९ ई० में बीजापुर सुल्तान ने **अफजल खां** सेनापति को शिवाजी के दमन के लिये भेजा और शिवाजी को जीवित या मृत पकड़ लाने का आदेश दिया। अफजल खां ने युद्ध न करके धोखे से शिवाजी को पकड़ने का निश्चय किया और शिवाजी की रक्षा का आश्वासन देकर उसे मिलने के लिए बुलाया। खान की योजनाओं से परिचित शिवाजी ने आत्मरक्षा की पूर्ण व्यवस्था कर ली थी और जब मिलते समय विशालकाय अफजल खां ने गर्दन दबाई और दाहिने हाथ से तलवार का वार करना चाहा तो अपने पंजों में छिपाये बाघ-नख को शिवाजी ने खान के पेट में घुसेड़ दिया और बगल में कटार चुभोकर उसका अन्त कर डाला। इसी समय छिपी मरहठा सेना ने बीजापुर की सेना पर धावा बोल दिया और भागती सेना के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस विजय से शिवाजी का साहस बहुत बढ़ गया और शिवाजी को दबाने के बीजापुर के अन्य प्रयत्न असफल रहे। अन्त में बीजापुर के साथ उनकी सुलह हो गई।

**(घ) मुगलों के साथ संघर्ष**—अब शिवाजी ने मुगल साम्राज्य पर भी छापा मारना तथा उसे लूटना शुरू कर दिया। अतएव दक्षिण के मुगल सूबेदार शाइस्ता खां ने शिवाजी पर आक्रमण कर दिया और अनेक महत्वपूर्ण किलों पर भी अधिकार कर लिया। पूना पर भी शाइस्ता खां का अधिकार हो गया और वह वहाँ के किले में आराम करने लगा। १५ अप्रैल १६६३ ई० को शिवाजी ने चुपके से पूना के दुर्ग में प्रवेश करके मारकाट प्रारम्भ करदी। बहुत से मुगल सैनिक मारे गये और बाकी जान बचाकर भाग निकले। शाइस्ता खां भी खिड़की से कूदकर अपनी जान बचा गया परन्तु उसके हाथ की उंगलियाँ कट गईं। इससे शिवाजी का साहस और भी बढ़ गया और उन्होंने अगले वर्ष सूरत नगर को लूटा। औरंगजेब ने दूसरी बार जयसिंह और दिलावर खां को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। जयसिंह ने सैन्यबल और कूटनीति दोनों का सहारा लेकर शिवाजी के अनेक किलों पर अधिकार कर लिया। अन्त में पुरन्दर की सन्धि हुई और शिवाजी मुगल दरबार में उपस्थित हुये। औरंगजेब ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया और आगरे के दुर्ग में बन्द कर दिया। शिवाजी किसी प्रकार कारावास से निकल भागे और दक्षिण में उन्होंने अपनी स्थिति दृढ़ करनी शुरू कर दी। औरंगजेब ने भी शिवाजी को राजा की उपाधि प्रदान की और कुछ समय के लिये संघर्ष शान्त रहा। सन् १६६६ ई० में यह संघर्ष फिर प्रारम्भ हो गया और शिवाजी ने अपने खोये दुर्गों को पुनः जीतना प्रारम्भ किया। इसी वर्ष शिवाजी ने दूसरी बार सूरत नगर को लूटा और इसके बाद उन्होंने खान देश और बराबर के प्रदेशों को रौंद डाला। शाही सेनायें बार-बार पराजित हुईं और १६७२ में शिवाजी ने सूरत पर तीसरा छापा मारा। बीजापुर की सेनाओं का उन्होंने बीजापुर के द्वार तक पीछा किया। प्रायः चार वर्षों के भीतर उनके राज्य का विस्तार उतर में सूरत तक, दक्षिण में बेदनूर तक और पूर्व में बरार तक हो गया। भयभीत बीजापुर और गोलकुण्डा की सरकारें उन्हें कर देती थीं और मुगल प्रदेशों से मराठे चौथ वसूल करते थे।

**(ङ) शिवाजी का राज्याभिषेक और उनकी अन्य विजयें**—जून १६७४ ई० में शिवाजी का उद्देश्य पूरा हुआ। मराठा राज्य की स्थापना हुई। शिवाजी का रायगढ़ के किले में राज्याभिषेक हुआ। अब उन्होंने छत्रपति की उपाधि धारण की और अपने राज्य में हिन्दू मुसलमान सभी को समान रूप से संरक्षण प्रदान किया।

राज्याभिषेक में बहुत सा धन व्यय हुआ था। अतः उसकी पूर्ति के लिए उन्होंने मुगल कैम्प को लूटा। इसके अतिरिक्त बीजापुर और गोलकुण्डा की रियासतों को भी उन्होंने लूटा और धन प्राप्त किया। शिवाजी का ध्यान कर्नाटक की ओर भी आकृष्ट हुआ और इसको भी उन्होंने खूब लूटा। जिन्जी, वेलोर तथा अन्य कई किले उनकी सेना ने जीते। बम्बई के समुद्र-तट पर स्थित जंजीरा के सिद्दियों के साथ भी शिवाजी का संघर्ष हुआ। यह संघर्ष आठ वर्ष तक चलता रहा। परन्तु सिद्दियों की समुद्री शक्ति काफी थी। अतः जंजीरा पर मराठों का अधिकार स्थापित नहो सका।

अन्तिम हमला उन्होंने मुगलसराय पर किया और बहुत से कस्बों तथा गाँवों को लूटा। सन् १६८० ई० में उनका स्वर्गवास हो गया।

(२) कार्यों का मूल्यांकन -

(क) **व्यक्तिगत जीवन**—शिवाजी का व्यक्तिगत जीवन निर्मल तथा उच्च था। अपनी माता जीजाबाई के प्रति उनकी अपार श्रद्धा तथा अनुरक्ति थी। यद्यपि उन्होंने कई विवाह किये परन्तु उन्होंने अपने दाम्पत्य प्रेम को सदा ऊँचे स्तर पर रक्खा। आचरण की शुद्धता पर वे बहुत जोर देते थे और अपने साथियों तथा सैनिकों पर भी बहुत निगाह रखते थे। विचारों की उच्चता एवं उदारता के साथ उनमें धार्मिकता भी उच्च कोटि की थी वे साधू महात्माओं का आदर करते थे और गौ ब्राह्मण की रक्षा को उन्होंने अपने जीवन का सर्वोच्च आदर्श बना लिया था। उनमें धार्मिक सहिष्णुता भी थी और धर्म के नाम पर उन्होंने कभी कोई अत्याचार नहीं किया। उनके समकालीन इतिहासकार खाफी खाँ ने उनकी धार्मिक-सहिष्णुता की प्रशंसा इस प्रकार की है। 'शिवाजी ने यह नियम बनाया था कि लूट के समय उनके सिपाही मस्जिदों, कुरान तथा स्त्रियों को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचाये। जब कभी कुरान की प्रति उनके हाथ लग जाती तो वे उसे सम्मान-पूर्वक अपने मुसलमान अनुयायियों को दे दिया करते थे जब कोई हिन्दू या मुसलमान स्त्रियाँ उनके आदमियों द्वारा वन्दी बनाकर उनके सामने लाई जाती थीं तो वे सावधानी से उनकी देखभाल करते थे और उनके सम्बन्धियों को उन्हें लौटा देते थे।

(ख) **उच्च आदर्श और महान् संगठन कार्य**:-मुसलमानों के अन्याय तथा अत्याचार से पीड़ित प्रदेश में गऊ तथा ब्राह्मण की रक्षा करना और सहिष्णुता के आधार पर हिन्दू राज्य की स्थापना करना शिवाजी के जीवन के मुख्य उद्देश्य थे और इन उद्देश्यों की पूर्ति में उन्होंने अपना सब कुछ निछावर कर दिया। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वे किसी भी प्रकार के साधनों का उपयोग करने के लिये प्रस्तुत रहते थे। यद्यपि उन्होंने राजनैतिक हत्यायें कीं, अनेक दुर्गों को जीता और विभिन्न नगरों को लूटा तो इसमें उनका व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं अपितु अपने लक्ष्य की पूर्ति का ही ध्यान था। इस कार्य में उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा और संगठन शक्ति का परिचय दिया। बिखरी हुई महाराष्ट्र की जन-शक्ति का संगठन और उसमें आत्म चेतना तथा नव जागरण उत्पन्न करना शिवाजी का ही कार्य था। अब यह संगठित महाराष्ट्र इतना शक्तिशाली बन गया कि भारत का शक्तिशाली सम्राट भी उनके सामने शक्तिहीन हो गया।

(ग) **योग्य सेनानायक** :- शिवाजी एक योग्य सेनानायक भी थे। इसी योग्यता के कारण वे औरंगजेब तथा बीजापुर और गोलकुण्डा के साथ संघर्ष में सफल हुये। अपनी सेना में असीम वीरता, शौर्य उत्साह और साहस उत्पन्न करना शिवाजी का ही कार्य था। उन्होंने अपनी सीमित शक्ति के कारण खुले मैदान में युद्ध

करने की अपेक्षा छापामार युद्ध प्रणाली अपनायी थी और इसी में उनको अद्भुत सफलता मिली। प्रो० यदुनाथ सरकार के शब्दों में उनकी जन्म सिद्ध सैनिक प्रतिभा इस बात से सिद्ध हो जाती है कि उन्होंने स्वभावतः उस रण कला का अनुसरण किया जो उनके सैनिक जातीय चरित्र, देश की प्रकृतिक दशा तथा शत्रुओं की आन्तरिक दशा के अनुकूल थी।

(घ) **कुशल शासक**–शिवाजीएक कुशल शासक थे। उन्होंने एक सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की थी। अष्ट-प्रधान की स्थापना, पद को वंशानुगत न बनाकर योग्यता के आधार पर अधिकारियों की नियुक्ति, जागीर की प्रथा को बन्द करना, किसानों को हर प्रकार की सुविधा देना तथा हिन्दू मुसलमान के साथ एक सा वर्ताव करना आदि-आदि कुछ ऐसी योजनायें थीं जिनके कारण शिवाजी की गणना उच्चकोटि के शासकों में होती है।

(ङ) **दूरदर्शी राजनीतिज्ञ**—शिवाजी राजनीतिज्ञ भी उच्चकोटि के थे। उनमें समय की समस्याओं को समझने की अपूर्व क्षमता थी। वे शत्रु को संगठित होने का कम अवसर देते थे और उसकी दुर्बलता से लाभ उठाने के लिये हर समय तैयार रहते थे। बीजापुर तथा मुगलों के संघर्ष कराकर उन्होंने सदा अपने उद्देश्य की पूर्ति की। कर्नाटक के आक्रमण से पूर्व बीजापुर के विरुद्ध गोलकुण्डा से मैत्री स्थापित करना उनकी दूरदर्शिता तथा कूटनीतिज्ञता का परिचायक है।

(च) **राष्ट्र संस्थापक**—शिवाजी डाकू या लूटेरे नहीं बल्कि एक महान राष्ट्र संस्थापक थे। शताब्दियों की राजनैतिक पराधीनता से पददलित तथा अत्याचार और अन्याय से पीड़ित हिन्दू राष्ट्र में नवीन चेतना उत्पन्न करना उन्हीं का काम था। अपने इस हिन्दू राष्ट्र में उन्होंने नवजीवन, नव-शक्ति, नव बल उत्पन्न किया। जिससे सोया हुआ राष्ट्र पुनः जाग्रत हो उठा और इतना शक्तिशाली बन गया कि विशाल मुगल साम्राज्य भी उसके सामने झुक गया। हिन्दू **पद-पाद-शाही का नारा** सारे देश में गूँज उठा। उन्होंने अपने उदाहरण और कार्य से यह सिद्ध कर दिया कि शताब्दियों से पराधीन हिन्दू जाति पुनः राष्ट्र निर्माण कर सकती है, शत्रुओं को पराजित कर सकती है और प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति की फिर रक्षा कर सकती है। इस प्रकार राष्ट्र निर्माण के इस कार्य ने शिवाजी को भारतवर्ष के इतिहास में एक अमर व्यक्ति बना दिया है।

———

प्रश्न २—शिवाजी के शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिये।

Q. 2. Describe in brief the System of adiministration of Shivaji.

उत्तर—यूरोपीय इतिहासकारों ने शिवाजी के शासन प्रबन्ध की बड़ी तीव्र आलोचना की है। उनका कथन है कि मराठा राज्य केवल लूट पर ही निर्भर था। परन्तु ऐसा कहना सत्य नहीं है। शिवाजी एक महान सेनापति के साथ-साथ राजनीतिज्ञ भी थे और समय की आवश्यकता को खूब अच्छी तरह समझते थे। उनमें एक अच्छे शासक के गुण भी विराजमान थे। श्री मजूमदार ने उनके शासन प्रबन्ध के विषय में लिखा है—

"Shivaji was not merely a daring soldier and a successful military conqueror, but also an enlightened ruler of his people."

शिवाजी स्वयं शासन के प्रबन्ध थे और राज्य की सारी शक्तियाँ उन्ही में केन्द्र भूत थीं। परन्तु उन्हें परामर्श देने के लिये आठ मन्त्रियों की कौंसिल अथवा परिषद् थी जिसे अष्ट प्रधान कहते थे।

अष्ट प्रधान—आधुनिक उत्तरदायी मन्त्रि-मण्डल के साथ शिवाजी की अष्ट प्रधान की तुलना करना इतिहास को कई शताब्दी आगे घसीटना है। शिवाजी शासन की सारी बागडोर अपने हाथ में रखते थे। मन्त्री लोग पूर्ण रूप से उसके आधीन होते थे और उन्हें उनकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करना पड़ता था। वह उन्हें नियुक्त करता था और अपनी इच्छानुसार उन्हें पदच्युत भी कर सकता था। अष्ट प्रधान का कर्त्तव्य केवल उस समय राजा को परामर्श देना होता था जब राजा उनका परामर्श लेना चाहता। सभी मन्त्रियों को नकद वेतन मिलता था। पेशवा को १५०००, आमात्य को १२००० तथा शेष मन्त्रियों को १०,००० हून वेतन मिलता था। इसमें सन्देह नहीं है कि राजदरबार में पेशवा का स्थान अन्य मन्त्रियों से ऊँचा होता था क्योंकि वह सम्राट के अधिक घनिष्ट सम्बन्ध में रहता था, परन्तु अन्य मन्त्री पेशवा के आधीन नहीं होते थे।

अष्ट प्रधान में निम्नलिखित आठ मन्त्री होते थे—

(१) पेशवा (प्रधान मन्त्री) जिसका काम राज्य के सभी विभागों की देख-रेख करना था।

(२) आमात्य जो राज्य की आय तथा व्यय का निरीक्षण करता था।

(३) मन्त्री अथवा वाकियानवीस जो राजकार्यो और दरबार की घटनाओं को लिपिबद्ध करता था।

(४) सुमन्त अथवा परराष्ट्र मन्त्री।

(५) सचिव तथा गृहमन्त्री।

(६) पंडितराव तथा दानाध्यक्ष अथवा धार्मिक विभाग का मन्त्री। उसका काम विद्वानों को दान देना, धार्मिक झगड़ों को निपटाना और रीति-रिवाज का निर्णय करना था।

(७) सेनापति (८) न्यायाधीश।

सेनापति को छोड़कर अन्य सभी मन्त्री ब्राह्मण होते थे और पंडितराव तथा न्यायाधीश को छोड़कर अन्य सभी मन्त्रियों को आवश्यकता पड़ने पर सेना के संचालन का कार्य करना पड़ता था। यह मराठा शासन का दोष था क्योंकि अवसर मिलने पर अपनी अधीनस्थ सेना की सहायता से ये मन्त्री स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की चेष्टा करते थे। शिवाजी को इस त्रुटि का ज्ञान था। इसलिए यह नियम बना दिया गया था कि मन्त्रीपद पैतृक न होगा। यही नहीं, शिवाजी ने जागीदारी की प्रथा को तोड़कर इन मन्त्रियों तथा अन्य कर्मचारियों को नकद वेतन देना शुरु कर दिया था। इस विषय में "वूल्जले ह्वेग" लिखते हैं—

"Shivaji recognising the danger of a powerful feudal aristocracy, granted no fiefs, public servants of all ranks both civil and military being paid directly from the treasury. All were subject to summary dismissal for misconduct of inefficiency."

**प्रान्तों का प्रबन्ध**—शासन की सुविधा के लिये शिवाजी ने अपना राज्य तीन प्रान्तों में विभक्त कर दिया था जो प्रत्येक सूबेदार के अनुशासन में था। प्रान्तों की व्यवस्था केन्द्र के समान थी और सूबेदार भी राजा की भाँति आठ प्रधान अफसरों की सहायता से प्रान्त का शासन प्रबन्ध करते थे।

**न्याय व्यवस्था**—न्यायालयों की व्यवस्था प्राचीन पद्धति के अनुसार थी। अग्नि परीक्षा प्रचलित थी। देहातों में वृद्धजन पंचायतों में झगड़ों का निपटारा करते थे। फौजदारी के मुकदमों का निर्णय पटेल करता था। दीवानी तथा फौजदारी दोनों की अपील ब्राह्मण न्यायाधीश सुनता था और कौटिल्य तथा शुक्राचार्य द्वारा निर्धारित किए हुए नियमों के अनुसार मुकदमों का फैसला होता था।

शिवाजी की न्याय व्यवस्था उच्चकोटि की न थी। न समस्त राज्य के लिए निश्चित न्यायालय थे और न लिखित निश्चित कानून ही। न्यायालयों की कोई निश्चित कार्यवाही भी न थी।

**सेना का संगठन**—शिवाजी ने सेना के संगठन तथा अनुशासन की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया था। उन्होंने ऐसी सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित सेना की व्यवस्था की थी जो बीजापुर तथा गोलकुण्डा के सुल्तानों तथा मुगल साम्राज्य की विशाल सेना का सामना सफलतापूर्वक करती थी। शिवाजी स्वयं एक महान सेनानायक था। अतएव उसमें सेना को संगठित करने की अद्भुत प्रतिभा थी। उन्होंने बिखरी हुई मराठों की शक्ति को एकत्रित किया और एक राष्ट्रीय सेना को जन्म दिया जो स्वराज्य स्थापित करने की भावना से प्रेरित थी। उन्होंने जागीरदारी की प्रथा को हटा दिया और सैनिकों को नकद वेतन देना आरम्भ किया। घोड़ों को दागने तथा घुड़सवारों का हुलिया लिखने की व्यवस्था भी की गई थी। उनकी सेना में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों भर्ती किए जाते थे।

**अनुशासन**—सेना में अनुशासन बहुत कड़ा था। कोई भी व्यक्ति तब तक सेना में भर्ती नहीं किया जाता था जब तक वह अपने सदाचारण की जमानत नहीं देता था। सेना के साथ स्त्रियों, दासियों तथा नर्तकियों को ले जाने की आज्ञा न थी। कोई स्त्री अथवा बच्चा बन्दी नहीं बनाया जा सकता था। लूट का सभी माल राजकोष में जमा करना पड़ता था। सैनिकों तथा अफसरों को केवल नियमित वेतन मिलता था। जिन सैनिकों का व्यवहार अच्छा नहीं होता था उन्हें दण्ड मिलता था। शिवाजी को इस बात का बड़ा ध्यान था कि उसके सैनिक प्रजा पर किसी भी प्रकार का अत्याचार न करें।

**दुर्गों की व्यवस्था**—शिवाजी ने सबसे अधिक ध्यान दुर्गों की सुरक्षा तथा मजबूती पर दिया। उनके राज्य में २८० दुर्ग थे जो शिवाजी के राज्य के प्राण थे क्योंकि यह आक्रमण के समय प्रजा की रक्षा करते थे। प्रत्येक किला एक हवलदार को दिया गया था। उसके नीचे एक ब्राह्मण सूबेदार और दो कायस्थ कर्मचारी होते थे लोग इन किलों को "माता" के समान मानते थे क्योंकि आपत्ति काल में इन्हीं से उनकी रक्षा होती थी।

श्री रालिन्स महोदय लिखते हैं :—

"The people were taught to regard the fort as their mother and indeed it was. For thither the inhabitants of the surrounding villages resorted in time of invasion."

**सैन्यबल**—शिवाजी के पास लगभग ४०,००० घुड़सवार तथा एक लाख पैदल सैनिक थे। उनके पास दो सौ जहाजों की एक नौ सेना भी थी। उनके पास हाथियों तथा ऊँटों की सेना भी थी। जहाजी बेड़े का संचालन प्रधानतः मुसलमानों के नियन्त्रण में था।

सेना में कर्मचारियों की श्रेणियां थीं। अश्वारोही दो प्रकार के होते थे। एक तो वे जिन्हें हथियार आदि राज्य से मिलते थे। दूसरे वे जो अपना प्रबन्ध आप करते थे। २५ अश्वारोहियों की इकाई होती थी। जिसका नायक हवलदार होता था। पांच हवलदार के ऊपर एक जुमला, दस जुमलों के ऊपर एक हजारी और हजारी के ऊपर पंच हजारी होता था।

पैदल सेना का विभाजन भी इसी प्रकार था। ६ सिपाहियों की एक इकाई बनती थी। इनका अध्यक्ष नायक होता था। पांच नायकों के ऊपर एक हवलदार होता था और दो या तीन हवलदारों के ऊपर एक जुमलादार होता था। दस जुमलादारों का नायक हजारी होता था और सात हजारियों के ऊपर एक सरनौबत होता था।

**युद्ध विधि**—शिवाजी की सेनाएं साधारणतया खुले मैदान में डटकर शत्रु का मुकाबला नहीं करती थीं। छापामार रणनीति अपनाई जाती थी जो कि महाराष्ट्र

के लिए पहाड़ी इलाका होने के कारण बिल्कुल उपयुक्त थी। यह लोग एकाएक मुगल सेना पर छापा मारते थे और शीघ्र ही भागकर पहाड़ियों में छिप जाते थे। इनका पीछा करना बड़ा खतरनाक होता था। इस युद्ध विधि को अंग्रेजी में Guerilla warfare कहते हैं।

**लगान व्यवस्था**—शिवाजी ने मालगुजारी की प्रथा को भी सुधारा। उन्होंने सबसे पहले जागीरदारी तथा जमींदारी प्रथा को समाप्त किया और सम्पूर्ण भूमि पर राज्य का प्रत्यक्ष अधिकार स्थापित किया। इस प्रकार किसानों पर से जमीदारों, देशमुखों तथा देसाइयों का अधिकार पूर्ण रूप से उठ गया और किसानों से लगान सीधा लिया जाने लगा। सारी भूमि की पैमाइश कराई गई और उपज का ३० प्रतिशत राज्य कर निश्चित किया गया। पीछे से यह कर ४० फी सदी कर दिया गया था। कोई राजकर्मचारी किसी किसान से अधिक रुपया वसूल नहीं कर सकता था। दुर्भिक्ष के समय किसानों की सहायता की जाती थी और उनकी भलाई का सदैव ध्यान रक्खा जाता था। सैन्य संचालन से किसानों को किसी प्रकार भी क्षति नहीं पहुंचने पाती थी।

**चौथ तथा सरदेशमुखी**—चौथ तथा सरदेशमुखी भी राज्य की आय के साधन थे। **रानाडे** का कथन है कि चौथ केवल सैनिक कर नहीं था। जिस देश में यह कर लिया जाता था वहां मराठे बाहरी शत्रुओं से उसकी रक्षा भी करते थे। **परन्तु डा० सेन तथा यदुनाथ सरकार** इस मत से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि चौथ केवल लोगों से लूट कर धन लेना था। वह ऐसा नहीं था जिसके बदले में उस देश की रक्षा करना मराठे अपना कर्तव्य समझते थे। "The payment of the Chauth merely saved a place from the unwelcome presence of the Maratha soldiers and civil underlings, but did not impose on Shivaji any corresponding obligation to guard the district from foreign invasion ... ... ... ..." J. N. Sarkar. चौथ का वास्तविक अर्थ कुछ भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि चौथ एक सैनिक कर ही था और इसको अदा करके विजित देश मराठों से फिर आक्रमण न करने का वायदा करा लेता था।

सरदेशमुखी भी इसी प्रकार का एक कर था। शिवाजी अपने को समस्त मराठा देश का कानूनी सरदेशमुखी समझता था। अतएव सरदेशमुखी से उनकी आय का १/१० भाग वसूल किया करता था। यह भाग सरदेशमुखी कहलाता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवाजी के शासन-प्रबन्ध में बहुत सी विशेषताएं थीं। एक विशेपता तो दुर्गों की थी। इनका शासन व्यवस्था में बड़ा महत्व था। दूसरी विशेषता यह थी कि बड़े बड़े सरकारी पद वंशानुगत नहीं होते थे वरन् योग्यता के आधार पर दिए जाते थे। तीसरी विशेषता यह थी कि शिवाजी ने जागीरदारी की प्रथा को समाप्त करके नकद वेतन देना शुरू कर दिया था। जागीरदारी की प्रथा

... इन्होंने ... कर दिया था और अब किसानों से लगान सीधा राज्य ... करने लगा था।

इस प्रकार शिवाजी का शासन-प्रबन्ध बड़ा अच्छा तथा सुव्यवस्थित था।

---

प्रश्न ३—पेशवा बाजीराव प्रथम के जीवन और कार्य-सफलतां का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।

Q. 3. Explain critically the career and achievements of Peshwa Baji Rao I.

उत्तर—बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र बाजीराव जिस की अवस्था २० वर्ष की थी पेशवा नियुक्त किया गया। यद्यपि उसमें अपने पिता की विद्वता न थी, परन्तु उसमें एक उच्चकोटि के सैनिक की प्रतिभा विद्यमान थी। ... के कार्य में वह बड़ा कुशल था। उसने एक नई नीति का अनुसरण किया जो अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। वह ध्वस्त मुगल साम्राज्य के स्थान पर मराठा साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। उसने मराठा साम्राज्य का विस्तार किया और ... सरदार बनाये जिन्हें उसने भूमि दी और इस प्रकार महाराष्ट्र में उसने नवजीवन तथा नूतन स्फूर्ति उत्पन्न कर दी।

(१) **बाजीराव की नीति**—बाजीराव मरहठों की शक्ति तथा मुगल साम्राज्य की दुर्बलता से खूब परिचित हो गया था। अतएव उसकी नीति थी समस्त मुगल साम्राज्य के स्थान पर मराठा साम्राज्य को स्थापित करना। इन दिनों मुगलों तथा राजपूतों के सम्बन्ध अच्छे न थे। बाजीराव ने इस स्थिति से पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया। उसने राजपूतों को अपना मित्र बना लिया और उनकी सहायता से अपने लक्ष्य की पूर्ति का प्रयास किया।

(२) **नीति का क्रियात्मक रूप**—अब बाजीराव ने अपनी नीति पर पालन करना शुरु किया। उसने बुन्देलखण्ड, गुजरात तथा मालवा पर आक्रमण कर दि... और मुगल सूबेदार को पराजित कर चौथ वसूल करना आरम्भ कर दिया। उ... उदाजी पंवार को धार में, मलहरराव होल्कर को इन्दौर में और रानोजी सिन्... को उज्जैन में चौथ वसूल करने के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। मराठों ने कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया तो बाजीराव तथा निजाम का ... आरम्भ हो गया। कर्नाटक में मराठों को विशेष सफलता प्राप्त न हुई। बाजीराव तथा शाहू के अनेकों शत्रु पैदा हो गए। अनेकों मरहटा सरदार जो ... राव से ईर्ष्या रखते थे निजाम से जा मिले। बाजीराव की दृष्टि मालवा तथा ... के धनी प्रान्तों पर लगी हुई थी। अतः गुजरात में अपनी सैनिक शक्ति के ... मराठों ने अपनी सत्ता स्थापित करली। इन घटनाओं को देखकर निजाम

रह सकता था। कर्नाटक के आक्रमण से उसे तथा शम्भाजी द्वितीय को बड़ी क्षति पहुंची थी। अतएव इन दोनों ने बाजीराव के विरुद्ध गठबन्धन कर लिया और चार वर्ष तक इन दोनों शक्तियों के साथ बाजीराव को लोहा लेना पड़ा।

(३) **बाजीराव तथा निजाम में संघर्ष**--निजाम ने औरंगाबाद से हटाकर हैदराबाद को अपनी राजधानी बना ली जिससे वह कर्नाटक के निकट और पूना से दूर हो गया। अब उसने मराठों में फूट पैदा करना आरम्भ किया। उसने प्रतिनिधि श्री पतराव के पास यह प्रस्ताव भेजा कि यदि मराठे यह वचन दे कि वे हैदराबाद में कभी प्रवेश न करेंगे तो उन्हें निश्चित वार्षिक धन देगा। उसने बरार के प्रतिनिधि को एक बड़ी जागीर भी दे दी और शाहू को बरामती दे दिया। यद्यपि शाहू इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के पक्ष में था परन्तु बाजीराव को यह स्वीकार न था। अतः शाहू श्री पतराव तथा बाजीराव में निजाम ने मतभेद उत्पन्न कर दिया। इसके बाद निजाम ने शम्भाजी द्वितीय को शाहू के विरुद्ध भड़काना शुरू कर दिया। क्योंकि कर्नाटक शम्भाजी के अधिकार में था, अतएव बाजीराव के कर्नाटक आक्रमण से वह सतर्क हो गया। बाजीराव की मालवा तथा गुजरात में जो विजय हुई उसे भी वह फूटी आंखों न देख सका। अतएव उसने निजाम तथा चन्द्रसेन जाधव से जो बाजीराव के कट्टर शत्रु थे सहायता लेनी आरम्भ कर दी और स्वराज्य का आधा भाग प्राप्त करने की माँग पेश की। निजाम ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया कि जब तक दोनों प्रतिद्वन्द्वी अपने अधिकारों का निर्णय न कर लेंगे तब तक वह चौथ तथा सरदेशमुखी नहीं देगा। ऐसी दशा में निजाम-मराठा संघर्ष अनिवार्य हो गया। बाजीराव ने निजाम को लड़ाई में बुरी तरह हराया और उसे सन्धि करने पर बाध्य किया।

(४) **मुंगीशर गांव की सन्धि**—निजाम ने विवश होकर शाहू के साथ मुंगीशर गांव की सन्धि कर ली। इस सन्धि की निम्नलिखित शर्तें थीं—

(१) निजाम को चौथ तथा सरदेशमुखी का जितना धन बाकी था वह सब देना पड़ा। (२) शाहू को उसने सम्पूर्ण महाराष्ट्र का छत्रपति स्वीकार कर लिया। (३) उससे शम्भाजी को समर्पित करने के लिए कहा गया, परन्तु उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस सन्धि का बहुत बड़ा महत्व है। इसने निजाम की शक्ति को कमजोर बना दिया। इससे प्रतिनिधि तथा उसके दल वाले नत-मस्तक हो गये और शाहू का बाजीराव में दृढ़ विश्वास हो गया। यदि बाजीराव को इस युद्ध में विजय न मिली होती तो शाहू को निजाम के सामने नत-मस्तक हो जाना पड़ता और महाराष्ट्र में गृह युद्ध की अग्नि भड़क उठी होती।

(५) **शम्भाजी के साथ संघर्ष**—निजाम की पराजय के पश्चात् शम्भा जी अन्य मराठा सरदारों के साथ षड्यन्त्र रच रहा था। अतएव शाहू ने अब उसे भी पराजित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। दोनों ओर तैयारियां होने लगीं। शाहू ने इस युद्ध का भार प्रतिनिधि को सौंपा। शम्भाजी ने पराजित होकर पन्हाला के

के किले में शरण ली। बाद में उसने वार्ना की सन्धि से शाहू की आधीनता स्वीकार कर ली। इस सन्धि ने कोल्हापुर तथा सतारा के झगड़ों को सदैव के लिए समाप्त कर दिया। अब शाहू जनता की दृष्टि में महाराष्ट्र का अखण्ड छत्रपति बन गया उसमें तथा शम्भाजी में राज्य का बंटवारा हो जाने से अब गृह युद्ध का भय न रहा। इससे पेशवा आन्तरिक चिन्ता से मुक्त हो गया और उसे मराठा राज्य को बढ़ाने का अवकाश मिल गया। शाहू तथा शम्भाजी आजन्म एक दूसरे के मित्र बने रहे।

(६) **पेशवा तथा सेनापति का संघर्ष**—गुजरात में चौथ तथा सरदेशमुखी के लिए पेशवा तथा सेनापति त्रिम्बकराव में संघर्ष आरम्भ हो गया। युद्ध में सेनापति मारा गया। इस प्रकार अब बाजीराव पेशवा तथा सेनापति दोनों बन गया। इससे पेशवा की शक्ति बहुत बढ़ गई। इस प्रकार बाजीराव के सभी विरोधियों का अन्त हो गया। अब उसने निजाम से समझौता करके मराठा राज्य उत्तर की ओर बढ़ाना शुरु कर दिया।

(७) **नर्मदा के उत्तर में मराठों का राज्य**—अब बाजीराव ने अपना राज्य उत्तर की ओर बढ़ाना शुरु कर दिया। उसकी नीति साम्राज्यवादी नीति थी और चौथ तथा सरदेशमुखी उसकी इस नीति की आधारशिला थी। वह जिन प्रदेशों में चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करता था उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर ले लेता था। उसने सन् १७३५ ई० में मुगलों से गुजरात जीता और बाद को मालवा पर भी अपना अधिकार जमा लिया। मालवा जीतने में बाजीराव को राजा सवाई जयसिंह तथा राजा नन्दलाल चौधरी से बड़ी सहायता मिली। यह दोनों व्यक्ति हिन्दुओं का पुनरुत्थान चाहते थे और मराठों की राज्य विस्तार की नीति के पक्ष में थे।

इसी समय बाजीराव का ध्यान बुन्देलखण्ड की ओर आकृष्ट हुआ। इन दिनों छत्रसाल बुन्देलखण्ड पर राज्य कर रहा था। मुगलों ने बुन्देलखण्ड को विजय करने के उद्देश्य से छत्रसाल पर आक्रमण कर दिया। छत्रसाल ने मराठों से सहायता मांगी। बाजीराव शीघ्र ही बुन्देलखण्ड में आ उपस्थित हुआ। उसने मुसलमानों को बुन्देलखण्ड से मार भगाया। इस सहायता के बदले में छत्रसाल ने अपने राज्य का एक भाग जिसकी आय ३३ लाख थी मराठों को दे दिया। इस प्रकार मराठों को बुन्देलखण्ड में पैर जमाने का स्थान मिल गया। अब बाजीराव प्रत्यक्ष रूप से दोआब तथा आगरा के सम्पर्क में आ गया। अब मराठों ने दिल्ली के आस पास के क्षेत्रों में लूट मार करनी शुरु कर दी। परेशान होकर मुगल सम्राट ने बाजीराव को बुलवा भेजा और उसके साथ सन्धि कर ली। परन्तु यह सन्धि कोई स्थायी सन्धि न थी। मराठों ने दोआब को खूब लूटा। बाजीराव ने भी दिल्ली तक धावा किया। घबराकर मुगल सम्राट ने दक्षिण से निजाम को अपनी सहायता के लिये बुला भेजा। अब निजाम तथा बाजीराव में मुठभेड़ हुई जिसमें निजाम पराजित हुआ और सन्धि करने

पर विवश हुआ। इस कार्य से बाजीराव की धाक और भी जम गई और मुगल सम्राट पर आतंक छा गया।

(८) **कोनकन में पेशवा की धाक**—कोनकन का प्रदेश मरहठों के लिए सदैव एक विकट समस्या रहा है। यहाँ पर आँग्रे, सिद्दी, पुर्तगाली तथा अंग्रेज अपनी-अपनी सत्ता बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे थे। कान्होजी आँग्रे तथा सिद्दियों में बड़ी प्रतिद्वन्द्विता चला करती थी। इन दिनों सिद्दियों ने परसराम के मन्दिर को अपमानित किया जो कोनकन में हिन्दुओं का सबसे अधिक पवित्र स्थान था। अतः मराठों तथा सिद्दियों में घमासान युद्ध छिड़ गया। बाजीराव ने सिद्दियों को बड़ी बुरी तरह से दबाया और पुर्तगालियों को पराजित किया। इस प्रकार कोनकन में भी बाजीराव की धाक पूर्ण रूप से स्थापित हो गई। सन् १७३९ ई० में नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण कर दिया। इस आपत्ति का सामना करने के लिए बाजीराव ने मरहठा सेनायें भेजीं। परन्तु अब नादिरशाह ईरान के लिए प्रस्थान कर चुका था। अप्रैल सन् १७४० ई० में अल्प आयु में ही बाजीराव परलोक सिधार गया।

(९) **बाजीराव के कार्यों का मूल्यांकन**—बाजीराव की गणना भारत के महान् सेनानायकों में होती है। वह पूर्ण रूप से सैनिक था और विरोध को सहन नहीं कर पाता था। उसमें योजनायें बनाने की बुद्धि और उन योजनाओं को व्यवहार में लाने की अपूर्व क्षमता थी। वह साम्राज्यवादी था। और वृहत्तर महाराष्ट्र का संस्थापक था। उत्तरी भारत में मराठों के प्रभाव क्षेत्र को उसने बढ़ाया और उस प्रभाव क्षेत्र में उसने चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल किया। वह मरहठों के सभी शत्रुओं को दबाने में सफल हुआ। निजाम जैसे महान कूटनीतिज्ञ के सभी कुचक्रों को उसने विफल बना दिया। जयपुर के राजा के दूत दीपसिंह ने बाजीराव के सम्बन्ध में कहा है, 'मरहठों में केवल वही मनुष्यों का सच्चा नेता हैं। कोई दूसरा व्यक्ति अपने वचन का इतना पक्का नहीं है और न अपने सम्राट का इतना विश्वसनीय है और न महान उत्तरदायित्व को उठाने की क्षमता रखता है।" परन्तु बाजीराव में कुछ दुर्गुण भी थे वह बड़ी ही उग्र प्रकृति का व्यक्ति था और उसमें गर्व का अभाव न था। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित तो अवश्य किया परन्तु वह उनके हृदय पर विजय न प्राप्त कर सका। सामन्तशाही ज्यों की त्यों बनी रही। यद्यपि वह सदैव राजभक्त तथा देशभक्त बना रहा परन्तु उसने पेशवा के गौरव एवं महत्व को बढ़ाया और छत्रपति को अन्धकार में डाल दिया। शाहू ने एक बार बाजीराव के सम्बन्ध में कहा था "पेशवा ने केवल एक बार मेरी वास्तविक सेवा की है जब उसने निजाम को भगा दिया है, अन्यथा अपने कार्यों तथा अपनी विजयों से उसने आत्मोन्नति की है।" डा० डिघे ने इस पेशवा के सम्बन्ध में लिखा है, "उसकी सभी सफलताओं के होते हुए भी हम उसे महान रचनात्मक प्रतिभा का व्यक्ति नहीं कह सकते जो शिवाजी की कोटि में रखा जा सके। उसने राज्य की राजनैतिक संस्थाओं में कोई ऐसा परिवर्तन अथवा सुधार नहीं किया जिससे जनता को स्थायी रूप से लाभ हो।" बाजीराव यह न समझ सका कि निजाम को

दक्षिण में पनपने देना भविष्य में महाराष्ट्र के लिये बड़ा घातक सिद्ध होगा। परन्तु इन दुर्बलताओं के होते हुए भी उसने अपने देश तथा राष्ट्र की बहुत सेवायें कीं और महाराष्ट्र के गौरव को ऊंचा उठाया।

---

प्रश्न ४—पेशवा कौन थे ? उनके नेतृत्व में १८ वीं शताब्दी में मरहठों के उत्थान का वर्णन कीजिये। मरहठों के पतन के कारण पर भी प्रकाश डालिए।

**Q. 4. Who were the Peshwas ? What progress did the Marathas make under their leadership ? Also explain the causes of their downfall.**

उत्तर—पेशवा—पेशवा मरहठा राजा का प्रधान मन्त्री होता था। शिवाजी तथा उसके निकटतम उत्तराधिकारियों के समय में पेशवा का पद वंशानुगत न था, परन्तु शाहू के शासन काल में यह पद वंशानुगत हो गया। वास्तव में शाहू के समय में पेशवा की शक्ति बहुत बढ़ गई और शासन की वास्तविक बागडोर पेशवा के हाथ में आ गई। शाहू के समय में बालाजी विश्वनाथ प्रथम शक्तिशाली पेशवा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बाजीराव प्रथम पेशवा हुआ। बाजीराव के बाद उसका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा हुआ। इस प्रकार पेशवा का पद पैतृक हो गया।

प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ (१७१३—२०)

बालाजी विश्वनाथ कोंकण का एक अत्यन्त गरीब ब्राह्मण था। शिवाजी के शासन काल के अन्तिम भाग में वह पूना में आकर बस गया था। बाद को वह पूना जिले का सूबेदार बन गया। इसके पश्चात् वह दौलताबाद जिले का सूबेदार भी बन गया। कुछ समय तक उसने शाहू के सेनापति के यहाँ क्लर्क का कार्य भी किया था। उन्नति करते-करते अपनी योग्यता से वह एक दिन पेशवा हो गया। १७१३ में उसने ताराबाई को हराकर मरहठा सरदारों को शाहू की अधीनता स्वीकार करने के लिये विवश किया। तमाम कलह को दूर करके उसने आन्तरिक शान्ति स्थापित की। फिर उसने बिना युद्ध किये सैयद भाई हुसैन अली से सन्धि करके दक्षिण में चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्राप्त किया। यही नहीं, उसकी सहायता से सैयद भाइयों ने मुगल बादशाह फरूखसियर को गद्दी से उतारा। उसने मरहठा सहयोग मंडल (Confederacy) की भी स्थापना की। इस प्रकार टूटे-फूटे मरहठा साम्राज्य का उसने फिर से निर्माण किया।

मुगल दरबार में रहने के कारण शाहू विलासप्रिय हो गया था। इसलिए उसने शासन प्रबन्ध का सभी काम अपने पेशवा बालाजी विश्वनाथ के हाथ में छोड़ दिया था। अब राज्य की सारी शक्ति धीरे-धीरे उसी के हाथ में आ गई। उसने

कृषि को बड़ा प्रोत्साहन दिया और ठेकेदारी की प्रथा बंद कर दी। मालगुजारी वसूल करने का प्रबन्ध उसने बड़ी अच्छी तरह किया। शाहू की अयोग्यता के कारण इस पेशवा की शक्ति इतनी बढ़ गई कि एक प्रकार से वही राजा हो गया।

**द्वितीय पेशवा बालाजीराव प्रथम (१७२०–४०)**

इसके लिए प्रश्न नं० ३ पढ़िये।

**तृतीय पेशवा बालाजी बाजीराव (१७४०—६१)**

बालाजीराव की मृत्यु के पश्चात् बालाजी बाजीराव पेशवा हुआ। उसकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। परन्तु वह बड़ा ही योग्य तथा बुद्धिमान व्यक्ति था। शाहू का उस पर पूर्ण विश्वास था। सन् १७४८ में शाहू की मृत्यु हो गई। पेशवा ने उससे लिखित आज्ञा ले ली। जिससे उसको राजा के नाम पर शासन प्रबन्ध करने का अधिकार मिल गया।

**दक्षिण में प्रगति**—बालाजी बाजीराव के समय में मरहठों ने दक्षिण तथा उत्तर दोनों ओर प्रगति की। सन् १७४८ में निजाम की मृत्यु से कर्नाटक में अराजकता फैल गई। गद्दी के लिये दो उम्मीदवारों में से एक को अंग्रेजों की ओर दूसरे को फ्रांसीसियों की सहायता मिली। इसमें फ्रांसीसियों की विजय हुई। पेशवा ने भी इस षड्यन्त्र में भाग लिया तथा बुसी की शक्ति को घटाने का प्रयत्न किया। मराठों और निजाम में लड़ाई छिड़ गई जिसमें निजाम पराजित हुआ इससे मराठों को असीरगढ़, दौलताबाद, बीजापुर, अहमदनगर तथा बुरहानपुर के किले और कुछ जमीन मिली।

**उत्तरी भारत में प्रगति**—उत्तरी भारत में राघोजी भौंसले ने बंगाल पर कई आक्रमण किये और बंगाल के सूबेदार अलीवर्दी खाँ ने तंग आकर उड़ीसा का प्रदेश मराठों को दे दिया और बंगाल तथा बिहार से चौथ वसूल करने की आज्ञा दे दी।

पेशवा के भाई रघुनाथराव ने उत्तरी भारत पर कई आक्रमण किये और चौथ वसूल की। इस कार्य से मरहठों ने राजपूतों को अपने विरुद्ध कर लिया। इसके पश्चात् रघुनाथराव ने सम्राट अहमदशाह को गद्दी से हटाने में मुगल वजीर की सहायता की। इस सहायता के बदले में दोआब के कुछ प्रदेश मराठों को मिल गये। इसी बीच में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर दिया (१७५७) और पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया। अब्दाली के चले जाने के पश्चात् रघुनाथराव ने दिल्ली पर आक्रमण किया और पंजाब से अफगानों को मार भगाया।

**पानीपत की तीसरी लड़ाई (१७६१) के कारण—**

(१) **मुगल साम्राज्य की निर्बलता**—औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य छिन्न भिन्न हो जाने पर नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली आदि बाह्य आक्रमणकारियों को भारत पर आक्रमण करने का और पंजाब पर अधिकार जमाने का अवसर मिला।

(२) **मराठों का हिन्दू पद-पादशाही का आदर्श**—शिवाजी के समय से ही मराठों का आदर्श हिन्दू स्वराज्य स्थापित करने का था। इस आदर्श को पूर्ण करने का प्रथम तीन पेशवाओं ने प्रयत्न किया। इसके परिणामस्वरूप मरहठे भिन्न-भिन्न शक्तियों के विरोध में आते गये।

(३) **नादिरशाह का आक्रमण**—नादिरशाह के आक्रमण का मुगल सम्राट के ऊपर घातक आघात लगा था और वह किसी भी प्रवल आक्रमणकारी के सामने धराशाही हो सकता था। उधर नादिरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी के रूप में ईरान के बादशाह अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब पर अधिकार करने का दावा किया। उसने दिल्ली पर आक्रमण करके मुगल बादशाह से पंजाब ले लिया। यह बात मरहठों को बहुत बुरी लगी।

(४) **मुगल वजीर तथा रुहेलों में वैमनस्य**—१७४८ में मुगल सम्राट की मृत्यु के बाद वजीर सफदर जंग तथा रुहेलों में संघर्ष आरम्भ हो गया। वजीर ने मरहठों की सहायता से रुहेलों को हुसेनपुर के स्थान पर पराजित किया। विवश होकर रुहेलो ने अफगानों का आश्रय लिया और अब्दाली से सहायता की प्रार्थना की।

(५) **मराठों को चौथ की स्वीकृति**—१७५२ में मुगल सम्राट ने मरहठों को उत्तर के सभी प्रान्तों से चौथ वसूल करने का अधिकार दे दिया इससे मरहठों का अब्दाली के साथ संघर्ष होना अनिवार्य हो गया क्योंकि १७५० में अब्दाली लाहौर तथा मुलतान पर अधिकार जमा चुका था।

(६) **अब्दाली को निमन्त्रण**—रुहेले तथा राजपूत दोनों ही मरहठों से असन्तुष्ट थे। अतएव दोनों शक्तियों ने दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए अब्दाली के पास निमन्त्रण भेजे। निजाम, रुहेले तथा अवध का नवाब यह सभी मरहठों के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे और चाहते थे कि अब्दाली दिल्ली पर आक्रमण करे। सिक्ख भी मरहठों से असन्तुष्ट थे। सभी लोग अब्दाली की सहायता करने को तैयार थे।

(७) **मरहठों का पंजाब पर अधिकार**—पेशवा के भाई रघुनाथराव ने अहमदशाह अब्दाली के सूबेदार को पंजाब से बाहर निकाल दिया। इस समाचार से अब्दाली क्रोध से आग बबूला हो गया और मरहठों को दण्ड देने के लिए एक बड़ी सेना के साथ चल दिया।

घटनायें—अहमदशाह अब्दाली पंजाब पर फिर चढ़ आया और उसने मरहठों को भी वहां से मार भगाया। उसने रुहेलों तथा अवध के नवाब शुजाउद्दौला को भी अपनी ओर मिला लिया और मराठों ने भी सदाशिवराव की अध्यक्षता में एक शक्तिशाली सेना को उनका सामना करने के लिए भेजा। तोपखाने का नेता इब्राहीम गर्दी था। होल्कर, सिंधिया और गायकवाड़ भी अपनी-अपनी सेना लेकर आ गए थे राजपूतों और जाटों ने भी सहायता भेजी।

पानीपत के मैदान में दोनों फौजें जमा हुईं। इस युद्ध में सदाशिवराव ने प्राचीन छापामार युद्ध प्रणाली को त्याग कर योरोपियन रणनीति को अपनाया जिसे

वह पूरे तौर से समझ भी न पाया था। दो महीनों तक झपटा झपटी के सिवाय कुछ न हुआ। इसी समय मरहठों की रसद का मार्ग बिल्कुल कट गया। अन्त में रसद समाप्त हो जाने पर सदाशिवराव ने लड़ाई आरम्भ की जिसमें सदाशिवराव मारा गया और इब्राहीम घायल हुआ। होल्कर भरतपुर की ओर भाग गया। सिंधिया के पैर में चोट लगी और वह युद्ध के मैदान से भाग गया। महाराष्ट्र में कोई घर ऐसा न बचा जिसका एक न एक आदमी मारा न गया हो। इस समाचार ने पेशवा के हृदय पर ऐसा आघात पहुंचाया कि उसकी तुरन्त मृत्यु हो गई।

**युद्ध का परिणाम**--इस युद्ध का परिणाम मराठों के लिए बड़ा हानिकारक सिद्ध हुआ। अनगिनत मराठे इस युद्ध में मारे गए। उनको साम्राज्य की भी हानि उठानी पड़ी। उत्तरी भारत में राजपूताना, मालवा और दोआब पर से उनका प्रभुत्व उठ गया और दक्षिण भारत में निजाम तथा हैदरअली को अपनी उन्नति करने का अवसर मिल गया।

इस युद्ध के बाद पेशवा का प्रभुत्व भी जाता रहा। अब मरहठे सरदार पेशवा की परवाह न करने लगे और अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में लीन हो गए। सिन्धियां, भौंसला, गायकवाड़, होल्कर आदि मराठा सरदार स्वतन्त्र हो गए। उनमें अब सहयोग न रहा बल्कि एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगे।

इस युद्ध से अंग्रेजों के लिए मैदान साफ हो गया और वे अपना प्रभुत्व भारत पर पूर्ण रूप से स्थापित करने में सफल हुए।

**मराठों की इस युद्ध में पराजय के कारण—**

**(१) छापामार रणनीति का त्याग**—इस युद्ध में मराठों ने अपनी छापामार रणनीति का अनुसरण नहीं किया। उन्होंने योरोपियन युद्ध विधि को अपनाया जिसमें वे कुशल नहीं थे। न उनके सेनापति और न उनके सैनिक ही इस विधि को भली भांति समझ सके थे।

**(२) मरहठा सेना में दोष**—मरहठों की सेना में धीरे-धीरे मुगल सेना के दोष आ गए थे और पहले की भांति अब अत्यन्त द्रुतगति से उसका संचालन नहीं हो सकता था।

**(३) मुसलमानों का संगठन और हिन्दुओं में इसका अभाव**—मरहठों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर मुसलमानों में बड़ी ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। मुसलमान मरहठों के विरुद्ध संगठित हो गए। निजाम, अवध के नवाब तथा रुहेलों ने अब्दाली की पूरी सहायता की। दूसरी ओर मरहठों के बुरे वर्ताव के कारण राजपूतों और सिक्खों ने उनका साथ नहीं दिया।

**(४) सदाशिवराव का उग्र स्वभाव**—सदाशिवराव बड़ा ही गर्वशील तथा उग्र प्रकृति का व्यक्ति था। उसके दुर्व्यवहार के कारण जाट तथा कुछ राजपूत सेना युद्ध आरम्भ होने के दिन से पहले ही युद्ध स्थल से वापिस आ गए थे। यही नहीं, सदाशिवराव ने हमला करने में बहुत देर की, उसने हमला तब किया जब उसके यहाँ रसद की बहुत कमी हो गई। अतः मरहठों को भूखे लड़ना पड़ा।

**(५) इब्राहीम गर्दी का विश्वासघात**—तोपखाने के नेता इब्राहीम गर्दी ने अत्यन्त गम्भीर स्थिति में बन्दूकों का चलाना बन्द करा दिया जिसके परिणाम मरहठों के लिए बड़े घातक सिद्ध हुए।

**(६) मरहठा सरदारों में मतभेद**—मरहठा सरदारों तथा सेनापतियों में मतभेद रहता था। सिन्धिया तथा होल्कर एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे। उनकी प्रतिद्वन्द्विता के कारण ही राजपूतों तथा मरहठों में वैमनस्य उत्पन्न हो गया था।

**(७) मरहठों का अव्यवस्थित निशाना**—एक तो मरहठों की सेना में न लड़ने वालों की संख्या आवश्यकता से भी अधिक थी और दूसरी ओर मरहठों के बन्दूकची ठीक से निशाना नहीं लगा पाते थे। वे ज्यादा ऊंचाई से निशाना मारते थे जिससे वह ठीक नहीं हो पाता था।

**(८) पेशवा की उत्तर भारत में अनुपस्थिति**—मरहठों की पराजय का एक कारण यह भी था कि पेशवा बालाजी बाजीराव युद्ध के समय मरहठों को उत्साह दिलाने के लिए उत्तर भारत में न रहा और वह सरदारों के आपसी मतभेदों को युद्धस्थल पर न मिटा सका।

**चतुर्थ पेशवा माधवराव (१७६१–७२)**—

बालाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र माधवराव पेशवा हुआ। इस समय उसकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। अतएव उसका चाचा रघुनाथराव उसका संरक्षक बना जो शासन की बागडोर अपने हाथ में रखना चाहता था और माधवराव को अपनी आधीनता में रखना चाहता था। परन्तु माधवराव बड़ा ही योग्य तथा महत्वाकांक्षी तथा स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति था। अतएव उसने अपने को अपने चाचा के चंगुल से मुक्त कर लिया और महाराष्ट्र के मस्तक को ऊंचा करने में लग गया। उसके काल की महत्वपूर्ण घटनाएँ निम्नलिखित हैं :—

**मरहटे तथा निजाम**—पानीपत की दुर्घटना से सर्वप्रथम निजाम ने लाभ उठाना चाहा। उसने मरहठा सरदार मुरारराव, घोरपदे, हनुमतराव, निम्बालकर, रामचन्द्र जाधव तथा जानोजी भोंसले तथा अंग्रेजों को अपनी ओर मिलाकर पेशवा के विरुद्ध एक गुट बना लिया। निजाम ने दो बार पूना पर आक्रमण किया। परन्तु पेशवा ने निजाम को बुरी तरह परास्त किया। परन्तु रघुनाथराव (पेशवा माधवराव का चाचा) भी अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिये उदार शर्तों पर निजाम से ही जा मिला। दूसरे वर्ष निजाम ने फिर आक्रमण किया। माधवराव इन दिनों कर्नाटक में था। उसने हैदराबाद पर आक्रमण कर दिया। यह देखकर निजाम लौटा। गोदावरी के किनारे पर उसे बुरी तरह हराया और उससे कुछ जिले लेकर सन्धि करने के लिये बाध्य किया। इसके बाद २० वर्ष तक निजाम में मरहठों से लोहा लेने का साहस न रहा। पानीपत की दुर्घटना के उपरांत यह मरहठा शक्ति के पुनरुत्थान की प्रतीक थी। इस विजय ने रघुनाथराव के संरक्षण काल का अन्त कर दिया और पेशवा का स्वतन्त्र शासन आरम्भ हो गया।

**मरहठे तथा हैदरअली:**— इसी बीच में हैदरअली मैसूर का शासक बन गया १७६४ से १७७२ के बीच मे मरहठों ने चार बार हैदरअली पर आक्रमण किया और उससे काफी धन वसूल किया और मैसूर के कुछ किलों पर भी मरहठों का अधिकार हो गया।

**अंग्रेजों के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध:**—मरहठों की बढ़ती हुई शक्ति से अंग्रेज भी डर गये थे और उनकी शक्ति को रोकना चाहते थे। पहले तो अंग्रेजों ने मैत्री करने का प्रयास किया। मोस्टीन नामक एक अंग्रेज दूत बहुमूल्य उपहार लेकर पूना गया। मोस्टीन ने माधवराव को यह विश्वास दिलाया कि जब तक पेशवा अंग्रेजों का मित्र बना रहेगा तब तक वे उसके विरुद्ध उसके किसी सम्बन्धी अथवा अन्य शक्ति की सहायता न करेंगे।

**उत्तरी भारत में प्रगति**—दक्षिण की शक्ति से निबट कर अब पेशवा ने उत्तर की ओर ध्यान दिया। बरार का शासक जानोजी भसौंला निजाम और हैदरअली के साथ मिला हुआ था। पेशवा ने उसे पराजित करके अपना प्रभुत्व स्वीकार करने के लिये बाध्य किया।

पानीपत की दुर्घटना के बाद उत्तर की दशा अत्यन्त जटिल हो गई थी। छोटे बड़े सभी राज्य अपने प्रभुत्व को स्थापित करने में संलग्न थे। इन दिनों उत्तर की प्रमुख हिन्दू शक्तियाँ राजपूत, जाट तथा बुन्देले थीं और मुसलमानों में रुहेले तथा अवध के नवाब थे। मरहठों ने एक बार फिर उत्तरी भारत में अपनी प्रभुता स्थापित करने का प्रयत्न किया। मराठा सेनापतियों ने मालवा तथा बुन्देलखण्ड पर अधिकार कर लिया और राजपूत राजाओं, जाटों तथा रुहेलों से रुपया वसूल किया। दिल्ली पर भी मरहठों ने अपना अधिकार किया और मुगल सम्राट शाह-आलम को जो इलाहाबाद में अंग्रेजों की शरण में था, दिल्ली लाकर सिंहासन पर बिठलाया।

इस प्रकार मरहठों का खोया हुआ प्रभुत्व माधवराव के समय में फिर स्थापित हो गया, परन्तु दुर्भाग्यवश २७ वर्ष की अवस्था में ही उसका स्वर्गवास हो गया। (१७७२)। माधवराव वास्तव में एक महान् पेशवा था। उसने केवल ११ वर्ष के ही अपने पूर्ववर्ती पेशवाओं के कार्य को पूरा किया। वह बड़ा ही ईमानदार, निष्पक्ष, न्यायप्रिय तथा प्रजा का शुभचिन्तक था। उसमें बालाजी विश्वनाथ की राजनीतिज्ञता, बाजीराव की वीरता तथा अपूर्व देशप्रेम विद्यमान था। पानीपत की दुर्घटना मराठा राज्य के लिये इतनी घातक सिद्ध नहीं हुई, जितनी इस नवयुवक पेशवा की अकाल मृत्यु। माधवराव ने दक्षिण में निजाम का नतमस्तक किया, हैदरअली ने उसके सामने घुटने टेक दिये और अंग्रेजों के साथ उसने कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किया। आन्तरिक विरोधों को उसने सफलतापूर्वक दबाया और शान्ति स्थापित की। माधव-राव न केवल एक महान् विजेता वरन् एक अत्यन्त कुशल शासक भी था। उसने

शासन के नैतिक स्तर को उठाया और चोरी तथा बेईमानी का नाश किया। लगान वसूल करने की उसने बड़ी अच्छी व्यवस्था की। बहुत से अनावश्यक कर हटा लिये। बेगार हटा दी गई और सब को नकद वेतन दिया जाने लगा। उसने नवयुवकों को राष्ट्र सेवा की शिक्षा देकर मरहठा जाति का पुनः निर्माण किया। उसने मरहठा शक्ति को फिर से उठाकर उसे गौरव प्रदान किया। यदि माधवराव ने कोई भूल की तो वह केवल यही थी कि उसने अधिक परिश्रम करके अपने जीवन की अवधि को कम कर दिया।

## अन्तिम पेशवा

माधवराव की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई **नारायणराव** (१७७२-७३) में गद्दी पर बैठा परन्तु नौ महीने बाद ही उसका चचा रघुनाथ राव ने उसका वध कर दिया और स्वयं पेशवा (१७६३-६४) में हो गया। शीघ्र ही रघुनाथ राव के विरुद्ध दल के नेता नाना फड़नवीस ने नारायण राव की स्त्री से पैदा हुए बालक को **माधवराव द्वितीय** (१७६४-६५) के नाम से पेशवा बना दिया। इस प्रकार प्रथम मराठा युद्ध अंग्रेजों के विरुद्ध हुआ। युद्ध के बाद भी पेशवा माधवराव द्वितीय ही रहा। उसके समय में शासन की बागडोर प्रायः उसके मन्त्रि नाना फड़नवीस के हाथ में रही जिसने पेशवा के नेतृत्व में मरहठों की एकता तथा गौरव बनाये रखने का प्रयत्न किया।

माधवराव द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् रघुनाथराव का पुत्र **बाजीराव द्वितीय** (१७६६-१८१८) में पेशवा हुआ। वह अयोग्य तथा षड्यन्त्रकारी था और नाना फड़नवीस की मृत्यु के पश्चात् उसने लार्ड वेलेजली से बेसीन के स्थान पर सन्धि कर ली। इसके पश्चात् मरहठों के अंग्रेजों से तीन युद्ध और हुए। चतुर्थ युद्ध के पश्चात् लार्ड हेस्टिंग्ज ने पेशवा का समस्त राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया और पेशवा को पेन्शन दे दी गई। इस प्रकार मरहठा राज्य का अन्त हुआ।

## मरहठों के पतन के कारण

(१) पेशवा का वंशानुगत पद—मरहठा साम्राज्य की वही दशा हुई जो प्रायः राजतन्त्रात्मक तथा वंशानुगत शासन व्यवस्था की होती है। शिवाजी के उत्तराधिकारियों में अधिकांश अयोग्य ही थे। पेशवा का पद भी शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त वंशानुगत हो गया था। यद्यपि यह सत्य है कि प्रथम चार पेशवा बड़े योग्य तथा कुशल थे परन्तु बाद के पेशवा बड़े अयोग्य सिद्ध हुए और मरहठा राज्य के पतन के लिये जिम्मेदार बने।

(२) जागीर व्यवस्था—मरहठा साम्राज्य के पतन के लिये जागीर व्यवस्था भी बहुत बड़े अंश में उत्तरदायी थी। शिवाजी ने इस व्यवस्था का घोर विरोध किया था। परन्तु राजाराम को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के संग्राम के समय विवश होकर इस व्यवस्था को अपनाना पड़ा। इससे मराठा राज्य कई भागों में बंट गया और

केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गई। अब मराठा सरदार राष्ट्र हित की चिन्ता न करके अपने स्वार्थ की चिन्ता करने लगे।

(३) **उत्तरी भारत की विजय** - मरहठों की उत्तरी विजय से मरहठा राज्य का एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तन होना भी इसके लिये बड़ा घातक सिद्ध हुआ। उत्तरी भारत की विजय तो बड़ी ही अहितकर सिद्ध हुई। शाहू के शासन काल में पन्त तथा बाजीराव में इस विजय पर बड़ा वाद-विवाद हुआ। आन्तरिक संगठन उत्तरी विजय से कहीं अधिक आवश्यक था। इसके अतिरिक्त निजाम, सिद्धि तथा यूरोपीय शत्रुओं का, जो अत्यन्त निकट थे, विनाश करना उत्तर में साम्राज्य बढ़ाने की अपेक्षा कहीं अधिक जरूरी था। इसका साम्राज्य पर बुरा प्रभाव पड़ा।

(४) **राष्ट्रीय भावना का अभाव**—मरहठा सरदारों में राष्ट्रीय भावना का सर्वथा अभाव रहा। वे प्रायः अपने स्वार्थ के लिये राष्ट्रीय हित की चिन्ता न करते थे। उनमें आपस में ईर्ष्या तथा द्वेष की भावना कूट-कूट कर भरी थी और सहयोग की भावना का सर्वथा अभाव था। मरहठों की विफलता का हमेशा यह एक बहुत बड़ा कारण रहा है।

(५) **तोपखाने की उपेक्षा**—१८ वीं शताब्दी में मरहठों ने यद्यपि अपनी प्राचीन युद्ध पद्धति को त्याग दिया था परन्तु फिर भी वे अपनी सेना का संगठन पूर्ण रूप से वैज्ञानिक ढंग से न कर सके। तोपखाने की उन्होंने सदैव उपेक्षा की। ऐसी दशा में उनका अंग्रेजों के सामने ठहरना कठिन था। मरहठा सैनिक अंग्रेज सैनिकों से उतना नहीं डरते थे जितना उनकी बन्दूकों तथा तोपों से। सम्भवतः धर्म तथा जाति के भ्रष्ट हो जाने के भय से उन्होंने तोपखाने की उपेक्षा की।

(६) **आर्थिक समस्या**—मरहठों के पतन का एक यह भी कारण था कि उनकी कोई ठीक आर्थिक नीति न थी। उन्हें चौथ तथा सरदेशमुखी के ऊपर ही निर्भर रहना पड़ता था। ऐसी आर्थिक व्यवस्था में साम्राज्य का स्थायी होना कठिन था।

(७) **मरहठा नेताओं की अकाल मृत्यु**—दुर्भाग्यवश कई मरहठे नेताओं की अकाल मृत्यु हुई। इसके कारण वे अपने कार्य तथा योजनाओं को पूरे तौर से अमल में न ला सके। माधवराव प्रथम की २७ वर्ष की आयु में ही मृत्यु हो गई। योग्य मन्त्री नाना फड़नवीस भी अधिक समय तक जीवित नहीं रहा। उसके मरते ही मरहठा मण्डल की एकता तथा गौरवता नष्ट हो गई और आन्तरिक कलह मच गया।

(८) **अंग्रेजों की उच्चतर कार्य कुशलता**—मरहठों के मुकाबले में अंग्रेज अधिक कुशल, योग्य, देश प्रेमी, राजनीतिज्ञ तथा सेनापति थे। उन्होंने मरहठों की सभी दुर्बलताओं का पता लगाकर उनसे लाभ उठाया।

**गोविन्द सखाराम सारदेसाई** ने साम्राज्य के पतन का उत्तरदायित्व पूर्णतया पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा दौलतराव सिन्धिया के ऊपर रक्खा है। इन दोनों नवयुवकों के नेतृत्व में मरहठों का न केवल राजनैतिक वरन् नैतिक पतन भी हुआ।

—:o:—

प्रश्न ५—चतुर्थ पेशवा माधवराव की जीवनी पर प्रकाश डालिये। उसने मरहठों की शक्ति और प्रभाव को पुनर्जीवित करने का क्या प्रयास किया ?

Q. 5. Sketch the career of the 4th Peshwa Madhav Rav. What attempts did he make to revive Maratha power and influence ?

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नं० ४ में माधवराव का वर्णन पढ़िये।

प्रश्न ६—पानीपत के तृतीय युद्ध के कारणों तथा परिणामों पर प्रकाश डालिए।

Q. 6 What were the causes and results of the Third Battle of Panipat. ?

उत्तर—प्रश्न नं० ४ में पानीपत के युद्ध का वर्णन पढ़िए।

प्रश्न ७—पेशवाओं के काल में मराठा साम्राज्य के संगठन और शासन व्यवस्था में क्या-क्या परिवर्तन हुये ? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

Q. 7. What changes were introduced in the system of administration and organisation of the Maratha empire ? Explain critically.

उत्तर—प्रश्न नं० ४ पढ़िये।

—:•:—

# ९

# मुगल काल पर विहंगम दृष्टिपात

## (GLIMPSES ON THE MUGHAL PERIOD)

**प्रश्न १—मुगलों तथा सिक्खों के आपसी सम्बन्धों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

**Q. 1. Describe the dealings of the Mughal Emperors with the Sikhs.**

**उत्तर**—सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक थे। उन्हें सन् १४९९ ई० में सुलतानपुर के निकट एक नदी के किनारे ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् उन्होंने अपने धर्म के उपदेश जगह-जगह पर घूमकर जनसाधारण को दिए। उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया: हजारों लोगों ने उनकी शिक्षाओं से लाभ उठाया और उनके अनुयायी वन गए। यही शिष्य आगे चलकर सिक्ख कहलाए। कुछ समय तक तो हिन्दू और मुसलमानों के आपसी सम्बन्ध अच्छे रहे। परन्तु वाद को मुगल सम्राटों ने उन पर धार्मिक अत्याचार करने आरम्भ कर दिए। अतः विवश होकर सिक्ख गुरुओं को अपने इस भक्त सम्प्रदाय को सैनिक दल में परिवर्तन करना पड़ा। इस प्रकार मुगलों और सिक्खों में संघर्ष होने लगा और उनके आपसी सम्बन्ध वड़े कटु बन गये। इन सम्बन्धों पर नीचे प्रकाश डाला जाता है।

**बाबर, हुमायूं तथा अकवर के सिक्खों के साथ सम्बन्ध**—इन प्रथम तीन सम्राटों के काल में सिक्खों के साथ सम्बन्ध बड़े सहानुभूतिपूर्ण रहे। ये मुगल सम्राट सिक्ख गुरुओं से आशीर्वाद प्राप्त करते थे। अकबर ने गुरु रामदास की प्रेरणा से पंजाब के किसानों पर से अकाल पड़ जाने के कारण भूमि कर माफ कर दिया था। उसने सिक्ख गुरु को वहुत सी भूमि भी दान स्वरूप दे दी थी जहाँ पर आजकल अमृतसर आबाद है।

**जहांगीर और सिक्ख**-जहांगीर के समय में इन सम्बन्धों में बिगाड़ होना शुरू हो गया। जब जहांगीर के पुत्र खुसरों ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और वह लाहौर पर अधिकार जमाने के लिये पंजाव आया तो उसने गुरु अर्जुनदेव से आशीर्वाद प्राप्त किया। इस पर सम्राट जहांगीर सिक्ख गुरु से वड़ा नाराज हुआ और खुसरो के विद्रोह को दबाने के उपरांत उसने गुरु अर्जुनदेव को प्राण दन्ड दिया। परन्तु बाद को इस दन्ड के स्थान पर गुरु जी पर एक लाख रुपया जुर्माना कर दिया गया। गुरु जी ने इस जुर्माने को अदा नहीं किया। अतः क्रुद्ध होकर जहांगीर ने

अर्जुन को यातनाएँ देकर मरवा डाला। इस अत्याचार से सिक्खों में बड़ी उत्तेजना फैली और वे मुगलों के कट्टर शत्रु बन गये।

गुरु अर्जुनदेव के पश्चात् गुरु हरगोविन्द सिंह सिक्खों के गुरु बने। उन्होंने सिक्खों की २२०० व्यक्तियों की एक बड़ी सेना तैयार की और उन्हें आत्मरक्षा के लिये मर मिटने का आदेश दिया। इस पर जहाँगीर ने उन्हें ग्वालियर के किले में कैद कर लिया, परन्तु कुछ समय पश्चात् उन्हें मुक्त कर दिया गया और उनसे मेल कर लिया गया।

शाहजहाँ और सिक्ख—शाहजहाँ के शासन काल में मुगलों और सिक्खों के सम्बन्ध फिर खराब हो गये। अब सिक्खों को मुगलों से कई वर्ष तक लोहा भी लेना पड़ा। वे मुगलों की शक्ति के सामने अधिक दिनों तक नहीं ठहर सके। अतः गुरु हरगोविन्द को पहाड़ी प्रदेश में जाकर शरण लेनी पड़ी।

औरङ्गजेब और सिक्ख—औरंगजेब के समय में प्रजा पर धार्मिक अत्याचार खूब हुए। अतः मुगल सिक्ख सम्बन्ध बहुत अधिक बिगड़ गये। गुरु तेगबहादुर ने सिक्ख धर्म के प्रचार का कार्य बड़े जोर-शोर से चलाया। बहुत से मुसलमान भी सिक्ख बन गये। औरंगजेब इस चीज को बिल्कुल भी सहन न कर सका। उसने सिक्ख गुरु को अपने पास बुलाकर बलात इस्लाम धर्म स्वीकार करने को कहा। गुरु ने इससे साफ इन्कार कर दिया। फलतः सन् १६७५ ई० में कड़ी निर्दयता के साथ गुरु का वध करा दिया गया। इस वध से सिक्खों में और भी जाग्रति उत्पन्न हो गई और वे अपने धर्म एवं जाति के लिये मर मिटने को तैयार हो गये।

गुरु गोविन्द सिंह और मुगल—गुरु तेगबहादुर के बलिदान के उपरान्त गुरु गोविन्द सिंह सिक्खों के अन्तिम गुरु हुए। उन्होंने सिक्खों को युद्ध की शिक्षा देनी शुरू की और पठानों को अपनी सेना में भर्ती किया। उन्होंने आनन्दपुर साहब को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया और सिक्खों को धार्मिक सम्प्रदाय से खालसा में परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार सिक्ख लोग सैनिक बन गये। अब उन्हें अपने शरीर के साथ सदैव पांच वस्तुएँ—केश, कृपाण, कच्छा, कंघा और कड़ा रखना अनिवार्य हो गया। सिक्खों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर औरंगजेब के आदेश पर सरहिन्द के गवर्नर वजीर खां ने सिक्खों पर आक्रमण किया। दोनों शक्तियों में खूब डटकर युद्ध हुआ। गुरु गोविन्द सिंह के दो पुत्र बन्दी बनाकर जीवित दीवार में चिनवा दिये गये और शेष दो युद्ध में काम आये।

सन् १७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र बहादुरशाह गद्दी पर बैठा। नये सम्राट के गुरु के साथ सम्बन्ध अच्छे थे और वह उसके साथ दक्षिण जाने को राजी हो गये। सन् १७०८ ई० में वहीं पर एक पठान ने उनके शरीर में छुरा भोंककर उनकी हत्या कर दी।

गुरु गोविन्द सिंह की हत्या के पश्चात सिक्खों का नेतृत्व एक डोगरा राजपूत 'बन्दा बहादुर' ने संभाला और लगभग ४५ वर्ष तक वह सिक्खों की शक्ति बढ़ाता रहा।

**बन्दा वैरागी और मुगल**—बन्दा वैरागी एक डोगरा राजपूत था। वैराग्य धारण करके उसने दक्षिणी भारत में गुरु गोविन्दसिंह से आशीर्वाद प्राप्त किया था। गुरु के वध के उपरान्त नेतृत्व का कार्य उसने अपने हाथों में लिया। उसने 'सरहिन्द' नामक स्थान को विजय किया तथा गुरु गोविन्द सिंह के लड़कों के हत्यारों से जी खोलकर बदला लिया। उसके नेतृत्व में सिक्खों ने हजारों मुसलमानों की हत्या की, उनकी मस्जिदें जला दीं और मुल्ला, मौलवियों एवं हाफिजों का खूब अपमान किया।

अब बादशाह बहादुरशाह ने ६० हजार सैनिक देकर अमीन खाँ को सिक्खों का नाश करने के लिये भेजा। घमासान युद्ध हुआ और अन्त में बन्दा वैरागी को अपनी जान बचाकर पहाड़ों में छिपना पड़ा। इसके पश्चात् बादशाह फर्रुखसियर ने **अब्दुल समद** को बन्दा को कुचलने के लिए भेजा। गुरुदासपुर नांगल का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। सिक्ख बड़ी वीरता से लड़े परन्तु अन्त में उन्हें आत्मसमर्पण करना पड़ा। बन्दा बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया और जून सन् १७१६ ई० में मृत्यु के घाट उतार दिया गया।

बन्दा की मृत्यु के पश्चात् भी सिक्खों का बराबर मुगलों से संघर्ष चलता रहा। सन् १७३९ ई० में जब **नादिरशाह** दिल्ली को लूटकर वापिस लौट रहा था तो सिक्खों ने अफगानों का बहुत सा माल लूट लिया। पंजाब के राज्यपाल ने सिक्खों को जड़ से मिटाने का दृढ़ निश्चय किया। उसने सिक्खों को पकड़ने तथा मारने पर इनाम की भी घोषणा की। सन् १७४२ ई० में हकीकतराय की हत्या कर दी गई। इसके पश्चात् कई सिक्ख सरदार जान से मार दिये गये और अब पंजाब के सब ही राज्यपाल सिक्खों के दमन करने की नीति अपनाने लगे।

सन् १७६१ ई० में जब **अहमदशाह अब्दाली** मरहठों को पराजित करके पानीपत के मैदान से वापिस लौट रहा था तो सिक्खों ने उसे बड़ा तंग किया। अतः अगले वर्ष ही अब्दाली ने भारत आकर सिक्खों को पराजित किया और उनके कत्ले आम का आदेश दिया। इसके पश्चात् अब्दाली ने कई बार पंजाब पर आक्रमण किया परन्तु सिक्ख पूर्ण रूप से न दबाये जा सके।

इसके पश्चात् सिक्ख कई मिस्लों में विभक्त हो गये। इन्हीं मिस्लों में से एक में **रणजीतसिंह** का जन्म हुआ जिसने अंग्रेजों के शासनकाल में सिक्खों को एक शक्तिशाली जाति बना दिया।

---

**प्रश्न २—मुगल बादशाहों की पश्चिमोत्तर नीति का वर्णन कीजिए।**

**Q. 2. Describe the North-west Frontier Policy of the Mughal Emperors.**

**उत्तर**—भारतीय सरकार के लिए पश्चिमोत्तर सीमा की समस्या सदैव ही बड़ी जटिल रही है। मुगल बादशाहों के समय में **कन्धार** एक बहुत ही महत्वपूर्ण

स्थान रहा है। इसी मार्ग से ईरान या मध्य एशिया की सेनायें भारत पर सफलता-पूर्वक आक्रमण कर सकती थीं। दूसरे कन्धार व्यापार का भी बड़ा केन्द्र था और भारत, मध्य एशिया, ईरान तथा तुर्की के व्यापारी अपनी वस्तुओं के आदान-प्रदान के लिये यहीं एकत्र हुआ करते थे। इसलिए दोनों ही दृष्टियों से कन्धार पर अधिकार आवश्यक हो गया था।

(१) **बाबर और हुमायूं के काल में** कन्धार के महत्व को सबसे पहले बाबर ने समझा और काबुल जीतने के पश्चात् उसने कन्धार पर अधिकार कर लिया। बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका द्वितीय पुत्र कामरान काबुल और कन्धार का स्वामी हुआ। ईरान के शाह ने भी कन्धार महत्व को खूब समझा था और उसने हुमायूं को सहायता इसी आश्वासन पर दी थी कि हुमायूं काबुल और कन्धार का प्रदेश शाह को दे देगा। परन्तु विजय के पश्चात् हुमायूं ने अपने वायदे को पूरा नहीं किया। अतः ईरान के शाह न सन् १५५८ में कन्धार पर अधिकार कर लिया और उसे अपने भतीजे हुसेन मिर्जा के सुपुर्द कर दिया।

(२) **सम्राट अकबर के काल में**— अकबर यह भली भांति जानता था कि भारत में मुगल साम्राज्य की रक्षा के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पश्चिमोत्तर सीमा पर शान्ति रहे और उसकी रक्षा की समुचित व्यवस्था कर दी जाय। सीमा पर स्थित स्वतन्त्रता प्रेमी उजबेग एवं युसुफजायी जातियों को भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा के लिए दबाना अत्यन्त आवश्यक हो गया था। अकबर ने अपने भाई मिर्जा हाकिम की मृत्यु के पश्चात् काबुल को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था और राजा मानसिंह को वहाँ का शासक नियुक्त किया था। अब अकबर ने उजबेगों को दबाया और रोशनियाँ सम्प्रदाय वालों को पराजित किया। जब युसुफजायियों का विद्रोह हुआ तो उसे दबाने के लिए जमाँ खां और राजा बीरबल भेजे गये। परन्तु इन दोनों सेनापतियों के आपसी झगड़ों का लाभ उठाकर विद्रोहियों ने राजा बीरबल और उनके आठ हजार मुगल सैनिकों को मार डाला। तब राजा टोडरमल और शाहजादा की आधीनता में दूसरी सेना भेजी गई जिसने विद्रोहियों को पूर्णतः नष्ट करके चारों ओर शान्ति स्थापित की।

अब अकबर ने अपनी दृष्टि कन्धार पर जमाई जो अभी तक ईरानियों के हाथ में था। परन्तु उजबेगों के लगातार उपद्रवों से तंग आकर वहाँ के शासक मिर्जा मुजफ्फर हुसैन ने कन्धार को १५९५ ई० में अकबर के सुपुर्द कर दिया। अब उजबेगों का सरदार भी मुगलों से भयभीत हो उठा। अतः उसने मुगलों के साथ मित्रता कर ली। इस प्रकार अकबर अपनी पश्चिमोत्तर नीति में पूर्णतः सफल हुआ।

(३) **जहांगीर के काल में**—ईरान का शाह अब्बास कन्धार लेने के लिये अवसर की तलाश में था। अतः शहजादा खुसरो के विद्रोह से लाभ उठाकर उसने १६०६ में कन्धार पर आक्रमण कर दिया परन्तु उसे कोई विशेष सफलता न मिली।

फलतः विवश होकर उसे घेरा उठा लेना पड़ा । जहाँगीर ने कन्धार की सुरक्षा के लिये १५००० घुड़सवारों की एक सेना मिर्जा गाजी की आधीनता में छोड़ दी। उधर शाह ने मित्रता का आश्वासन दिया परन्तु कन्धार विजय करने के प्रयत्न में वह सदैव लगा रहा । जब उसने जहाँगीर के पास अनेक उपहार आदि भेजकर मित्रता के भाव की पुष्टि कर ली तो मुगल सम्राट ने भी कन्धार की रक्षा में ढील डाल दी । इस स्थिति से लाभ उठाकर शाह ने १६२२ ई० में कन्धार पर घेरा डाल दिया । जहांगीर ने खबर पाकर कन्धार की रक्षा के लिये फौरन एक विशाल सेना इकट्ठी की और शहजादा खुर्रम को इसकी कमान सौंपी गई । परन्तु दरबार के षड़यन्त्र तथा राजनैतिक कारणों से खुर्रम ने कन्धार जाने से इन्कार कर दिया। अब यह कठिन कार्य शहरयार को सौंपा गया । परन्तु वह सेना का संचालन सफलता-पूर्वक न कर सका और कन्धार मुगलों के हाथ से निकल गया । इसको वापिस लेने के लिए जहाँगीर ने अपनी सेना भेजने का प्रयत्न किया परन्तु खुर्रम के विद्रोह के कारण उसे कन्धार फिर से जीतने का प्रयत्न स्थगित करना पड़ा ।

(४) शाहजहां के काल में—जब शाहजहाँ सम्राट हुआ तो उसका ध्यान भी कन्धार की ओर आकर्षित हुआ । उसने ईरानी सेनापति अली मर्दान खाँ को मुगलों के हाथ किला सौंप कर उनकी नौकरी में प्रवेश करने के लिये बहकाया । परन्तु अली मर्दान खां ने विश्वासघात करना उचित न समझा । इस पर शाहजहां ने उस पर आक्रमण करने की तैयारी शुरू कर दी । अली मर्दान ने किले की रक्षा के लिए शाह से शीघ्र ही सैनिक सहायता की प्रार्थना की, परन्तु शाह ने अली मर्दान को समझने में भूल की और उसकी ओर से विश्वासघात करने का सन्देह किया गया । इससे अली मर्दान खां की देश भक्ति की भावना को ठेस पहुंची और उसने १६२८ ई० में किलों को मुगलों के हाथों में सौंप दिया और स्वयं उनकी नौकरी करने लगा ।

अपनी इस विजय से प्रोत्साहित होकर शाहजहाँ की इच्छा मध्य एशिया में समरकन्द पर भी अधिकार करने की हुई परन्तु वह इस प्रयत्न में असफल रहा । कुछ समय पश्चात कन्धार भी उसके हाथों से निकल गया। परन्तु शाहजहां ने तीसरी बार फिर कन्धार को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लेने की चेष्टा की और औरंगजेब एक विशाल सेना लेकर कन्धार के विरुद्ध बढ़ा परन्तु पाँच महीने पश्चात असफल होकर वापिस लौट आया । यह मुगल सम्मान के लिये वास्तव में एक गहरा धक्का था । अब ईरानी भय के घने बादल पश्चिमी भारतवर्ष पर सदा विराजमान रहने लगे । इन्हीं बादलों से फूटकर नादिरशाह के हमले की सन् १७३९ में एक भीषण आँधी आई जिसने मुगल शासन की नींव को हिला दिया और मुगल साम्राज्य अब बड़ी तीव्रता से अपने पतन की ओर अग्रसर हुआ ।

(५) औरंगजेब के काल में—सीमा प्रान्त पर शान्ति स्थापित रखने के लिये औरंगजेब ने अपने पूर्वजों से भी अधिक दृढ़ निश्चय किया । उसके समय में पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित विभिन्न जातियों के उपद्रव खड़े हुए । सबसे पहले

गई १६४७ ई० में युसुफजायियों का विद्रोह प्रारम्भ हुआ और उन्होंने हजारा के जिले तक लूट मार करना तथा कर वसूल करना शुरू कर दिया। वहां के सरदारी अफसरों की प्रार्थना पर औरंगजेब ने तीन सेनाएं विद्रोहियों के दमन के लिये भेजीं। बहुत गहरी क्षति के साथ यूसुफजायी पराजित हुए और उनकी वस्तियों को मुगलों ने बुरी तरह लूटा। थोड़े समय के लिये उनका विद्रोह शान्त हो गया और उनको अपने आधीन रखने के लिये बादशाह ने राजा जसवन्त सिंह को जकरूद में नियुक्त किया।

अगले वर्ष अकमल खाँ की अधीनता में अफरीदियों का विद्रोह हुआ। मुगल सेनापति मुहम्मद अमीन खां पराजित होकर पेशावर भाग आया और मुगल सेना को अपार धन जन की हानि उठानी पड़ी। इसके विपरीत अकमल खाँ की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और लूट मार के भूखे लोग उसकी सेना में भर्ती होने लगे। इसके कुछ ही पहले खटक जाति ने अपने नेता खुशहाल खाँ की अधीनता में विद्रोह कर दिया था। अब खुशहाल खां भी अफरीदी नेता अकमल खां से जा मिला और मुगलों के खिलाफ अफगानों के राष्ट्रीय आन्दोलन का नेता बन गया। इस आन्दोलन को दबाने के लिये बादशाह ने लाहौर के गवर्नर फरीद खाँ को तथा शुजाअत खां को भेजा परन्तु अफगानों ने इन सेनापतियों को भी बुरी तरह हराया।

अब तक स्थिति बड़ी गम्भीर हो गई थी। अतः अफगानों के इस विद्रोह को दबाने के लिए वह स्वयं सीमा की ओर रवाना हुआ और हसन अब्दाल में प्रायः ढाई वर्षों तक वह डेरा डाले हुए पड़ा रहा। उसने शक्ति, कूटनीति तथा धन तीनों का आश्रय लिया। अनेक जातियाँ उपहार, पेन्शन, जागीर या पद प्रदान कर अपनी ओर मिला ली गईं। जो जातियां प्रलोभनों में नहीं आईं उन्हें शक्ति से दबाया गया। यद्यपि विद्रोही नेताओं के पुत्र बादशाह से आ मिले थे, परन्तु युद्ध का अन्त न हो सका। अनेकों युद्धों में विजय एवं पराजय के पश्चात अन्त में औरंगजेब को सफलता प्राप्त हुई और वह दिल्ली वापस लौट आया। काबुल के नए शासक अमीन खाँ ने अपनी उदार नीति द्वारा अनेक अफगान सरदारों को अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार अफगानों के विद्रोह का अन्त हुआ और युसुफजायी तथा अन्य अनेक जातियों ने बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली परन्तु खटक सरदार खुशहाल खां निरन्तर युद्ध करता रहा। अपनी जाति एवं देश की स्वतन्त्रता के उस प्रेमी को न तो मुगलों की सैन्यशक्ति दबा सकी और न उसका धन ही उसे जीत सका। वह व्यक्तिगत लाभ के लिये अपनी स्वतन्त्रता बेचने के लिए प्रस्तुत न था। परन्तु अन्त में उसे भी अपने ही पुत्र के विश्वासघात से औरंगजेब के सामने झुकना पड़ा।

डा० यदुनाथ सरकार ने इस युद्ध का प्रभाव का इस प्रकार वर्णन किया है, इस अफगान युद्ध से शाही कोष को तो बहुत बड़ी क्षति पहुंची ही, इसका राजनैतिक प्रभाव और भी भयानक हुआ। राजस्थान के पहाड़ी और उजाड़ प्रदेश में राजपूतों से होने वाले भावी युद्ध में इन अफगान सैनिकों का उपयोग सम्राट के

लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ होता, परन्तु इस युद्ध ने अब उनका उपयोग असम्भव कर दिया। इसके अतिरिक्त सीमा प्रदेश के युद्ध के लिए दक्षिण से योग्यतम सेना को बुला लेने से शिवाजी के ऊपर पड़ने वाला दबाव भी कम हो गया। अपने शत्रु की शक्ति विभाजन का पूरा लाभ शिवाजी ने उठाया और थोड़े से समय में ही उन्होंने गोलकुण्डा से कर्नाटक और मैसूर तथा बीजापुर होते हुये रायगढ़ तक के समस्त प्रदेश को रौंद डाला। वे अपने उत्कर्ष के चरम शिखर पर थे और उनकी विजयों की यह श्रृंखला अफरीदी एवं खटक के विद्रोह ने ही सम्भव की।"

---

प्रश्न ३—मुगल बादशाहों के शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिये।

**Q. 3. Describe the system of administration of the Mughals.**

उत्तर—(१) **मुगल शासन की विशेषता तथा स्वरूप**—चूंकि मुगल मूलतः विदेशी थे इसलिये उनकी राज-संस्थाओं का प्रधान आधार फारस तथा अरब की राज-संस्थायें थीं जिनमें भारतीय परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक परिवर्तन कर लिये गये थे। इस प्रकार मुगल राज-संस्था **देशीय तथा विदेशीय राज सस्थाओं** का सम्मिश्रण था। इसका स्वरूप **सैनिक** था क्योंकि शासन के प्रत्येक अधिकारी को सैनिक सेवा भी करनी पड़ती थी। इस राज-संस्था की एक विशेषता यह थी कि यह एक **केन्द्रीभूत निरंकुश शासन** था। सम्राट शासन व्यवस्था का प्राण था और उसी के अनुशासन तथा नियन्त्रण में सम्पूर्ण शासन चलता था। साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत होने के कारण अधिकांश कार्य पत्र व्यवहार से चलता था इसी से मुगल सरकार को **'कागजी राज'** कहा गया है।

(२) **केन्द्रीय सरकार**-(क) **सम्राट**—यद्यपि मुगल सम्राट स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश थे परन्तु उनके शासन को हम **उदार स्वेच्छाचारी शासन** (Benevolent Despotism) कह सकते हैं। सम्राट ही सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का प्रधान होता था और वही सम्पूर्ण शक्तियों का उद्गम माना जाता था। सिद्धांतः वह निरंकुश होता था और **ईश्वर की छाया** माना जाता था। यद्यपि मुसलमान होने के नाते सम्राट को मुस्लिम धार्मिक ग्रन्थों की आज्ञाओं को मानना पड़ता था, परन्तु शक्ति सम्पन्न सम्राट कुरान के नियमों का अर्थ अपनी इच्छानुसार भी लगा लिया करते थे। ऐसी स्थिति में उलमा लोगों के हाथ में विद्रोह या हत्या यही दो साधन रह जाते थे। इस प्रकार सम्राट धर्म और राज्य दोनों के समान रूप से प्रधान होते थे। राज्य के सभी उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति सम्राट ही किया करता था। राज्य-कार्य में सम्राट की सहायता के लिये नियमित रूप से संगठित कोई मन्त्रि-परिषद् नहीं थी। सम्राट के नीचे वजीर या दीवान राज्य का सबसे बड़ा कर्मचारी होता था। अन्य दूसरे अधिकारियों का स्थान उसके बाद था। जिन्हें मन्त्री की अपेक्षा

सेक्रेटरी कहना अधिक ठीक होगा। सम्राट प्रायः वजीर तथा अन्य अधिकारियों से परामर्श लेता था परन्तु महत्वपूर्ण प्रश्नों पर केवल वजीर ही परामर्श दे सकता था परन्तु इनका परामर्श मानने के लिये सम्राट बाध्य नहीं था।

सम्राट के ऊपर कोई वैधानिक नियन्त्रण न था। कोई ऐसी संस्था न थी जो सम्राट को पदच्युत करके दूसरे व्यक्ति को उसके स्थान पर आसीन कर सकती। इस प्रकार मुगल सम्राट पूर्ण प्रभुत्व शक्ति सम्पन्न थे और वे खलीफा अथवा अन्य किसी व्यक्ति के आधिपत्य को नहीं मानते थे। मुगल सम्राट स्वयं अपने जमाने का खलीफा होता था और न्याय का उद्गम माना जाता था। शासन का सारा कार्य विभिन्न विभागों में विभाजित था और प्रत्येक विभाग का प्रधान उसका संचालन तथा निरीक्षण करता था। ये प्रधान कर्मचारी और उनके विभाग निम्नलिखित थे।

(ख) दीवान—यह राज्य का सबसे बड़ा पदाधिकारी था। इसके आधीन पहले केवल राजस्व विभाग था। परन्तु बाद को इसने दूसरे विभागों के निरीक्षण का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। साम्राज्य के विभिन्न भागों से कर सम्बन्धी सभी कागजात इसके पास भेजे जाते थे और थोड़ी सी रकम को छोड़कर खर्च करने की सभी रकमों की आज्ञा वही देता था। अन्य अफसरों की भाँति उसे भी ऊँची सैनिक पदवी प्राप्त थी। परन्तु सम्राट के अधिक निकट रहने के कारण वह अधिक समय के लिये राजधानी से दूर नहीं रह सकता था। उसके सहायक होते थे—एक तनख्वाह विभाग का दीवान और दूसरा राजकीय भूमि का दीवान।

(ग) मीरबख्शी—दीवान के नीचे मीरबख्शी का स्थान था। वह वेतन वितरण-विभाग का प्रधान होता था। सभी अफसरों के वेतन के बिल को वह निरीक्षण करके स्वीकृत करता था। वह साम्राज्य का प्रधान सेनापति माना जाता था। मनसबदारों की सूची भी उसे नियमित रूप से रखनी पड़ती थी। वह सेना में भर्ती किए जाने वाले सैनिकों की भर्ती का काम भी देखता था।

(घ) खानसामा—यह शाही कारखाना, गोदाम तथा सेना और राजमहलों की नगरत आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति और वितरण विभाग का प्रधान होता था। वह सम्राट की यात्रा या आक्रमणों में उसके साथ रहता और उसके भोजन, व्यय आदि का निरीक्षण करता था। यह पद अत्यन्त महत्वपूर्ण था और बड़े ही विश्वास-पात्र मनुष्य की नियुक्ति इस पद पर होती थी।

(ङ) काजी-उल-कुजात—यह साम्राज्य का सबसे बड़ा न्यायाधीश होता था और न्याय के कार्य के समुचित संचालन के लिये उत्तरदायी होता था। न्याय के लिए कोई नियमित व्यवस्था न थी। नीचे से ऊपर तक के न्यायालयों का कोई क्रम न था। काजी, मुफ्ती तथा मीर अदल मुकदमों को सुनते थे और निर्णय देते थे। मुफ्ती कानून की व्याख्या किया करता था, काजी मुकदमों की जांच पड़ताल किया करता था और निर्णय देता था तथा मीर अदल फैसलों का मजमून बनाता तथा

पढ़कर सुनाता था। काजी हिन्दुओं तथा मुसलमानों के दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमे सुनते थे। हिन्दुओं के मामले में उनके रीति-रिवाजों तथा उनकी प्रथाओं का ध्यान रक्खा जाता था। काजियों से यह आशा की जाती थी कि वे न्यायशील, ईमानदार तथा निष्पक्ष रहें। उन दिनों आजकल की भाँति कानून नहीं बनते थे और न कोई लिखित कानून की पुस्तक ही होती थी जिससे जल्दी से निर्णय हो सके तथा फैसले को कार्य रूप में परिणत किया जा सके। फौजदारी के मामलों में कोई धार्मिक मतभेद न था, परन्तु दीवानी के मुकदमों में हिन्दुओं की परम्परागत प्रथाओं का ध्यान रक्खा जाता था। समय-समय पर दिए हुए न्यायाधीशों के निर्णय तथा उल्माओं के फतवा पर समुचित ध्यान दिया जाता था। जहाँगीर अपनी न्याय-प्रियता के लिए प्रसिद्ध है। उसने अपने महल के बाहरी द्वार से एक जंजीर लटकवा दी थी जिसके द्वारा लोग आसानी से बादशाह तक अपनी फरयाद पहुँचा सकते थे।

न्याय के दण्ड प्राय: कठोर होते थे। अंग भंग करने अथवा कोड़े मारने के लिए सम्राट के पास सूचना भेजना आवश्यक नहीं था, परन्तु सम्राट की स्वीकृति के बिना मृत्यु दण्ड नहीं दिया जा सकता था उन दिनों जेलों की कोई नियमित व्यवस्था न थी। कैदी किलों में बन्द कर दिए जाते थे। मुगल सम्राट जो अपने समय का खलीफा था न्याय का उद्‌गम था और खुले न्यायालयों में मुकदमों का निर्णय किया करता था। अपीलों का अन्तिम निर्णय उसी के यहाँ होता था। कभी-कभी वह प्रथम न्यायालय का भी काम किया करता था।

**(च) सदर-उल-सुदूर**—यह धार्मिक सम्पति का संरक्षक तथा दान विभाग का प्रधान था। उसका काम था उल्मा तथा याचकों को पुरस्कार तथा जागीर देना। साथ ही दीनता के लिए निकाल कर रक्खी गई रकम का वितरण भी वही करता था उसके नीचे प्रत्येक प्रान्त में सदर होते थे।

**(छ) मुहतसिब**—यह पदाधिकारी जनता के सदाचार के निरीक्षण विभाग का प्रधान होता था। शरियत द्वारा वर्जित प्रथाओं को वह दबाता था और इस बात की जांच करता था कि नैतिकता के नियमों का पालन किया जाता है अथवा नहीं। इस प्रकार वह जनता के नैतिक उत्थान के लिये उत्तरदायी होता था।

**(ज) मीर आतिश**—यह सेना के तोपखाने विभाग का प्रधान होता था।

**(झ) दारोगा-ए-डाक-चौकी**—यह संवाद तथा पत्र व्यवहार के विभाग का प्रधान होता था। इसके आधीन समाचार लेखकों को सम्राट स्वयं नियुक्त करता था। सूचना ले जाने के लिये जगह-जगह पर घोड़े तैयार रहते थे।

**(ञ) दारोगा-ए-टकसाल**—यह राज्य के टकसाल विभाग का प्रधान था।

**(३) प्रान्तीय शासन**—सम्पूर्ण राज्य प्रान्तों में विभक्त था। इन प्रान्तों की शासन व्यवस्था उसी प्रकार की थी जैसी केन्द्रीय शासन की। अत्याधिक दूरी तथा आवागमन के साधनों के अभाव में प्रान्तीय सरकारों की विद्रोही प्रवृत्ति को रोकने के लिए मुगल सम्राटों ने प्रान्तों में शक्ति विभाजन, शासन की अवधि को कम करने

तथा अफसरों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर तबादला करने की नीति अपनाई थी। अकबर के समय में प्रान्तों की संख्या १५ थी परन्तु बाद में यह २२ तक पहुँच गई थी। प्रान्तों के कर्मचारी निम्नलिखित होते थे—

(क) सूबेदार—प्रान्तीय शासन का प्रधान सूबेदार, साहिबा-सूबा या सिपह-सालार कहलाता था। उसके आधीन शासन और सेना दोनों ही विभाग थे। सम्राट की भाँति उसका भी अपना दरबार होता था, परन्तु न तो वह झरोखा-दर्शन दे सकता था और न बिना सम्राट की आज्ञा के युद्ध अथवा सन्धि कर सकता था। प्रान्तीय सेना का वही प्रधान होता था और उसकी समुचित व्यवस्था का पूर्ण उत्तर-दायित्व उसी पर था। वह स्थानीय विद्रोहों का दमन करता, न्याय का कार्य करता तथा आधीनस्थ राजाओं और सरदारों से कर वसूल करता था। उसे प्रान्त की सभी सूचनाएँ सम्राट के पास भेजनी पड़ती थी और उसकी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था। धर्म के मामलों में हस्तक्षेप करने का उसे कोई अधिकार न था।

(ख) दीवान—यह प्रांत का दूसरा महत्वपूर्ण पदाधिकारी था। यह शाही दीवान ही प्रांत में राजा का प्रतिनिधि होता था और प्रांत की मालगुजारी का पूरा प्रबन्ध उसी के हाथ में रहता था। उसके एजेन्ट प्रांत के भिन्न-भिन्न भागों में विक्रय कर, राहदारी कर, चुंगी तथा अन्य प्रकार के कर वसूल करके उसके पास भेजते थे। व्यय का सारा ब्यौरा उसके पास भेजा जाता था। धन के समुचित व्यय के लिए वह पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता था। वह गवर्नर के नियन्त्रण से बिल्कुल मुक्त रहता था।

(ग) फौजदार—यह सूबे का सहायक और अधीनस्थ अधिकारी होता था जिसे प्रांत के महत्वपूर्ण भागों का शासन सौंपा जाता था। यह प्रांतीय सेनाओं का सेनापति था, शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना में सूबेदार की सहायता करता था, उदण्ड गाँवों से मालगुजारी की वसूली में लिखित प्रार्थना पर वह आमिल की सैनिक सहायता भी करता था।

(घ) दीवान-ए-व्यूतत—यह पदाधिकारी प्रांत में खानसामा का प्रतिनिधि होता था। वह सड़कों तथा इमारतों की देखभाल करता था। उसे शाही सामान का निरीक्षण करना पड़ता था और राज्य के कारखानों को चलाना पड़ता था। लावारिस सम्पत्ति को वह अपने हाथों में लेता था और जब सम्राट प्रांत में जाता था तो वह उसे हर प्रकार की सुविधा देता था।

(ङ) काजी—प्रांत में काजी तथा सदर का पद प्रायः एक में मिला दिया जाता था। प्रांतीय काजी प्रांत में स्थित सभी काजियों का प्रधान होता था। सदर की हैसियत से वह शाही सदर के पास राजकीय दान के समुचित वितरण के लिये सिफारिशें भेजता था। वह प्रांत में साहित्य तथा सदाचरण की अभिवृद्धि में भी सहायता पहुँचाता था। वह न्याय करता था, बड़े बड़े अमीरों की शादियाँ करवाता था और सम्पूर्ण प्रांत का प्रधान रजिस्ट्रार होता था।

(च) **कोतवाल**—वास्तव में कोतवाल प्रांतीय पदाधिकारी नहीं था। प्रांतीय राजधानी में पुलिस की सुव्यवस्था करने के लिये रहता था। दुराचारियों तथा दुष्टों की पूरी सूचना रखता था और नगर में प्रवेश करने वाले तथा नगर से बाहर जाने वाले व्यक्तियों का लेखा रखता था। वह अपराधों का दमन करता था और जेलों की सुव्यवस्था करता था। सभी कोतवालों को सूबेदार के नियन्त्रण में कार्य करना पड़ता था।

(४) **सरकार** (क) प्रत्येक प्रांत कई सरकारों में विभक्त रहता था। सरकार का सर्वोच्च अधिकारी फौजदार था जिसकी नियुक्ति सूबेदार करता था। उन शहरों में जहाँ कोतवाल नहीं थे वही कोतवाल का भी कार्य करता था। सरकार के प्रधान नगरों में स्थित शाही कारखानों के दारोगा उसके ही निरीक्षण में काम करते थे। वह प्रायः उच्च कोटि का मनसबदार होता था और सम्राट द्वारा उसकी नियुक्ति होती थी।

(ख) **आमिल**—सरकार में दीवान का प्रतिनिधि करोड़ी तथा आमिल कहलाता था। वह लगान वसूल करता था और उसकी सहायता के लिए बहुत से कर्मचारी होते थे। यह खेतों में काम आने वाली जमीन की किस्म निश्चित करता और बेकार पड़ी जमीन को खेती के लायक बनवाने की कोशिश करता था। किसानों से किसी प्रकार का उपहार लेना या लगान से अधिक धन वसूल करने का उसे अधिकार नहीं था। इसे प्रजा की आर्थिक स्थिति तथा बाजारों के भावों की महावारी सूचना भी भेजनी पड़ती थी। वही कारकून मुकद्दम तथा पटवारी के रजिस्टरों की भी जाँच करता था।

(ग) **विटिकची**—इसके कार्य और पद आमिल के समान ही थे। वास्तव में वह आमिल के कामों पर नियन्त्रण रखने के लिये था। प्रत्येक फसल के समय वह राजस्व की सूची तैयार करता और उसकी वार्षिक रिपोर्ट दरबार में भेजता था।

(घ) **वाक्येनवीस**—प्रत्येक सरकार में एक वाक्ये नवीस था। सम्वाद लेखक भी होता था जो सरकार की सभी सूचनायें प्रान्तीय वाक्ये नवीस के पास भेजता था।

सरकार में न्याय का कार्य काजी किया करता था। कहीं-कहीं प्रधान शिकदार तथा प्रधान मुन्सिफ का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु यह पदाधिकारी वहीं पाए जाते थे जहां काजी नहीं होता था।

(५) **परगना**—यह लगान की इकाई होता था। यहाँ लगान वसूल करने के लिये एक तहसीलदार होता था। मुकद्दम लोग परगना का लगान वसूल कर परगना कोष में जमा करते थे। कभी-कभी किसान स्वयं अपना लगान जाकर जमा करते थे। तहसीलदार की सहायता के लिये कई कर्मचारी होते थे। कोष के प्रबन्ध के लिए खजान्ची होता था। एक कर्मचारी भिन्न-भिन्न साधनों से प्राप्त धन का लेखा रखता था। दूसरा कर्मचारी बकाया लगान का हिसाब रखता था। कुछ परगनों में काजी हुआ करते थे। चौधरी तथा कानूनगो भी काम में सहायता पहुँचाते थे। चौधरी का पद वंशानुगत होता था।

(६) गाँव—मुगल काल में स्थायी रूप से सरकार का कोई प्रतिनिधि गाँवों में नहीं रहता था। मुकद्दम गाँव का मुखिया या सरपंच होता था। वह किसानों से लगान वसूल करता तथा उसे शाही खजाने में जमा कराता था। उसे लगान का २½ प्रतिशत अपने परिश्रम के रूप में मिलता था। उसे गाँव में शान्ति और सुरक्षा का प्रबन्ध करना पड़ता था।

(७) भूमि तथा आर्थिक शासन प्रबन्ध—भूमिकर निश्चित करने के लिये पहिले भूमि की नाप की जाती थी, फिर भूमि का उसकी किस्म के अनुसार विभाजन किया जाता था और अन्त में लगान की दर निश्चित की जाती थी।

(क) जहाँ तक भूमि की नाप का सम्बन्ध है उसके लिये ३६ इंच का एक इलाही गज, ६० गज की एक जरीब (यह बाँस का एक लट्ठा होता था जिसमें लोहे की मुन्दिरी लगी होती थी) और उच्चतम माप के लिये ३६०० वर्ग गज का एक बीघा निर्धारित किया गया था।

(ख) भूमि का वर्गीकरण—भूमि का वर्गीकरण उसकी उपज के अनुसार चार भागों में किया गया था।

(१) वर्ष भर जोती जाने वाली भूमि—पोलज

(२) भूमि जिसे अपनी शक्ति प्राप्त करने के लिये कुछ समय तक परती छोड़ दिया जाता था—पड़ौती

(३) भूमि जिसे तीन या चार वर्ष तक परती छोड़ दिया जाता—छच्चर

(४) भूमि जिसे पाँच या इससे अधिक वर्षों तक जोता न जाय—बंजर।

प्रत्येक वर्ग की भूमि का कर निर्धारण उसकी उपज और उसके क्रय मूल्य के आधार पर होता था। हर मौसम के बाद उपज का एक विवरण तैयार किया जाता था। और किसानों से उतना ही कर वसूल किया जाता था जितना उनकी जोती हुई भूमि पर निर्धारित किया जाता था। उपज का ⅓ भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था और किसानों को अपना कर अनाज या रुपये के रूप में देने की सुविधा थी।

(ग) राज-कर विभाग का संचालन—मुगलों की राजकीय पद्धति का आधार रैयतवाड़ी पद्धति थी। जो भूमि को जोतने वाला व्यक्ति होता था वही निर्धारित कर को नियमित रूप से देने का उत्तरदायी था। राज-कर को एकत्र करने के लिए कुछ अफसर होते थे जिनका प्रधान आमिल होता था। इसी की सहायता के लिए पोद्दार, कानूनगो, पटवारी और मुकद्दम होते थे। कभी कभी यह कर क्षमा भी कर दिया जाता था और सिख परम्परा के अनुसार अकबर ने सन् १५९५–९६ में गुरु अर्जुन के समय में पंजाब का भूमि कर माफ कर दिया था।

(घ) राज कर के अन्य साधन—इन नियमित राजकरों के अतिरिक्त कभी कभी अब्वाब भी लगाये जाते थे जिनमें उपज विक्रय कर, अचल सम्पत्ति के विक्रय पर कर इत्यादि मुख्य थे। यहाँ तक कि शाहजहाँ और औरंगजेब ने भी बहुत से अब्वाबों का लेना बन्द कर दिया। परन्तु औरंगजेब ने राज-कर के अन्य कई साधन

बना लिए। जजिया की पुनरावृत्ति से राज्य की आय बहुत बढ़ गई थी। तीर्थ यात्रा कर तथा मुर्दों को जलाने पर भी कर लिया जाने लगा था।

(८) सैनिक शासन प्रबन्ध—मुगल शासन सैनिक शासन था। सिद्धान्त में प्रत्येक योग्य नागरिक शाही सेना का सैनिक समझा जाता था। व्यवहारिक रूप में सम्राट अकबर ने सेना का संगठन मनसबदारी प्रथा के आधार पर किया था।

(क) मनसबदारी प्रथा—साधारण तौर पर मनसब का अर्थ होता है पद, प्रतिष्ठा अथवा नौकरी। जिस व्यक्ति को मनसब प्राप्त हो जाता था उसे राज्य की सैनिक अथवा अन्य प्रकार की सेवाएं करनी पड़ती थीं। मनसबों की ३३ श्रेणियाँ थीं। सबसे छोटी कोटि के मनसबदार के आधीन २० सैनिक रहते थे ७००० से १०,००० तक के मनसब राज-परिवार के लोगों के लिये सुरक्षित रहते थे। मनसबदारों की नियुक्ति, तरक्की तथा उन्हें पदच्युत करना सम्राट के हाथ में रहता था। मनसबदारों का पद वंशानुगत नहीं होता था। बड़े छोटे गैर-फौजी अफसरों को भी मनसब प्राप्त रहते थे। प्रत्येक श्रेणी के मनसबदार का वेतन निश्चित था और अपने पद के अनुसार उसको घोड़े, हाथी, बोझे ढोने वाले जानवर तथा गाड़ियों की कुछ निश्चित संख्या रखनी पड़ती थी परन्तु परेड तथा दाग की व्यवस्था होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि बहुत कम मनसबदार ऐसे थे जो उतने घुड़सवार रखते रहे हों जितने के लिए उन्हें वेतन मिलता था। अकबर ने जागीर देने की प्रथा को बन्द करके मनसबदारों को नकद वेतन देना शुरू कर दिया।

(ख) मुगलों की लड़ाकू सेना—मुगलों की सेना में (१) पैदल, (२) घुड़सवार, (३) तोपखाना और (४) नौ सेना थी। सेना के अन्य विभागों की तरह नौ सेना शक्तिशाली नहीं थी। साम्राज्य की रक्षा के लिए नौ सेना दुर्बल सिद्ध होते हुए भी, उसमें बहुत से अच्छे-अच्छे जल-पोतों का निर्माण किया गया था।

---

**प्रश्न ४—मुगल काल में कला तथा साहित्य के विकास पर नोट लिखिए।**

**Q. 4. Give an account of the development of Art and Literature under the Mughals.**

**उत्तर—(अ) मुगल काल में कला की उन्नति—**

(१) **मुगल कालीन स्थापत्य कला**—सोलहवीं शताब्दी में भारत में मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो गया था। उन्हें शिल्पकला से बड़ा प्रेम था। उन्होंने देश के भिन्न-भिन्न भागों में जो इमारतें बनवाईं, उनसे उनकी रुचि का पता चलता है। मुगल स्थापत्य का विकास बाबर के समय से शुरू होता है। इस कला पर फारसी और हिन्दू बौद्धिक शैलियों का विशेष प्रभाव है। फारसी शैली का प्रभाव मुगल इमारतों की सजावट, उच्चकोटि की नक्काशी और सुन्दर बेल-बूटों के काम में

स्पष्टतया झलकता है। मुगल इमारतों के पास बगीचों की स्थापना भी फारसी शैली से ली गई है। हिन्दू बौद्धिक शैली का प्रभाव मुगलों की इमारतों की दृढ़ता और भव्यता से स्पष्ट है।

मुगल स्थापत्य में प्रधान स्थान गुम्बज का है। मुगलों के पूर्व गुम्बज का प्रचार अधिक नहीं था, पर मुगलों ने उसको सुन्दर और आकर्षक बनाने की चेष्टा की। नोकीली मेहराब को कई विशेष रीतियों से अलकृत किया गया। एक विशेषता नोकीली मेहराब में यह लाई गई कि उसमें छोटे छोटे नी गोल मेहराब रूपी मोड़ दिए गए। रंगों के ऊपर विशेष ध्यान दिया गया। मीनारों और छोटी-छोटी आकर्षक बुर्जियों का प्रचलन अधिक हो गया। पच्चीकार और इमारतों पर अक्षरों की खुदाई अधिक मात्रा में होने लगी। अब इमारतों पर अक्षरों की खुदाई अधिक मात्रा में होने लगी और इमारतें लाल पत्थर तथा संगमरमर की बनने लगीं।

(क) बाबर और हुमायूं का काल—बाबर का बनाई हुई इमारतों में से अब केवल दो तीन शेष रह गई हैं। पानीपत के काबुल बाग की मस्जिदें, अयोध्या की मस्जिद और सम्भल की जामा मस्जिद। दिल्ली के पुराने किले की मस्जिद को भी कदाचित इसी ने बनवाया था।

हुमायूं का अधिक समय बाहर और युद्ध में बीता था। अतः उसे इमारतें बनाने का अधिक समय नहीं मिला। फिर उसके द्वारा बनवाई गई इमारतों में से दो मस्जिदें शेष हैं। एक तो आगरे में टूटी फूटी दशा में है दूसरी पंजाब में हिसार जिले के फतहाबाद नामक स्थान पर है।

(ख) सूर शासक— हुमायूं के उत्तराधिकारी सूर शासकों ने इस कला पर विशेष ध्यान दिया। उनके समय में पंजाब और रोहतास में किले बने। इनके अतिरिक्त शेरशाह के समय की दो इमारतें हैं। दिल्ली के समीप पुराने किले की मस्जिद और सहसराम का मकबरा। सहसराम का मकबरा प्रभावशाली तथा अत्यन्त सुन्दर है। यह एक कृत्रिम झील के बीच में बना हुआ है। यह सूर वंश के प्रसिद्ध शासक शेरशाह सूरी की समाधि है।

(ग) अकबर—अकबर के समय में इस कला को बड़ा प्रोत्साहन मिला। उस की धार्मिक सहिष्णुता में भारतीय और फारसी कलाएं समान रूप से समुन्नत हुईं। फर्ग्युसन ने इस बात का समर्थन किया है कि अकबर के राज्य काल में जो इमारतें बनीं उनमें हिन्दू शैली का पूर्ण प्रभाव है। अकबर स्वयं विदेशीय का पक्षपाती नहीं था। उसके समय की सर्वप्रथम इमारत "हुमायूं का मकबरा" है जिसे उसकी स्त्री हाजी बेगम ने बनवाया था। इसके समीप एक स्थान 'अरब की सराय' के नाम से प्रसिद्ध है जो कि पर्सी ब्राउन (Percy Brown) के कथनानुसार अरब से आये हुए शिल्पकारों के रहने का स्थान होगा।

अकबर ने सन् १५६४ ई० में आगरे के किले की नींव डाली। यह किला विशाल होने के साथ प्रभावशाली भी है। इसमें ५०० से ऊपर लाल पत्थर की बनी

हुई इमारतें थीं। उनमें से अब केवल एक बची है और वह है जहाँगीर महल। अकबर ने एक दूसरा इसी तरह का किला अजमेर में बनवाया था।

अकबर के समय की सबसे महत्वपूर्ण इमारतें **फतहपुर सीकरी के राजभवन** हैं। इस नगर की नींव अकबर बादशाह ने शेख सलीम चिश्ती की स्मृति में डाली थी। इस नगर में प्रासाद, निवास स्थान, कार्यालय तथा धार्मिक इमारतें अति सुन्दर बनाई गई हैं। प्रासादों में **आमेर की राजकुमारी मरियम उज्जमानी** का प्रासाद उल्लेखनीय है। **मरियम सुल्ताना और बीरबल के निवास स्थान** उस समय के आदर्श निवास स्थानों के प्रतिरूप हैं। जिन इमारतों में कार्यालय थे उनमें निम्न प्रमुख हैं—पचमहल **ख्वाबगाह और ज्योतिषि विभाग। जामा मस्जिद** धार्मिक इमारत होते हुये भी फतहपुर सीकरी की प्रधान इमारत है। आकार में यह देश की सबसे बड़ी मस्जिद है। इसका **बुलन्द दरवाजा** उसकी दक्षिण विजय का द्योतक है जिसकी ऊंचाई १७६ फीट है। **शेख सलीम चिश्ती का मकबरा** भी इसी मस्जिद के अन्दर बना है अकबर की सर्वश्रेष्ठ इमारत **सिकन्दरा का मकबरा** है जिसमें उसकी समाधि है।

**स्मिथ और पर्सी ब्राउन** ने इन इमारतों की बड़ी प्रशंसा की है। मुगल स्थापत्य कला के इतिहास में जामा मस्जिद और बुलन्द दरवाजा का स्थान सदैव उच्च रहेगा। हैवेल का मत है कि ऐसी उच्च कोटि की इमारते तो शाहजहां के समय में भी ताजमहल को छोड़कर नहीं बनी थीं। वास्तव में दीवाने खास और सुनहले महल की सुन्दरता को देखकर विदेशी यात्री आश्चर्य चकित हो जाते हैं। **वास्तव में फतहपुर सीकरी एक स्वप्न है। इसको देखकर मानवीय आकांक्षाओं की नश्वरता का पूर्ण आभास होता है।**

**(घ) जहांगीर**—जहांगीर को स्थापत्य कला से उतना प्रेम न था जितना कि चित्रकला से, फिर भी उसकी बेगम नूरजहाँ ने कई सुन्दर इमारतें बनवाई। इनमें **ऐतमादुदौला का मकबरा** सर्वप्रथम है। इसकी पच्चीकारी और मीनाकारी बहुत ही उच्च कोटि की है। दूसरी इमारत **लाहौर में जहाँगीर का मकबरा** है। इसके अतिरिक्त और भी इमारतें बनीं जिनके नाम यह हैं— **सरायनूर महल का दरवाजा, शालीमार बाग, श्रीनगर के निकटवर्ती भवन, अनारकली का मकबरा, लाहौर के किले की ख्वाबगाह और सङ्गमरमर की मोती मस्जिद।**

**(ङ) शाहजाहां**—मुगल काल का सबसे बड़ा निर्माता शाहजहां था। उनका राज्यकाल भारतीय स्थापत्य कला के इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध है। उसकी स्वच्छ और निर्मल सङ्गमरमर की बनी हुई इमारतें अपनी भव्यता के लिए संसार में प्रसिद्ध हैं। उसने शाहजहांनाबाद नगर की नींव डाली। यमुना नदी के दायें किनारे पर यह बसा हुआ किला नगर अपने निर्माता के ऐश्वर्य और गौरव का प्रतीक है। इसके अन्दर **दीवान खास और रङ्गमहल** नामक भवनों की स्थापत्य कला और पच्चीकारी का काम बहुत ही सजीव और सुन्दर है। एक इतिहासकार का कथन है कि यह स्वर्ग के भवनों से भी अधिक सुन्दर तथा भव्य है।

दिल्ली की जामा मस्जिद देश की सबसे प्रसिद्ध मस्जिद है। एक दूसरी जामा मस्जिद शाहजहाँ ने आगरे में बनवाई थी । पर्सी ब्राउन के कथनानुसार आगरे की जामा मस्जिद दिल्ली की जामा मस्जिद से स्थापत्य कला की दृष्टि से कहीं अधिक भव्य और सुन्दर है । मोती मस्जिद जिसे शाहजहाँ ने आगरे के किले में बनवाई थी अपनी पवित्रता और सरलता के लिये प्रसिद्ध है ।

शाहजहाँ के समय की सर्वश्रेष्ठ इमारत ताजमहल है जिसके बनवाने में २२ वर्ष लगे तथा करीब ६ करोड़ रुपया खर्च हुआ था। इसके निर्माण के लिए फारस, अरब, टर्की तथा अन्य विदेशों से कारीगर बुलाये गये थे। पृथ्वी से २२ फुट ऊँचे चबूतरे पर यह प्रसिद्ध मकबरा बनाया गया। प्रधान गुम्बद जो कि पांच गुम्बदों में सबसे बड़ा है १८७ फीट ऊँचा है। चौकोर चबूतरे के चारों कोनों पर एक-एक मीनार है । इन मीनारों के ऊपर छोटी-छोटी बुर्जियां बनी हुई हैं। इन मीनारों की ऊंचाई १३७ फीट है।

भारतीय स्थापत्य कला के इतिहास में ताज का एक विशिष्ट स्थान है। मकबरे के स्वच्छ और निर्मल संगमरमर एवं स्थान की पवित्रता मानव को शान्ति का सन्देश देती है । हैवेल के मतानुसार भारतीय शिल्पकारों ने अपने स्वामी के दाम्पत्य प्रेम को प्रकट करने के लिए अपनी सारी शक्ति एवं कला कौशल का प्रयोग किया है। कुछ मनुष्य ताज को 'पत्थरों में एक सजीव कविता' कहकर पुकारते हैं। हैवेल का कथन है कि "भारतीय शिल्पकार अपने सम्राट की प्रिय मुमताज महल के नैसर्गिक सौन्दर्य को पत्थरों में प्रकट करना चाहते थे और उसमें वे काफी अंश तक सफल हुए ।" यमुना नदी के तट पर बसा हुआ यह मकबरा उसकी लहरों से खेलता हुआ वास्तव में दो प्रेमियों के सच्चे अनुराग का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है ।

(घ) औरंगजेब—शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् स्थापत्य कला की अवनति प्रारम्भ हो गई। कट्टर धर्मानुयायी औरंगजेब ने उसे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। उसने हिन्दू शिल्पकारों को राज्य के आश्रय से वंचित कर दिया क्योंकि वह हिन्दुओं से घृणा करता था। अतः इन शिल्पकारों ने राजपूताना तथा अन्य स्थानों के हिन्दू राजाओं के यहां आकर आश्रय लिया। इस समय की इमारतों में दिल्ली की संगमरमर की मस्जिद, काशी में विश्वनाथ मन्दिर के ध्वंस पर बनी हुई मस्जिद और लाहौर की बादशाही मस्जिद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पर्सी ब्राउन का कथन है कि यदि ताज की तुलना औरंगजेब की पत्नी रबिया दुर्रानी के मकबरे से की जाए तो मुगल स्थापत्य कला के पतन का पता चल जाता है। न तो इसमें कला की भव्यता और उच्चता का पता चलता है और न यह मकबरा अधिक सुन्दर ही है।

(२) चित्रकला—मुसलमानों के पूर्व हिन्दू काल में चित्रकला बड़े ऊँचे दर्जे पर पहुँच गई थी। परन्तु मुगलों के पूर्व के मुसलमान शासकों ने उसे कोई प्रोत्साहन

नहीं दिया। फीरोज तुगलक ने तो अपने राजमहल में चित्रकला पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। कारण यह था कि मुसलमानों में किसी जीवित मनुष्य, पशु अथवा पक्षी का चित्र बनाना वर्जित है। परन्तु मुगल शासकों ने इस कला को भी प्रोत्साहन दिया।

(क) **बाबर तथा हुमायूँ**—बाबर कला प्रेमी था। उसे प्राकृतिक दृश्यों को देखकर आन्तरिक आनन्द होता था। फारसी चित्रकला के महान चित्रकार 'विजहाद' का उल्लेख उसने अपनी जीवनी में किया है जिससे पता चलता है कि चित्रकारों और उनकी कृतियों में उसकी रुचि थी। हुमायूँ की भी इस कला में रुचि थी। मुगल चित्रकला का विकास प्रधानतः हुमायूँ के राज्यकाल से प्रारम्भ होता है। वह अपने साथ फारस से **मीर सैयद अली तबरेजी** तथा **ख्वाजा अब्दुस्समद** नामक दो चित्रकारों को भारत लाया था। उनके चित्रों में फारसी कला पूर्ण रूप से स्पष्ट है।

(ख) **अकबर**—अकबर को चित्रकला से बड़ा प्रेम था। उसकी धार्मिक सहिष्णुता के परिणामस्वरूप भारतीय चित्रकारों को अपनी कला को व्यक्त करने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। कुछ समय के पश्चात् हिन्दू और फारसी शैलियों के सम्मिश्रण से एक नवीन भारतीय कला का उद्भव हुआ। अकबर के समय में लगभग १०० चित्रकार अत्यन्त उच्च कोटि के थे। फारसी चित्रकारों में **मीर सैयद अली, अब्दुस्समद, फारूखबेग और अकारिजा** प्रमुख थे। अब्दुस्समद को उसके चित्रों की कोमलता तथा सुन्दरता के कारण **'शीरी कलम'** की उपाधि दी गई थी। अकबर के हिन्दू चित्रकारों में **बसावन, दसवन्त, सांवलदास, ताराचन्द, केशव लाल, मुकन्द और जगन्नाथ** के नाम उल्लेखनीय हैं। बसावन पृष्ठ भूमि के चित्रण तथा भाव-व्यंजना में अत्यन्त कुशल था। दसवन्त हिन्दू चित्रकारों में सबसे अधिक प्रसिद्ध था। उसके द्वारा बनाये गये चित्र कलात्मक दृष्टि से बहुत उच्च कोटि के थे परन्तु जब उसकी कला पराकाष्ठा को पहुंची तो पागल हो जाने के कारण उसने आत्महत्या कर ली। अकबर ने मखतूब खां की अध्यक्षता में एक **चित्रशाला** भी खुलवाई जिसमें विभिन्न देशों की शैलियों का संग्रह रहता था और जिसे देखकर उसके चित्रकार श्रेष्ठ चित्रों को बनाने का प्रयत्न करते थे। सबसे पहले **दरबनामा और बाबरनामा के आख्यानों को चित्रों में अंकित** किया गया। इसके पश्चात् **रज्वनामा, तैमूरनामा, बहारिस्तान, खमसा, अकबरनामा, रामायण और कालिया दमन** नामक आख्यानों की प्रतियों को सुन्दर लिपि में लिखकर उसकी प्रधान घटनाओं को चित्रों में अलंकृत किया है।

(ग) **जहाँगीर**—जहाँगीर सौन्दर्य उपासक और चित्रकला का प्रेमी था। वह चित्र को देखते ही चित्र के बनाने वाले चित्रकार का नाम बता सकता था। ऐसे अनुभवी कला प्रेमी के संरक्षण में भारतीय कला अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई। विदेशी राजदूत **सर टामसरो** ने जहाँगीर को एक विदेशी चित्रकार की कृति भेंट की जिसकी नकल भारतीय चित्रकारों ने इस सफलता के साथ की कि टामसरो

के लिये अपने ही चित्रों को पहचानना कठिन हो गया। इस समय सभी चित्रकारों ने फारसी कला को छोड़कर भारतीय शैली को अपनाया।

इस समय के प्रसिद्ध चित्रकारों में अबुलहसन, मंसूर उस्ताद मुराद, मुहम्मद नादिर, बिशनदास, मनोहर और गोवर्धन के नाम उल्लेखनीय हैं। अबुलहसन और बिशनदास इस समय के महान् चित्रकार थे। जहांगीर ने अपनी जीवनी में अबुलहसन की बहुत प्रशंसा की है। इस चित्रकार को 'नादिर-उज-जमा' की उपाधि दी गई थी। मंसूर नक्काश फूल पत्तियों के चित्रों में बड़ा प्रवीण था। बिशनदास व्यक्तिगत चित्रों में दक्ष था। इस समय पशु पक्षियों और फूल पौधों के बहुत सुन्दर सुन्दर चित्र बनाये गये। पशुओं में हाथी तथा घोड़ों और पक्षियों में मोर तथा बाज के चित्र खूब बनाये जाते थे। स्त्री सम्बन्धी चित्र भी बनाये जाते थे। उच्चकोटि के चित्रकारों ने साधू तथा फकीर के शान्त स्थानों की छवि का प्रदर्शन अपने चित्रों में किया है। परन्तु इस काल की चित्रकला का मुख्य विषय प्रकृति सौंदर्य था। जहाँगीर के समय में यह कला चरम सीमा को पहुँच गई थी। परन्तु उसके पश्चात इस कला की अवनति प्रारम्भ हो गई।

(घ) शाहजहाँ—शाहजहाँ की जितनी रुचि स्थापत्य कला से थी उतनी चित्रकला से नहीं। उसके समय में चित्रकारों को राजदरबार द्वारा अधिक प्रोत्साहन न मिल सका। अतः उन्होंने सब सामन्तों तथा उच्च पदाधिकारियों का आश्रय लिया। आसफखाँ ऐसे ही सामन्तों में से था। लाहौर में उसका एक भवन उत्कृष्ट चित्रों से अलंकृत था। ऐसे सुन्दर ढंग से चित्रित भवन देश में बहुत कम थे। इसी प्रकार दारा भी चित्रकला का प्रेमी था। शाहजहाँ के समय के मुख्य चित्रकार मीरहाशिम अनूपचित्र और चित्रमणि थे। इस समय के चित्रों में बहुमूल्य रंगों का प्रयोग किया गया जिससे वे अधिक सुन्दर दिखाई पड़ते थे।

(ङ) औरंगजेब—शाहजहां के बाद औरंगजेब की कट्टरता के कारण चित्र-कला को भी राज्य की ओर से कुछ भी प्रोत्साहन न दिया गया और चित्र कला की दृष्टि से बहुत गिर गया। प्रोत्साहन के अभाव के कारण मुगल चित्रकला दिन पर दिन गिरती गई। दिल्ली साम्राज्य के पतन के बाद लखनऊ, हैदराबाद तथा राजपूताना कला के केन्द्र बन गये और स्थानीय शासकों ने इस कला को प्रोत्साहन दिया। इन शासकों के आश्रय में नई नई शैलियों की उत्पत्ति हुई। राजपूताने में एक नवीन कला का उदय हुआ जो राजपूत शैली के नाम से विख्यात है।

(च) राजपूत कला—मुगलों के समय में राजपूत चित्रकला भी उन्नति के शिखर पर पहुँची। इस कला पर प्राचीन भारतीय कला की छाप थी जिसका अजन्ता के चित्रों में प्रदर्शन है। श्री आनन्दकुमार स्वामी का कथन है कि राजपूत कला पर धर्म का प्रभाव था और राजपूत चित्रकार पौराणिक चित्रों को अंकित करते थे। इस प्रकार रामलीला के अनेक दृश्यों का चित्रों में अंकन किया गया। यह कला एक ऐसे संसार का निर्माण करती है जिसमें सब मनुष्य वीर हैं तथा स्त्रियाँ वीरांगना हैं। यही

कारण है कि राजपूत कला बराबर चलती रही और आज भी विद्यमान है। राजपूत चित्रकारों ने रामायण तथा महाभारत की घटनाओं को अंकित किया है। जैसे भीष्म पितामह को तीरों की शैया पर लिटाना, दुशासन का द्रोपदी का चीर खींचना, शकुनि का जुआ खेलना, द्रोपदी का स्वयंवर में जीतना इत्यादि। इसी प्रकार कृष्णलीला के भी दृश्यों का चित्रांकन है। इसी प्रकार दुर्गा, शिव, गणेश, लक्ष्मी आदि देवताओं की महत्ता का भी राजपूत चित्रकारों ने अपनी कृतियों में प्रदर्शन किया है। मुगल कला नष्ट हो गई, परन्तु धार्मिक परम्परा पर आधारित होने के कारण राजपूत कला अभी तक जीवित है।

**(आ) मुगल काल में साहित्य की उन्नति—**

**(१) फारसी साहित्य—(क) बाबर तथा हुमायूं**—साहित्य के क्षेत्र में मुगल काल एक नवीन युग का परिचायक है। मुगलों की उदारनीति ने वे सभी साधन प्रस्तुत किये थे जिनमें कला और साहित्य की उन्नति होती है। बाबर स्वयं एक उच्च कोटि का विद्वान था और फारसी तथा तुर्की भाषाओं का पूर्ण पण्डित था। उसकी सबसे अधिक ख्यातिपूर्ण कृति उसके संस्मरण (Memoirs) हैं जो उसने तुर्की भाषा में लिखे हैं। समस्त एशिया के साहित्य में बाबरनामा का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है तथा ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत उपयोगी है। उसका पुत्र हुमायूं भी असाधारण विद्वान था और उसके दरबार में कवि, दार्शनिक और महात्मा पुरुष समुचित आदर पाते थे। भूगोल, खगोल शास्त्र तथा ज्योतिष विद्या का वह अच्छा ज्ञाता था। पुस्तकों का वह इतना प्रेमी था कि युद्ध यात्रा के समय भी यह अपने साथ पुस्तकालय रखता था। 'तजकिरात-उल-वाकआत' का लेखक 'जौहर' भी हुमायूं का एक नौकर था।

**(ख) अकबर**—अकबर का शासन काल भारतीय मुसलमान कला और साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में फारसी साहित्य का अध्ययन दो अङ्गों में विशेष रूप से हुआ। (१) इतिहास ग्रन्थ (२) अन्य साहित्यिक ग्रन्थ। उस समय के प्रसिद्ध इतिहास ग्रथ मुल्ला दाऊद द्वारा रचित तारीफ-ए-अल्फी, अबुल-फजल द्वारा लिखित आइन-ए-अकबरी, तथा अकबरनामा 'बदाऊनी' का मुन्तखब-उत-तवारीख, 'निजामुद्दीन अहमद' की तबकात-ए-अकबरी 'फैजी' सर हिन्दी का अकबरनामा तथा 'अब्दुर्रहीम खानखाना' के संरक्षण में रचित मासिर-ए-रहीमी आदि ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं। 'गुलबदन बेगम' का 'हुमायूं नामा' 'अब्बास खां सरवानी की तारीख शेरशाही इस काल के प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। अबुलफजल इस काल का सबसे प्रसिद्ध लेखक था। वह कवि, आलोचक, इतिहासकार और प्रसिद्ध साहित्यकार था। उसने अपनी रचनाओं में कहीं भी अश्लील भाव व्यक्त नहीं किए हैं। ब्लोचमैन का कथन है कि अबुलफजल की रचनाओं में नारी भावना के उच्च आदर्श को थोड़ा सा भी गिराने की चेष्टा नहीं की गई है और न कहीं अनैतिकता ही दिखलाई पड़ती है। उसकी लेखनी बड़ी प्रभावोत्पादक थी। अब्दुल्ला खां उजबेग

कहा करता था कि मैं अकबर की तलवार से उतना नहीं डरता जितना कि अबुल फजल की कलम से। सम्राट की आज्ञा से अनेक संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया गया। रामायण और महाभारत के अनुवाद का कार्य अब्दुल कादिर बदाऊनी (१५४०—९४) को सौंपा गया। इसी प्रकार अथर्ववेद का अनुवाद हाजी इब्राहीम सरहिन्दी तथा लीलावती के गणित के ग्रंथ का अनुवाद फैजी ने किया। फैजी ने 'भागवत' तथा कथा 'सरित सागर' का अनुवाद किया। ताजुद्दीन ने 'हितोपदेश' का अनुवाद किया। शेख नूरमुहम्मद और मीर असकरी राजी ने 'मधुमालती' का काव्य रूपान्तर किया। कवियों में सर्वप्रथम गिजाली का नाम आता है। वह फारस का रहने वाला था। गिजाली के बाद कवियों में दूसरा स्थान फैजी का था। वह अरबी साहित्य, काव्य कला तथा चिकित्सा शास्त्र का पूर्ण पण्डित था। उसने कई ग्रन्थों की रचना की। फैजी की काव्य प्रतिभा असाधारण थी। उसकी शैली स्वाभाविक दोषरहित सरल और सजीव है। गजलों का रचयिता मुहम्मदहुसैन नाजिरी और कसीदों का लेखक सैयद जमालुद्दीन उर्फी विशेष ख्याति प्राप्त साहित्यकार थे।

अकबर विद्या प्रेमी था। उसने बहुत शिक्षा तो न पाई थी परन्तु उसे ज्ञान प्राप्त करने की उत्कृष्ट इच्छा थी। वह रात के समय किताबों को सुनता था। उसके महल में एक बड़ा पुस्तकालय था जिसमें अनेक प्रकार की अमूल्य पुस्तकें एकत्रित की गई थीं। हिन्दू विद्वानों का वह आदर करता था और वेदान्त में उसकी रुचि थी।

(ग) जहांगीर—जहांगीर को भी फारसी का अच्छा ज्ञान था और यह तुर्की भी भली भांति समझ लेता था। वह विद्वानों का समुचित आदर करता था। उसके दरबार में मिर्जा गयासबेग, नकीब खां, नियामत उल्ला, अब्दुलहक देहलवी आदि विद्वान रहते थे। इकबालनामा-ए-जहांगीरी, मासिर-ए-जहांगीरी, जुब्द-उत-तवारीख और तारीख फरिश्ता आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ इस काल में लिखे गये।

(घ) शाहजहां—शाहजहां के समय में भी विद्वानों को राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिलता रहा। उसके शासनकाल में अब्दुल हमीद लाहौरी ने बादशाहनामा, इनायतखां ने शाहजहां नामा और मुहम्मद सालह ने अमल सालह नामक ग्रन्थों की रचना की। सम्राट का पुत्र दारा स्वयं एक उच्च कोटि का विद्वान था उसने उपनिषदों, श्रीमद्भागवत गीता और योगवशिष्ट का फारसी में अनुवाद करवाया। उसने स्वयं भी कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे थे।

(ङ) औरंगजेब—औरंगजेब धर्मान्ध सुन्नी होते हुये भी उच्च कोटि का विद्वान था। उसकी आज्ञा से फतवा-ए-आलमगीरी की रचना हुई। वह कविता से घृणा करता था। उसने अपने शासन काल का इतिहास लिखने का भी निषेध कर रखा था। खाफी खां ने मुन्तखब-उल-लुबाब नाम से उसके शासन काल का जो विस्तृत इतिहास प्रस्तुत किया है वह वास्तव में गुप्त रीति से छिपकर लिखा गया

था । इस समय के ऐतिहासिक ग्रन्थ आलमगीरनामा, मासिर-ए-आलमगीरी, सुजनराम खत्री का खुलासत-उततवारीख और भीमसेन तथा ईश्वर दास की रचनायें हैं ।

(२) **हिन्दी साहित्य**—मुगल काल में हिन्दी, बङ्गला, मराठी और गुजराती साहित्य की खूब उन्नति हुई । इस काल में साहित्य की उन्नति के दो प्रसिद्ध कारण थे—एक तो भक्ति आन्दोलन और दूसरा देश का ऐश्वर्य और वैभव । इस काल के कवियों में विचारों की उदारता और लोकरञ्जन की भावना पर्याप्त मात्रा में थी । सोहलवीं शताब्दी के मध्य में मलिक मुहम्म्द जायसी ने अपने महाकाव्य पद्मावत की रचना की । उनके बाद सोहलवीं और सत्रहवीं शताब्दियों का काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है । इस महानता के प्रधान कारण भक्त कवियों की आन्तरिक प्रेरणा और अकबर के समय की देश की शान्ति, वैभव तथा उसका साहित्य प्रेम आदि है ।

इस काल का हिन्दी साहित्य मुख्यतः धार्मिक था । इस काल का भक्ति साहित्य दो प्रधान भागों में विभक्त है, एक कृष्ण मार्गी और दूसरा राम मार्गी । कृष्ण मार्गी कवियों का केन्द्र ब्रजभूमि थी जो ब्रजराज कृष्ण की क्रीड़ा-भूमि थी । ब्रज-भाषा के ये कवि अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध हैं जिनमें सूरदास और कृष्णदास विशेष प्रसिद्ध हैं । सूरदास अपने सूरसागर द्वारा हिन्दी जगत में अमर हो गए हैं ।

राममार्गी कवियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान **गोस्वामी तुलसीदास** का है । ये उच्च कोटि के कवि, दार्शनिक तथा सुधारक थे । इनकी अमर कीर्ति, रामचरितमानस भारत के करोड़ों नर-नारियों के हृदय का कण्ठ-हार है । इनके अन्य ग्रन्थ गीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका, जानकी मंगल, पार्वती मंगल आदि हैं । नाभादास भी इसी काल के अच्छे कवि थे । भावपक्ष की अपेक्षा कला पक्ष को प्रधानता देने वाले व्यक्तियों में केशवदास का स्थान अति उच्च है । भावों की दुरुहता तथा भाषा की क्लिष्टता इनकी विशेषतायें हैं । इनके मुख्य ग्रन्थों में रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिक प्रिया तथा अलंकार मंजरी आदि हैं । सुन्दर भूषण, मतिराम, देव, विहारी आदि इस काल के अन्य प्रसिद्ध कवि हैं । सुन्दर दास को शाहजहाँ ने महाकवि राय की उपाधि प्रदान की थी । इनकी रचनाओं में सुन्दर शृंगार प्रधान है । चिन्तामणि को भी शाहजहाँ का राजाश्रय प्राप्त था । कविवर बिहारी की सतसई के दोहे भावगाम्भीर्य तथा भाषा सौष्ठव की दृष्टि से बेजोड़ हैं । रीतिकाल के कवियों में देव और **मतिराम** की काफी प्रसिद्धि है । इस काल के कवियों में महाकवि भूषण की कवितायें राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हैं ।

(३) **बंगला साहित्य**—इस काल में बंगला साहित्य में भी खूब उन्नति हुई । बंगला के वैष्णव साहित्य में श्री चैतन्यदेव की जीवनियों, पदों तथा गीतों की प्रधानता है जिनमें सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के बंगला समाज के इतिहास की प्रचुर सामग्री मौजूद है । इस काल में अन्य वैष्णव सन्तों की जीवनियाँ भी लिखी गईं । इनके अतिरिक्त रामायण, महाभारत तथा गीता के अनेक अनुवाद किये गए ।

(४) **मराठी साहित्य**—हिन्दी और बंगला साहित्य की भांति इस काल का मराठी साहित्य भी भक्त कवियों की देन है। सोहलवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में धार्मिक और सामाजिक लहरें उठकर साहित्य के रूप में मुखरित हो रही थीं। महाराष्ट्र में इस क्रान्ति के जन्मदाता अधिकांश साधु महात्मा निम्न वर्ग के थे जो अपने उपदेशों और काव्यों द्वारा जनता में स्फूर्ति और नवजीवन का संचार कर रहे थे। इन साधु सन्तों में तुकाराम, रामदास, वामन पण्डित, एकनाथ आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके ग्रन्थों में धार्मिक स्वतन्त्रता, सामाजिक समानता एवं राजनैतिक एकता राष्ट्रीयता की सुन्दर भावनाओं का समन्वय है। महाराष्ट्र के मनुष्यों में जागृति उत्पन्न करने में इन व्यक्तियों के लेखों तथा उपदेशों ने बड़ी सहायता पहुँचाई।

(५) **उर्दू का विकास**—फारसी और हिन्दी के मिश्रण से उत्पन्न उर्दू पहले फौजी छावनियों की भाषा थी परन्तु साहित्यिक भाषा के रूप में इसका विकास सर्वप्रथम बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तानों के आश्रय में हुआ था। औरंगाबाद के वली का दीवान एक प्रसिद्ध कवि था जिसने सबसे पहले उर्दू काव्य की नींव डाली। उर्दू को मुगल सम्राटों का भी संरक्षण प्राप्त था और मुगल दरबार में अनेक सुन्दर उर्दू के कवि थे। उत्तरकालीन मुगल दरबार में इसकी उन्नति हुई और दिल्ली नगर उर्दू का एक प्रधान केन्द्र बन गया। इस काल के कवियों में **गालिब, जौक** को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है और इन्होंने उर्दू की सरसता तथा माधुर्य को बढ़ाया। उत्तरी भारत में उर्दू का दूसरा प्रसिद्ध केन्द्र लखनऊ था जहाँ पर नवाबों का संरक्षण व प्रोत्साहन पाकर यह भाषा चमक उठी और उसका साहित्य-सौंदर्य बहुत बढ़ गया। लखनऊ के उर्दू कवियों में इन्शा और **मुशफी** के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

---

**प्रश्न ५—मुगल काल में देश की सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशा का वर्णन कीजिये।**

Q. 5. Briefly describe the social, economic and religious condition of the country under the Mughals.

उत्तर—सामाजिक दशा—

मुगल काल का सामाजिक जीवन हमें यूरोपियन यात्रियों के वर्णनों से मालूम होता है जो १६ वीं और १७वीं शताब्दी में भारत में आये थे। इन यूरोपियनों ने आंखों देखा हाल लिखा है। इस काल में समाज कई वर्गों में विभाजित था और हर एक वर्ग का रहन-सहन दूसरे वर्ग से भिन्न था।

उच्च वर्ग—मुगल काल का सामाजिक जीवन सामन्त पद्धति पर आश्रित था। बादशाह की स्थिति उस समाज में सर्वोच्च थी। उसके बाद अमीर-उमराओं का स्थान था जो विविध श्रेणी के मनसबदार थे। इन अमीर-उमराओं को अनेक

ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त थे जिनके कारण उनकी स्थिति सर्वसाधारण जनता से भिन्न हो गई थी। ये अमीर उमरा बड़े आराम के साथ तथा भोगविलास में जीवन व्यतीत करते थे। बादशाह का अपना जीवन भी बहुत अनियन्त्रित तथा विलासपूर्ण होता था। न केवल बादशाह के, अपितु अमीर उमराओं के भी बड़े-बड़े हरम होते थे जिनमें सैकड़ों हजारों स्त्रियां निवास करती थीं। बादशाह व अमीर उमराओं की ओर से बहुत सी दावतें होती रहती थीं जिनमें सुरापान और स्वादिष्ट भोजन के अतिरिक्त नाच-गाना भी हुआ करता था। 'मनसब' का पद पैतृक न होने के कारण अमीर-उमरा अपनी जागीर व मनसब को अपनी वैयक्तिक आमदनी का साधन समझते थे और इस आमदनी को खूब दिल खोलकर खर्च करते थे। सुन्दर पोशाक, शराब, भोजन, भोग-विलास, नृत्य-गायन व द्यूत क्रीड़ा आदि में रुपए को पानी की तरह बहाया जाता था। इस प्रकार उच्च वर्ग बहुत ऐश-आराम का जीवन व्यतीत करता था।

**मध्यम वर्ग**—इस उच्च वर्ग के नीचे मध्यम वर्ग था जिनमें निम्न वर्ग के राजकर्मचारी, व्यापारी और समृद्ध शिल्पी शामिल थे। इन लोगों की आर्थिक दशा अच्छी थी और इनका व्यापार भी उन्नति पर था। पर वे जानबूझ कर अपना रहन-सहन सादा रखते थे क्योंकि नगरों के कोतवालों का एक कार्य यह भी था कि लोगों की आमदनी व खर्च का पता करते रहें। व्यापारियों को सदा यह भय लगा रहता था कि कहीं राजकर्मचारी उनके रहन-सहन से उनकी आमदनी का अन्दाज न कर लें और फिर उचित-अनुचित उपायों से रुपया प्राप्त करने का यत्न करें। इसलिये वे बड़े सादा तरीके से रहते थे।

**निम्न वर्ग**—मध्यम के नीचे निम्न वर्ग था। जिसमें छोटे-छोटे कर्मचारी, व्यापारी और मजदूर व किसान लोग थे। यह सर्वसाधारण जनता का वर्ग था। इन लोगों के रहन-सहन का दर्जा बड़ा नीचा था। इनको खाने को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता था। ये अधिकतर नंगे पांव रहते थे। मजदूरों को बहुत कम मजदूरी मिलती थी और उन्हें बेगार भी करनी पड़ती थी। अकाल के समय किसानों की भी दशा बहुत खराब हो जाती थी, यद्यपि सुकाल में वे अच्छी तरह से जीवन व्यतीत करते थे। इस श्रेणी के अधिकतर लोग ईमानदार और सन्तोषी होते थे। उनका जीवन दुर्व्यसनों से मुक्त था। परन्तु इस युग में एक बात बड़ी अच्छी थी कि चीजें सब सस्ती थीं। इसलिए मनुष्य बहुत कम आमदनी में ही अपना गुजारा कर लेते थे।

**स्त्रियों की दशा तथा सामाजिक कुरीतियां**—इस काल में स्त्रियों की दशा बड़ी शौचनीय थी। पर्दे की प्रथा का बड़ा प्रचार था। उच्च वर्ग के लोगों में बहु-विवाह की प्रथा थी और अमीरों तथा सरदारों के हरम में सैंकड़ों स्त्रियां रहती थीं। सती की प्रथा भी थी, परन्तु मुगल सम्राटों ने इसे रोकने का भरसक प्रयत्न किया था। स्त्रियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था और अल्प आयु

में ही उनका विवाह कर दिया जाता था। दहेज की प्रथा भी प्रचलित थी। सम्राट अकबर ने बाल विवाह को रोकने का प्रयत्न किया था। विधवा विवाह इस युग में अच्छा नहीं माना जाता था।

हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों में अनेकों सामाजिक दोष विद्यमान थे। दोनों ही जातियों में धार्मिक अन्धविश्वास था। पीरों, फकीरों तथा साधुओं की पूजा होती थी। गुप्त रूप से मनुष्यों की बलि भी दी जाती थी। मनूची के कथनानुसार मुसलमान डाक्टर रोगियों की चिकित्सा के लिये मनुष्यों की चर्बी का प्रयोग करते थे। साधारण जनता पर जादूगरों तथा भक्तों का बड़ा प्रभाव था। मद्यपान का बड़ा प्रकोप था और व्यभिचार खूब फैला हुआ था। शिक्षा का अभाव था और दासों का बाहुल्य था जिससे भारतीय समाज का नैतिक तथा मानसिक स्तर बहुत नीचा हो गया था। भिक्षा माँगने की प्रथा जोरों से प्रचलित थी।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से यह पता चलता है कि मुगल काल में देश की सामाजिक दशा बड़ी ही शोचनीय थी और समाज का नैतिक तथा मानसिक पतन हो गया था।

आर्थिक दशा:—

मुगल काल में भारत की आर्थिक दशा अच्छी थी। कृषि, उद्योग-धन्धे, व्यापार, आवागमन के साधन सब की अच्छी दशा थी। परन्तु औरङ्गजेब के काल में उसके लगातार युद्धों के कारण देश की आर्थिक दशा बिगड़ गई थी।

कृषि—लोगों का मुख्य पेशा कृषि था। शेरशाह तथा अकबर की भूमि व्यवस्था से कृषि की बड़ी उन्नति हुई और किसानों की दशा में बड़ा सुधार हो गया। गेहूं, चावल, जौ, बाजरा, मक्का, ज्वार, गन्ना, नील, कपास, दाल आदि की खूब पैदावार होती थी। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में तम्बाकू की खेती भी होने लगी थी।

अकाल—मुगल काल में सिंचाई के साधनों का सर्वथा अभाव था। इसलिये कभी-कभी अकाल पड़ जाया करता था। आवागमन के साधनों में कमी होने के कारण देश के एक भाग से दूसरे भाग में अनाज भेजना सरल न था। अतएव अकाल पीड़ितों की पूरी सहायता नहीं हो पाती थी। सैंकड़ों नर-नारी भूख से तड़प-तड़प कर मर जाया करते थे।

उद्योग-धन्धे—उद्योगों की हालत अच्छी थी। सूती एवं रेशमी कपड़ों तथा दुशालों के लिए भारत एशिया व यूरोप में प्रसिद्ध था। गुजरात, बंगाल तथा बिहार में मामूली सूती कपड़े, बनारस, जौनपुर, खानदेश तथा लाहौर में बढ़िया सूती कपड़े, बंगाल का रेशम और सुनारगाँव तथा ढाके की मलमल प्रसिद्ध थी। कपड़े की रंगाई तथा छपाई का भी सुन्दर काम होता था। इसके अतिरिक्त दरी, कालीन, बक्स, कलमदान और हाथी दाँत आदि का अच्छा काम होता था।

व्यापार—मुगल काल में व्यापार भी उन्नत दशा में था। सूरत, गोआ, कालीकट, कोचीन, मछलीपट्टम, सुनारगांव, चटगांव तथा श्रीपुर इस काल के

प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। सूती और रेशमी कपड़े, नील, काली मिर्च तथा अन्य मसाले भारत से विदेशों को भेजे जाते थे और सोना चाँदी, कीमती पत्थर, मखमल आदि वस्तुएं देश में मंगाई जाती थीं। १७ वीं शताब्दी में इंगलैण्ड, फ्रांस, हालैण्ड आदि यूरोप के देशों की व्यापारिक कोठियाँ यहां के विभिन्न भागों में स्थापित हो गई थीं।

इस प्रकार, इस काल में देश की सामान्य आर्थिक दशा अच्छी थी। खाने पीने की चीजें सस्ती थीं और इस काल में सभी स्थानों में पर्याप्त मात्रा में भोजन मिल जाता था। निम्न वर्ग के लोगों को भी भरपेट भोजन मिल जाता था। परन्तु सम्पत्ति का वितरण समाज में बड़ा ही दोषपूर्ण था। उच्च वर्ग के लोगों के पास अपार सम्पत्ति थी और वे भोगविलास में जीवन व्यतीत करते थे और धन का अपव्यय करते थे जिसका भार श्रमजीविकों के ऊपर पड़ता था। फिर भी देश की सामान्य आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक थी।

**धार्मिक दशा—**

*सोलहवीं शताब्दी धार्मिक आन्दोलनों का युग माना जाता है।* उत्तरी भारत में वैष्णव धर्म का जोर था। भक्ति मार्गी महात्मा तथा सन्त अपने मत का खूब प्रचार कर रहे थे। कृष्ण तथा रामभक्त दोनों अपने-अपने इष्टदेव को विष्णु का अवतार मानते थे। दक्षिण में भक्ति-आन्दोलन का प्रचार हो रहा था। वहाँ सन्त एकनाथ, तुकाराम, रामदास तथा वामन पण्डित ने भक्ति द्वारा मोक्ष का मार्ग सब के लिये खोल दिया। इस प्रकार इस युग में वैष्णव धर्म उन्नति पर था।

शेरशाह तथा अकबर के शासनकाल में धार्मिक सहिष्णुता थी और हिन्दुओं को पूजा पाठ की पूरी स्वतन्त्रता थी। जहाँगीर का भी शासनकाल धार्मिक सहिष्णुता का काल था। उसकी ईसाई धर्म के धार्मिक चित्रों में बड़ी अभिरुचि थी। परन्तु शाहजहाँ के काल में यह सहिष्णुता समाप्त हो गई। हिन्दुओं को न केवल मन्दिरों को बनाने का निषेध कर दिया गया वरन् जिनका निर्माण हो रहा था वे भी नष्ट करा दिए गए। औरङ्गजेब के सिंहासन पर बैठते ही धार्मिक अत्याचार का युग प्रारम्भ हो गया। उसने न केवल हिन्दुओं वरन् शिया मुसलमानों के साथ भी बड़ी क्रूरता तथा नृशंसता का व्यवहार किया। हिन्दुओं के मन्दिरों को तुड़वाया गया और उनकी पाठशालाओं को बन्द करवा दिया गया। *बनारस तथा मथुरा में असंख्य* मन्दिर ध्वस्त करवा दिए गए। उन पर जजिया लगाया गया, उन्हें सरकारी नौकरी से वंचित किया गया तथा उन्हें जबरदस्ती मुसलमान बनाने का प्रयत्न किया गया। औरङ्गजेब की इस नीति के परिणाम मुगल साम्राज्य के लिये बड़े घातक सिद्ध हुए।

———

प्रश्न ६—मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।

Q. 6. Discuss the causes of the downfall of the Mughal Empire.

उत्तर—मुगल साम्राज्य के पतन के लिये औरङ्गजेब की धार्मिक तथा दक्षिण नीति बहुत हद तक उत्तरदायी है, यद्यपि इस विशाल साम्राज्य के पतन के और कारण भी हैं। अब हम इन कारणों पर प्रकाश डालते हैं।

(१) औरंगजेब की धार्मिक नीति का प्रभाव—इसके लिए अध्याय ७ का प्रश्न नं० ३ देखिए।

(२) दक्षिण में औरंगजेब के दीर्घकालीन युद्ध—औरङ्गजेब ने अपने शासन काल के अन्तिम २० वर्ष दक्षिण में अनवरत युद्ध करने में व्यतीत किए थे। इन युद्धों का मुगल साम्राज्य के पतन पर बड़ा भयानक प्रभाव पड़ा।

(क) आर्थिक क्षति—लगातार वर्षों तक चलने वाले युद्धों के कारण राजकोष रिक्त हो गया। वास्तव में इन युद्धों के कारण मुगल साम्राज्य का दिवाला पिट गया। मुगल सेना को तीन वर्ष से वेतन नहीं मिला था और सैनिक भूखे मर रहे थे। अतएव वे विद्रोह करने के लिए उद्यत हो गये थे।

यही नहीं, दक्षिण का प्रदेश कृषि तथा वृक्ष विहीन हो गया। इसके स्थान को मनुष्य तथा पशुओं की अस्थियों ने ग्रहण कर लिया। इस आर्थिक विनाश का साम्राज्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

(ख) उत्तर भारत के शासन में विश्रृङ्खलता--उत्तर से २० वर्षों तक अनुपस्थित रहने के कारण सम्राट का नियन्त्रण उत्तरी भारत के शासन पर ढीला हो गया। अफसर तथा जमींदार मनमानी करने लगे और औरंगजेब की आँखों के वन्द होने के पूर्व ही उत्तरी भारत में कुव्यवस्था तथा अशान्ति फैल गई।

(ग) शिया राज्यों का अन्त—औरङ्गजेब ने बीजापुर तथा गोलकुण्डा की शिया रियासतों का अन्त करके भी बड़ी भारी भूल की। इससे मराठों के लिये उत्तरी भारत में छापा मारने के लिए मैदान बिल्कुल साफ हो गया।

(३) औरंगजेब का अविश्वास तथा सन्देहशीलता औरङ्गजेब बड़ा ही सन्देहशील तथा अविश्वासी व्यक्ति था। इसलिए वह शासन तथा युद्ध के प्रत्येक ब्योरे पर अपना नियन्त्रण रखने का प्रयत्न किया करता था। इससे उसके सेनापतियों तथा पुत्रों को अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन करने तथा उसके विकास करने का अवसर ही न प्राप्त हुआ और उनमें कोई उत्साह न रहा। यही नहीं, अपनी सन्देहशीलता के कारण वह राज्य के पदाधिकारियों को जल्दी-जल्दी एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदल देता था इससे वे उस प्रदेश का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने से वंचित रह जाते थे और वहाँ की जनता से उनका घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता था। इस प्रकार वे शासन प्रबन्ध का कार्य ठीक प्रकार नहीं कर पाते थे।

(४) साम्राज्य की विशालता—औरंगजेब ने बीजापुर तथा गोलकुण्डा पर

विजय प्राप्त करके अपने साम्राज्य को इतना विस्तृत कर लिया था कि उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों को एक केन्द्र से इस पर शासन करना बड़ा ही कठिन हो गया। इसके अतिरिक्त आवागमन के साधनों का उस समय इतना अभाव था कि स्वयं औरंगजेब जैसे योग्य तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिये भी विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्तियों को रोकना कठिन हो गया।

(५) **सम्पूर्ण प्रजा के हित का अभाव**—मुगलों की नीति में सम्पूर्ण प्रजा के हित का समावेश नहीं था। उनमें केवल अकबर ही एक ऐसा सम्राट था जो सम्पूर्ण प्रजा के हित की चिन्ता करता था। अन्य सम्राटों में यह भावना न थी। इसका प्रभाव राष्ट्रीयता के प्रभाव पर भी पड़ा। हिन्दुओं तथा मुसलमानों में बहुत बड़ा अन्तर था और कई शताब्दियों तक एक साथ रहने के उपरान्त भी यह अन्तर दूर न हो सका था। अकबर को छोड़कर और किसी मुगल सम्राट ने भारत को प्रबल राष्ट्र बनाने का प्रयास न किया। ऐसी दशा में मुगल साम्राज्य में वह बल तथा स्थायित्व न आ सका जो उच्च कोटि की राष्ट्रीयता के कारण उत्पन्न होता है।

(६) **उत्तराधिकार के नियमों का अभाव**—मुसलमानों में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम न था। अतएव शाहजादों के विद्रोह करने की परम्परा सी बन गई थी। इन विद्रोहों तथा उत्तराधिकार के युद्धों के कारण साम्राज्य को धन, जन तथा वृद्धि की बहुत बड़ी क्षति उठानी पड़ी थी। यद्यपि हुमायूं तथा अकबर को भी ऐसी ही आपत्तियों का सामना करना पड़ा था, परन्तु जहांगीर के समय से इन विद्रोहों ने उग्र रूप धारण कर लिया और मुगल साम्राज्य को खोखला बनाना शुरू कर दिया। खुसरो के विद्रोह के कारण जहांगीर को मेवाड़ के विषय में बाधा उत्पन्न हो गई थी। खुर्रम के विद्रोह के कारण सम्राट को कन्धार से हाथ धोना पड़ा और दक्षिण में मलिक अम्बर को अपनी शक्ति को बढ़ाने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। इससे धन तथा जन की साम्राज्य को ऐसी क्षति पहुँची कि उसकी जड़ हिल गई। औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त जो कई पीढ़ी तक उत्तराधिकार के युद्ध हुए उनका साम्राज्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

(७) **सैनिक कुव्यवस्था**—मुगल साम्राज्य के पतन के लिये मुगलों की सैनिक कुव्यवस्था भी उत्तरदायी है। केन्द्रीय सरकार की सैनिक शक्ति नष्ट हो चुकी थी। अट्ठारहवीं शताब्दी में सेनाओं के हथियार भी समय के अनुकूल न रह गए थे। इसके अतिरिक्त मुगलों की मनसबदारी की प्रथा भी बड़ी दोषपूर्ण थी। सैनिकों का केन्द्रीय सरकार के साथ सीधा सम्बन्ध न था, अतएव, उसके प्रति उनकी भक्ति अटल नहीं हो पाती थी। जब तक केन्द्रीय सरकार दृढ़ थी तब तक मनसबदारों पर नियन्त्रण रक्खा जा सकता था किन्तु औरंगजेब के शासन काल में ही न तो वे पूरे सिपाही रखते थे और न लड़ने में ही अधिक दिलचस्पी लेते थे। उनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा रहती थी। अतएव मिल कर कार्य करना उनके लिये बड़ा कठिन हो गया था।